कक्षा 11

गृह विज्ञान

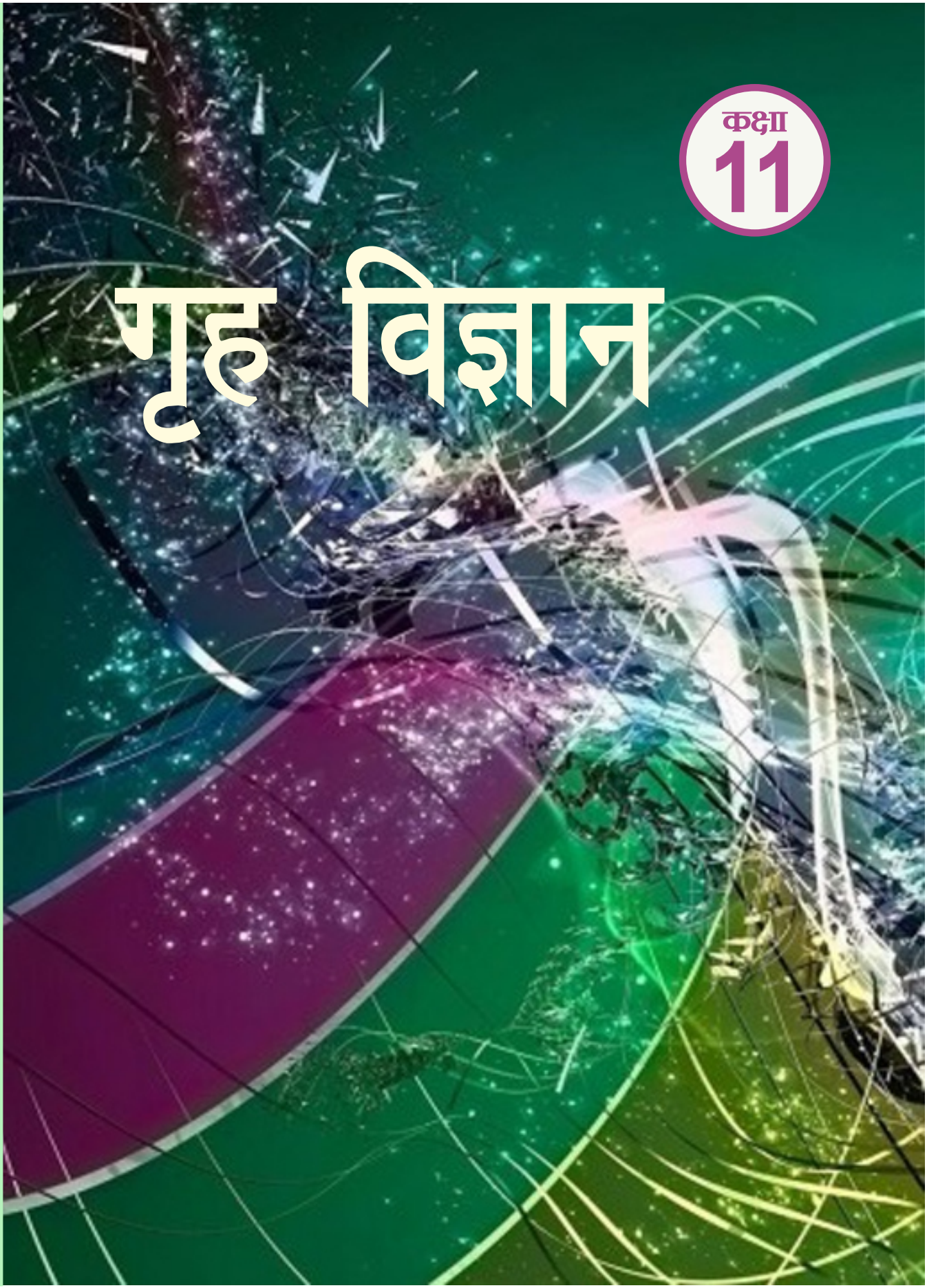

x'g foKku

HOME SCIENCE

कक्षा – 11

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक : गृह विज्ञान

कक्षा – 11

संयोजक :– डॉ. भारती भटनागर, प्रोफेसर एवं अधिष्ठाता
गृह विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राज.कृषि विवि., बीकानेर

लेखकगण :–

1. डॉ० नीना सरीन, प्रोफेसर, गृहविज्ञान प्रसार एवं सम्प्रेषण प्रबन्धन विभाग
गृह विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राज.कृषि विवि., बीकानेर

2. डॉ० भारती जैन, प्रोफेसर खाद्य विज्ञान एवं पोषण विभाग
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

3. डॉ० विमला डूंकवाल, प्रोफेसर खाद्य एवं पोषण विभाग
गृह विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राज.कृषि विवि., बीकानेर

4. श्रीमती सुमन गोयल, लेक्चरर खाद्य एवं पोषण
राजकीय महिला महाविद्यालय, अजमेर

5- श्रीमती सुमन शेखावत, प्रधानाचार्या
राजकीय आदर्श उच्च माध्यमिक विद्यालय, सबलपुरा, सीकर

प्रस्तावना

गृह विज्ञान अत्यन्त ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण विषय है। यह एक व्यावहारिक शिक्षा है जिसका अध्ययन-अध्यापन भारत के समस्त विद्यालयों में कराया जा रहा है। इस विषय के अन्तर्गत दैनिक जीवन के अनेक क्रियाकलापों, आवश्यकताओं व समस्याओं का वैज्ञानिक विधि द्वारा समाधान करना सिखाया जाता है, साथ ही छात्र-छात्राएँ कलात्मक अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने का कौशल भी सीखते हैं। पुस्तक में प्रयास किया गया है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य के अनुसार सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक विषय-वस्तु सम्मिलित की जा सके।

इस पुस्तक में छह इकाइयाँ हैं। पुस्तक की प्रथम इकाई में गृह विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र, द्वितीय इकाई में मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, तृतीय इकाई में पारिवारिक पोषण, चतुर्थ इकाई में वस्त्र एवं परिधान, पंचम इकाई में गृह प्रबन्ध तथा छठी इकाई में वर्तमान जीवनशैली एवं योग से सम्बन्धित विषय सामग्री समाविष्ट की गई है। विषय को रुचिकर एवं बोधगम्य बनाने के लिए चित्रों एवं रेखाचित्रों को भी प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के अन्त में सारांश दिया है। इसके अतिरिक्त तकनीक पदों को हिन्दी एवं अंग्रेजी, दोनों ही भाषाओं में प्रत्येक अध्याय के अन्त में प्रस्तुत किया गया है। अध्यायों के अन्त में विभिन्न स्तर के प्रश्न जैसे बहुचयनात्मक, रिक्त स्थान, लघु-उत्तरात्मक एवं निबन्धात्मक प्रश्न दिये गये हैं। स्वयं करके सीखने के गुण को विकसित करने के लिए विषय-वस्तु से सम्बन्धित प्रायोगिक कार्य एवं उक्त प्रायोगिक क्रियाओं के लिये दिशा-निर्देश सरल भाषा में दिये गये हैं।

यह प्रयास किया गया है कि पुस्तक की भाषा एवं कथन शैली सरल व सुग्राह्य हो। हमें आशा एवं विश्वास है कि यह पुस्तक न केवल गृह विज्ञान ग्यारहवीं की कक्षा के नियमित एवं स्वयंपाठी विद्यार्थियों के लिये वरन् आम गृहिणियों के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगी। हमें आशा एवं विश्वास है कि मनोविज्ञान के छात्र एवं अध्यापकगण अपनी मौलिक समालोचना द्वारा हमें लाभान्वित करायेंगे ताकि पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

–डॉ. भारती भटनागर
संयोजक एवं अधिष्ठाता, गृह विज्ञान
महाविद्यालय, स्वामी केशवानन्द राजस्थान
कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

अनुक्रमणिका

सैद्धान्तिक अध्याय

इकाई	अध्याय सं.	विवरण	पृष्ठ संख्या
I		**गृह विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र**	
	1.	अर्थ, महत्त्व एवं उपयोगिता	1–3
	2.	प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं उनका योगदान	4
II		**मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध**	
	3.	मानव वृद्धि एवं विकास की अवधारणा	5–8
	4.	गर्भावस्था	9–13
	5.	प्रसूता एवं नवजात शिशु की देख-भाल	14–18
	6.	शैशवावस्था से बाल्यावस्था तक विकास- I	19–22
	7.	शैशवावस्था से बाल्यावस्था तक विकास-II	23–26
	8.	रोग प्रतिरोधक क्षमता (टीकाकरण)	27–29
	9.	बच्चों के सामान्य रोग	30–34
	10.	बच्चों की वैकल्पिक देख-भाल	35–36
III		**पारिवारिक पोषण**	
	11.	भोजन एवं स्वास्थ्य में अन्तर्सम्बन्ध	37–39
	12.	भोजन के कार्य	40–44
	13.	भोजन के पोषक तत्त्व–वृहत् मात्रिक पोषक तत्त्व	45–55
	14.	भोजन के पोषक तत्त्व-सूक्ष्म मात्रिक	56–70
	15.	सन्तुलित आहार एवं भोज्य समूह	71–74
	16.	पाक क्रिया एवं भोजन की पौष्टिकता बढ़ाना	75–78
	17.	भोजन परिरक्षण (Food Preservation)	79–82
	18.	शीतल पेय, सुविधाजनक व तुरन्ता भोजन	83–85
IV		**वस्त्र एवं परिधान**	
	19.	तंतु विज्ञान	86–93
	20.	कताई एवं धागों का निर्माण	94–97
	21.	वस्त्रों की बुनाई	98–102
	22.	वस्त्र परिसज्जा	103–106
	23.	रंगाई एवं छपाई	107–110

इकाई	अध्याय सं.	विवरण	पृष्ठ संख्या
V	**गृह प्रबन्धन**		
	24.	संसाधन एवं प्रबंधन	111–114
	25.	समय व शक्ति का प्रबन्धन	115–117
	26.	समय एवं श्रम बचाने वाले उपकरण	118–122
	27.	गृह क्रियाएं, स्थान व्यवस्था एवं सज्जा	123–128
	28.	प्राथमिक चिकित्सा	129–132
	29.	गृह परिचर्या	133–134
VI	**वर्तमान जीवनशैली एवं योग**		
	30.	योग का महत्त्व	135
	31.	योग का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव	136
	32.	महत्त्वपूर्ण योगासन	137–140

प्रायोगिक अध्याय

इकाई	अध्याय सं.	विवरण	पृष्ठ संख्या
II	**मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध**		
	1.	टीकाकरण सूची	141
	2.	कामकाजी महिला के लिये साक्षात्कार तथा क्रेश, बालवाड़ी, आँगनवाड़ी व नर्सरी स्कूल का भ्रमण एवं रिपोर्ट प्रस्तुत करना	142–144
	3.	आस-पड़ोस के 1-5 व 6-10 वर्ष के बालकों का निरीक्षण करना तथा रिपोर्ट तैयार करना	145–150
III	**पारिवारिक पोषण**		
	4.	कम कीमत एवं अधिक पौष्टिकता वाले व्यंजन बनाना व प्रतियोगिता आयोजित करना	151–152
	5.	विभिन्न पाक विधियों का प्रयोग कर व्यंजन तैयार करना	153–156
	6.	भोजन परिरक्षण विधियों का प्रयोग कर खाद्य उत्पाद बनाना	157–162
IV	**वस्त्र एवं परिधान**		
	7.	विभिन्न प्रकार के वस्त्रों को पहचानना	163–165
	8.	विभिन्न प्रकार की बुनाई को बनाना और पहचानना	166
	9.	बंधेज, ब्लॉक एवं प्रिंटिंग के नमूने तैयार करना	167
V	**गृह प्रबन्धन**		
	10.	गृह सज्जा-पुष्प सज्जा व फर्श सज्जा करवाना तथा प्रतियोगिता आयोजित करना	168–171
	11.	प्राथमिक चिकित्सा पेटी बनाना व दुर्घटनाओं के दौरान प्राथमिक चिकित्सा करना	172–174

इकाई-I : गृह विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र

अध्याय 1
अर्थ, महत्त्व एवं उपयोगिता

गृह विज्ञान नाम से ही पता चलता है कि वह घर और घर में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य व खुशी से सम्बन्धित है। विज्ञान संकाय एवं गृह विज्ञान एक अंत:विषयक क्षेत्र हैं, (Inter displinary) जो छात्रों को स्वयं को विकसित करने के लिए व्यावसायिक और कॅरिअर के विकल्प प्रदान करता है। गृह विज्ञान एक बहुआयामी क्षेत्र होने के कारण विभिन्न लेखकों, चिकित्सकों और शोधकर्ताओं द्वारा व्यापक रूप से परिभाषित किया गया हैं। सरल शब्दों में गृह विज्ञान एक बहु विषयक क्षेत्र का अध्ययन है जो स्वास्थ्य, भोजन, बच्चों की देख-भाल, वस्त्र-परिधान डिजाइन और संसाधन प्रबन्धन के साथ घर से संबंधित अन्य विषयों का प्रबंधन करता है।

डॉ. ए.एच. रिचर्ड (Dr. A.H. Richard) ने लेडी इरविन कॉलेज, नई दिल्ली में प्रथम अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (1932) में गृह विज्ञान को परिभाषित किया कि गृह विज्ञान एक बहुआयामी विषय है जो पारिवारिक आय-व्यय, भोजन की स्वच्छता, कपड़ों की पर्याप्तता, घर का उचित संसाधनों से प्रबंधन करता है। गृह-विज्ञान एक व्यावहारिक विज्ञान है, जो छात्रों को सफलतापूर्वक पारिवारिक जीवनयापन के लिये तैयार करता है और सामाजिक व आर्थिक समस्याओं को हल करने में सक्षम बनाता है। लेक प्लेसिड एसोसिएशन (The lake placid Association) के अनुसार ''गृह विज्ञान उन सिद्धान्तों, शर्तों और आदर्शों का अध्ययन है जो एक ओर व्यक्ति के तत्काल और भौतिक वातावरण से सम्बन्धित है तो दूसरी ओर मानव प्रकृति से संबंधित है।''

भारत में गृह विज्ञान के मार्गदर्शकों ने अनुभवों के आधार पर गृह विज्ञान को परिभाषित करने में अपने विचारों को संश्लेषित किया है। डॉ. राजमल पी. देवदास के अनुसार, गृह विज्ञान मानवीय वातावरण, परिवार, पोषण, संसाधनों के प्रबन्धन, मानव विकास, उपभोक्ता क्षमता को सुधारने के लिये विज्ञान और मानविकी ज्ञान के उपयोग को समाहित करता है।

गृह विज्ञान विश्व में कई नामों से जाना जाता है, जैसे-गृह कला (Domestic Art), घरेलू विज्ञान (Household Science), घरेलू कला (Household Art), घरेलू अर्थशास्त्र (Household Economics), घरेलू प्रशासन (Household Administration) तथा गृह विज्ञान (Domestic Science) आदि। अमेरिका में यह 'गृह अर्थशास्त्र' (Home Economics) तथा इंग्लैण्ड व भारत में 'गृह विज्ञान' (Home Science) के नामों से प्रचलित है।

वर्मा (2000), के अनुसार गृह विज्ञान विषय विभिन्न क्षेत्रों के वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक ज्ञान के समायोजन पर केन्द्रित है, ताकि व्यक्ति, परिवार समुदाय एवं राष्ट्र का विकास हो सके।

गृह विज्ञान की अवधारणा घरों के द्वारा समुदाय में सुधार लाने की प्रबल इच्छा पर आधारित है जिसको संसाधनों की व्यवस्थित व्यवस्था के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। गृह विज्ञान व्यक्ति के अच्छे व्यक्तित्व विकास में प्रमुख भूमिका निभा सकता है।

गृह विज्ञान की आधुनिक अवधारणा ऐसे घर को बनाने की है जहाँ शान्ति, समृद्धि और प्रगति प्रबल हो। एक कारक जो गृह विज्ञान की अवधारणा को प्रभावित करता है, वह है महिलाओं के मुद्दों के प्रति जागृति। आधुनिक गृह विज्ञान दोनों लिंगों को अच्छे पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवनयापन के लिये बराबर के अवसर प्रदान करता है। सामग्री और आर्थिक उपलब्धियों के साथ-साथ परिवार के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक पहलुओं को पदोन्नत करना भी आवश्यक है। यह गृह विज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों में से एक है। घर-परिवार में ईमानदारी, सच्चाई निर्भरता और निष्पक्षता जैसे नैतिक मूल्यों का प्रत्यारोपण भी करता है।

गृह विज्ञान के उद्देश्य

1. छात्र-छात्राओं के ज्ञान, कौशल एवं सामर्थ्य का विकास कर वैज्ञानिक सिद्धान्तों को दैनिक जीवन के व्यवहार में लाना।

2. छात्र-छात्राओं में परिवार व सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं, समस्याओं एवं इनके समाधान के लिये समझ पैदा करना।
3. छात्र-छात्राओं में उन्नत जीवन स्तर को प्राप्त करने की योग्यता एवं निपुणता को बढ़ाना।

गृह विज्ञान के क्षेत्र

गृह विज्ञान में विशेषज्ञता के पाँच अलग-अलग क्षेत्र हैं। प्रत्येक शाखा अनुसंधान के लिये स्नातक पाठ्यक्रम और सुविधाएँ प्रदान करती है। गृह विज्ञान के पाँच विभाग एवं उनकी विषयसूची निम्नानुसार है-

1. **मानव विकास एवं पारिवारिक अध्ययन-** मानव विकास गर्भ धारण से लेकर वृद्धावस्था तक के विकास के अध्ययन से सम्बन्धित है। शारीरिक, मानसिक, क्रियात्मक, भावनात्मक, भाषा, संज्ञानात्मक, नैतिक और सामाजिक विकास इसमें शामिल किये गये हैं। बच्चों के व्यवहार की समस्याओं, असाधारण बच्चों, विकारों, मनुष्य के विकास में बाधक विशिष्ट समस्याओं का भी अध्ययन किया जाता है। इसके अध्ययन से गृहिणी अपने बच्चों के स्वास्थ्य व विकास के विविध आयामों पर पूर्णरूपेण नजर एवं नियन्त्रण रख सकती है तथा उन्हें एक स्वस्थ सामाजिक एवं उत्तरदायी नागरिक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। साथ ही बदलते परिवेश में विवाह एवं परिवार के प्रकार, उद्देश्य एवं चुनौतियों का भी समावेश किया जाता है।
2. **पारिवारिक संसाधन प्रबन्धन (Family Resource Management)-** पारिवारिक संसाधन प्रबन्धन के अन्तर्गत समय, धन, ऊर्जा और स्थान प्रबन्धन अध्ययन के लिए प्रमुख विषय हैं। समय प्रबन्धन के लिए एक अच्छी समय योजना अत्यन्त आवश्यक है। पैसे के प्रबन्धन के लिए संसाधनों का समुचित उपयोग करना जिसे परिवार का बजट बना कर पूरा किया जाता है। इस विषय के अध्ययन से व्यक्ति अपने सीमित समय, श्रम, धन एवं आस-पास मौजूद अन्य संसाधनों का अधिकतम उपयोग अपने परिवार व घर की समुचित देख-भाल, सजावट तथा आस-पास के पर्यावरण को स्वच्छ रखने के लिए कर सकता है। उपभोक्ता शिक्षा को भी इस विषय के अन्तर्गत शामिल किया गया है। खाद्य सुरक्षा, मिलावट के खिलाफ सुरक्षा, स्वास्थ्य खतरों (Health Hazards) और उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के बारे में जानकारी उपलब्ध कराना, डिजाइन और कला के प्रमुख सिद्धान्तों और बुनियादी बातें भी इस क्षेत्र में शामिल किये गये हैं।
3. **खाद्य और पोषण (Food & Nutrition)-** खाद्य और पोषण विषय के अध्ययन में खाद्य विज्ञान और पोषण शामिल किये गये हैं। खाद्य विज्ञान में भोजन की रसायन विज्ञान, पोषक तत्त्वों का संरक्षण, पोषक तत्त्वों के साधन, भोजन के पोषक मूल्य और भोजन के विभिन्न मिश्रण बनाना आदि अध्ययन के मुख्य बिन्दु हैं। खाद्य और पोषण विभिन्न पोषक तत्त्वों, उनकी संरचना, कार्य, स्रोत, आवश्यकता और कमी की स्थिति का ज्ञान प्रदान करता है। विभिन्न शारीरिक अवस्थाओं जैसे 1. प्रसूतावस्था 2. धात्रीवस्था 3. शैशवावस्था 4. बाल्यावस्था 5. किशोरावस्था 6. वृद्धावस्था एवं विभिन्न रोगों की अवस्था के दौरान आहार संबंधी आवश्यकताओं एवं परिवर्तनों की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त भोज्य पदार्थों का संग्रहण एवं परिरक्षण, समुदाय में व्याप्त पोषण सम्बन्धी समस्याएँ और विभिन्न पोषाहार कार्यक्रमों की भी जानकारी दी जाती है।
4. **वस्त्र एवं परिधान-** वस्त्र एवं परिधान विज्ञान के अन्तर्गत छात्र-छात्राएँ वस्त्रों में निहित रेशों, उनसे बने धागों व वस्त्रों की बुनाई, बनावट व विशेषताओं का अध्ययन करते हैं, परिधान के बुनियादी सिद्धान्तों, डिजाइन और निर्माण को भी इसमें सिखाया जाता है।
5. **गृह विज्ञान प्रसार एवं संचार प्रबन्धन-** प्रसार शिक्षा में कार्यक्रम नियोजन के मूल सिद्धांत, श्रव्य-दृश्य सामग्री का निर्माण, सामाजिक कार्य, समाज के विकास व संवाद के विभिन्न तरीके शामिल किये गये हैं। प्रसार शिक्षा में गृह विज्ञान के विविध विषयों से प्राप्त शिक्षा को ग्रामीण समुदाय की आवश्यकतानुसार ज्ञान उपलब्ध कराना भी प्रसार शिक्षा का उद्देश्य है।

गृह विज्ञान शिक्षा का महत्त्व

गृह विज्ञान शिक्षा से प्राप्त ज्ञान, समझ, कौशल, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्य लोगों को एक संतोषजनक व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन जीने में मदद करता है। अन्य विषयों के विपरीत, गृह विज्ञान एक व्यावहारिक ज्ञान है जिसे रोजमर्रा के जीवन में उपयोग किया

जाता है। व्यावहारिक विषय के रूप में अपनी क्षमताओं को व्यक्त करने और नेतृत्व के गुणों को विकसित करने के लिये गृह विज्ञान शिक्षा अवसर प्रदान करती है।

गृह विज्ञान शिक्षा एक जिम्मेदार नागरिक बनाने के गुण भी विकसित करती है। गृह विज्ञान शिक्षा छात्रों को भोजन के स्वस्थ जीवनयापन के महत्त्व के बारे में जानकारी प्राप्त कराती है। परिवार की समस्याओं को सुलझाने के विभिन्न समाधानों की जानकारी गृह विज्ञान शिक्षा प्रदान करती है। गृह विज्ञान शिक्षा स्वरोजगार शुरू करने में भी सहायक है। गृह विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त तकनीकी ज्ञान को छात्र व्यक्तिगत और व्यावसायिक लाभ के लिये उपयोग कर सकता है।

गृह विज्ञान का विषय क्षेत्र/उपयोगिता

गृह विज्ञान शिक्षा ने शिक्षण और अनुसंधान के क्षेत्र में एक प्रमुख रोजगार क्षेत्र के रूप में खुद को कायम रखा है। नर्सरी स्कूल, परिवार नियोजन एजेंसियों, परिवार परामर्श केन्द्रों, पूर्व प्राथमिक शिक्षा प्रशिक्षण केन्द्रों, कृषि अनुसंधान केन्द्रों, समाज कल्याण विभाग यूनिसेफ (UNICEF), एफएओ (FAO), केअर (CARE) आदि ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ गृह विज्ञान स्नातक और स्नातकोत्तर विद्यार्थी उपयुक्त स्थान पा सकते हैं। पोषण सलाहकार, आहार विशेषज्ञ (Dietician), खाद्य विशेषज्ञों और राष्ट्रीय पोषण संस्थान आदि अन्य कॅरिअर के अवसरों में से कुछ हैं। इसके साथ गृह विज्ञान स्वरोजगार के अवसरों के लिये अधिक संभावनाएं प्रदान करता है। फैशन डिजाइनिंग, सिलाई केन्द्र, नर्सरी स्कूल, खिलौना उद्योग में सलाहकार, केटरिंग यूनिट, परिवार परामर्श केन्द्र, खाद्य प्रसंस्करण केन्द्र, ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ गृह विज्ञान स्नातक स्वरोजगार तलाश कर सकते हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. गृह विज्ञान एक अंत:विषय क्षेत्र विज्ञान का संकाय है, जो छात्र-छात्राओं हेतु व्यावसायिक और कॅरिअर विकल्प प्रदान करता है।
2. गृह विज्ञान को गृह कला, घरेलू विज्ञान, घरेलू कला, घरेलू अर्थशास्त्र तथा घरेलू प्रशासन आदि नामों से भी जाना जाता है।
3. आधुनिक गृह विज्ञान बालक एवं बालिकाओं (दोनों लिंगों) को अच्छे पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवनयापन के समान अवसर प्रदान करता है।
4. गृह विज्ञान विद्यार्थियों के ज्ञान, कौशल एवं सामर्थ्य का विकास कर पारिवारिक व सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं, समस्याओं का समाधान एवं उन्नत जीवनस्तर की योग्यता व निपुणता को बढ़ाता है।
5. गृह विज्ञान के पाँच विभाग मानव विकास एवं पारिवारिक अध्ययन, पारिवारिक संसाधन प्रबंधन, खाद्य एवं पोषण विभाग, वस्त्र एवं परिधान विज्ञान एवं गृह विज्ञान प्रसार एवं संचार प्रबन्धन है।
6. गृह विज्ञान से शिक्षित विद्यार्थी नर्सरी स्कूल, परिवार नियोजन एजेंसियों, परिवार परामर्श केन्द्रों, कृषि अनुसंधान केन्द्र, फैशन डिजाइनिंग आदि में रोजगार प्राप्त कर सकते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें

(i) गृह विज्ञान है–

(अ) व्यावहारिक विज्ञान (ब) पारिवारिक विज्ञान

(स) कला विज्ञान (द) उपरोक्त सभी।

(ii) पारिवारिक संसाधन प्रबंधन विभाग में अध्ययन किया जाता है।

(अ) पाक-कला (ब) फैशन डिजाइनिंग

(स) परिवार नियोजन (द) समय, धन, ऊर्जा

(iii) पहली अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (1932) में गृह विज्ञान को परिभाषित किया–

(अ) डॉ. ए.एच. रिचर्ड (ब) डॉ. जी. सुबालक्ष्मी

(स) फलैमी पैन्सी किटरैल (द) ब एवं स दोनों

(iv) निम्न में से गृह विज्ञान विभाग नहीं है–

(अ) मानव विकास व पारिवारिक अध्ययन

(ब) इंजीनियर विभाग

(स) प्रसार एवं संचार प्रबंध (द) वस्त्र एवं परिधान विज्ञान

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(i) गृह विज्ञान के.....विभाग है।

(ii) मानव विकास.....से.....तक के विकास से संबंधित है।

(iii) गृह विज्ञान शिक्षा.....शुरू करने में भी सहायक है।

3. गृह विज्ञान को परिभाषित कीजिए।
4. गृह विज्ञान के उद्देश्य एवं किन्हीं दो विभागों का संक्षिप्त में वर्णन करें।
5. गृह विज्ञान शिक्षा का महत्त्व एवं अवधारणा पर प्रकाश डालिए?

उत्तर :

1. (i) द (ii) द (iii) अ (iv) ब
2. (i) पाँच (ii) गर्भधारण, वृद्धावस्था (iii) स्वरोजगार

अध्याय 2

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं उनका योगदान

1. **डॉ. एलन एच. रिचर्ड (Dr. Ellen H. Richard)**– 19वीं सदी के दौरान अमेरिका की एक औद्योगिक और पर्यावरण रसायनज्ञ (Chemist) थीं। सेनेटरी इंजीनियरिंग और गृह विज्ञान में उनके अग्रणी काम और प्रयोगात्मक अनुसंधान ने नये विज्ञान 'गृह अर्थव्यवस्था' (Home Economics) की नींव रखी। वह गृह अर्थव्यवस्था आंदोलन की संस्थापक थीं और पहली बार घर में विज्ञान का इस्तेमाल किया। पोषण के अध्ययन में रसायन विज्ञान का प्रयोग किया।
2. **डॉ. एस. आनन्दलक्ष्मी (Dr. S. Anandalakshmi)** –डॉ. एस. आनन्दलक्ष्मी ने मेडिसिन में विस्कान्सिन विश्वविद्यालय (University of Wisconsin) से मानव विकास में डॉक्टरेट किया। वह चेन्नई के 'विद्या मन्दिर' में एक प्रारंभिक शिक्षा के अभिनव स्कूल में कार्यरत थीं। बाद में उन्होंने लेडी इरविन (Ledy Irwin) कॉलेज में अध्यापन शुरू किया जहाँ उन्होंने बाल विकास विभाग (स्नातकोत्तर) की शुरुआत की। वह सेवा (SEWA) अहमदाबाद, SWKC Barefoot College तिलोनिया, पांडिचेरि और बाल मन्दिर में स्वैच्छिक कार्यक्रमों में सक्रिय रहीं। उनके प्रकाशन मुख्य रूप से संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक विकास, अनुसंधान विधियों और भारतीय सांस्कृतिक पहलुओं पर आधारित थे। उन्होंने शिक्षा, बाल विकास और पारिवारिक सम्बन्धों के बारे में भी लिखा है।
3. **राजामल पी. देवदास (Rajamal P. Devadas)**– राजामल पी. देवदास एक भारतीय पोषण वैज्ञानिक, शिक्षिका और अविनाशीलिंगम इंस्टिट्यूट आफ होम साईंस की पूर्व चांसलर थीं। वह तमिलनाडु योजना आयोग, तमिलनाडु महिला आयोग की सदस्य थी और विश्व खाद्य सम्मेलन की निर्वाचित उपाध्यक्ष थी। भारत सरकार ने 1992 में उन्हें पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया।
4. **डॉ. जी. सुबालक्ष्मी (Dr. G.Subhlaxmi)**– डॉ. जी. सुबालक्ष्मी एक प्रख्यात पोषण विशेषज्ञ हैं जिनका शिक्षा, अनुसंधान और प्रशासकीय कार्य में 45 वर्षों का अनुभव है। उन्हें पोषण के क्षेत्र में बेहतरीन कार्य करने के लिये विभिन्न पुरस्कार भी मिले हैं। उन्होंने पोषण विशेषज्ञ के रूप में अमूल डेयरी, हैनस इंडिया, हिन्दुस्तान लिवर, आई.सी.डी.एस. (ICDS), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् आदि के विभिन्न प्रोजेक्ट में कार्य किया।
5. **फ्लैमी पैन्सी किटरैल (Flemmie Pansy Kittrell)**–फ्लैमी प्रैन्सी किटरैल अंतरराष्ट्रीय स्तर की पोषण वैज्ञानिक थीं पर उनका मुख्य आकर्षण बाल विकास और परिवार कल्याण था। अपने 40 वर्ष के शिक्षण कार्य में वह पारिवारिक स्थिति में सुधार लाने के लिए कई विकासशील देशों की यात्रा पर गईं। पोषण में विद्या वाचस्पति (Ph. D.) हासिल करने वाली वह पहली अफ्रीकी अमेरिकी महिला थीं। वह विश्व में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर हमेशा ध्यान आकर्षित करवाती थीं और महिलाओं को उच्च शिक्षा के लिये प्रेरित करती थीं।
6. **डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन (Dr. M.S. Swaminathan)** –भारत में हरित क्रांति में अपनी अग्रणी भूमिका के लिये प्रसिद्ध हैं। डॉ. स्वामीनाथन को गेहूँ और चावल की उच्च किस्मों को विकसित करने के लिए 'हरित क्रांति के भारतीय पिता' भी कहा जाता है। उनका दृष्टिकोण दुनिया में भूख और गरीबी को खत्म करना है। डॉ. स्वामीनाथन ने स्थायी कृषि, स्थायी खाद्य सुरक्षा और जैव विविधता के संरक्षण पर भी कार्य किया।

इकाई-II : मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध

अध्याय 3

मानव वृद्धि एवं विकास की अवधारणा

विकास मनोविज्ञान के अन्तर्गत गर्भाधान से लेकर जीवन के अन्त तक अर्थात् जीवनपर्यन्त होने वाले शारीरिक, मानसिक एवं व्यवहारपरक विकास का अध्ययन किया जाता है। विकास की प्रक्रिया गर्भधारण से लेकर मृत्यु तक किसी-न-किसी रूप में चलती रहती है। साधारण भाषा में विकास का अर्थ शरीर में होने वाले गुणात्मक परिवर्तनों से है। वहीं वृद्धि का अर्थ शरीर में होने वाले मात्रात्मक परिवर्तनों से हैं, जैसे- वजन का बढ़ना, लम्बाई में वृद्धि, शरीर के आयामों में परिवर्तन आदि (चित्र 3.1)।

वृद्धि की परिभाषा (Growth)- वृद्धि का सामान्य अर्थ होता है 'बढ़ना' या फैलना। वृद्धि का तात्पर्य उन संरचनात्मक शारीरिक परिवर्तनों से है जो एक व्यक्ति में परिपक्वता के दौरान चलने वाले क्रम में होते हैं। अर्थात् जिनमें ऊर्ध्वमुखी बढ़वार होती है, उसे 'वृद्धि' कहते हैं। अत: यह व्यक्ति की लम्बाई, आकार एवं वजन में वृद्धि को दर्शाता है।

विकास की परिभाषा (Development)- मानव विकास के अंतर्गत गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यंत व्यक्ति के विकास का 'अंतर-अनुशासनात्मक परिप्रेक्ष्य' से अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार मानव विकास की उपरोक्त परिभाषा में तीन तत्त्व महत्त्वपूर्ण हैं-

1. मानव विकास एक वैयक्तिक अनुभव है।
2. यह जीवनपर्यन्त निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
3. यह अन्तर-अन्तर विषयक अध्ययन है।

विकास से केवल शारीरिक वृद्धि में होने वाले परिवर्तनों का ही संकेत नहीं मिलता बल्कि इसके अन्तर्गत वे सभी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक और संवेगात्मक परिवर्तन भी सम्मिलित रहते हैं जो गर्भकाल से लेकर मृत्युपर्यन्त तक व्यक्ति में प्रकट होते रहते हैं। उदाहरणार्थ-शैशवावस्था में वजन में वृद्धि, तंत्रिकाओं, ग्रंथियों (Glands) और पेशियों (Muscles) के ऊतकों में वृद्धि के कारण होती है।

वृद्धि और विकास में अन्तर

वृद्धि और विकास में मूलभूत अन्तर है, जो निम्नानुसार है-

वृद्धि (Growth)	विकास (Development)
1. वृद्धि में मात्रात्मक परिवर्तन होता है। अर्थात् वृद्धि ऊर्ध्वाधर बढ़वार को दर्शाती है।	1. विकास में गुणात्मक परिवर्तन होता है।
2. वृद्धि मूर्त होती है। इसे देख सकते हैं।	2. विकास अमूर्त होता है।
3. वृद्धि को मापा जा सकता है। आकार, वजन, लम्बाई को माप सकते हैं।	3. विकास को मापा नहीं जा सकता केवल अनुभव कर सकते हैं।
4. वृद्धि में केवल आन्तरिक व बाह्य शारीरिक परिवर्तन होते हैं।	4. विकास व्यक्ति के विभिन्न क्षेत्रों में होता है जैसे- शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, संज्ञानात्मक आदि।
5. वृद्धि भ्रूणावस्था से प्रारंभ होती है तथा परिपक्वावस्था प्राप्त करते-करते रुक जाती है।	5. विकास भ्रूणावस्था से प्रारंभ होकर जीवनपर्यन्त चलता है।

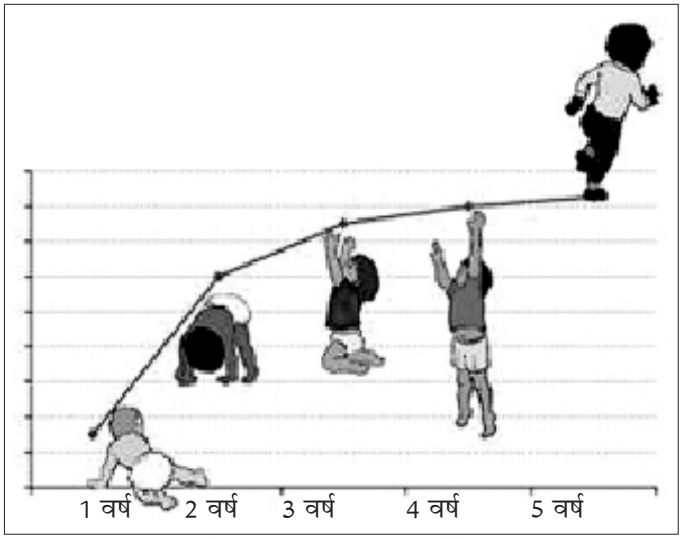

चित्र 3.1 : **वृद्धि और विकास**

विकास की अवस्थाएँ (Stages of Development)

जीवनकालिक उपागम के अन्तर्गत मानव विकास की विस्तृत व्याख्या के उद्देश्य से, विकास को विविध चरणों में विभाजित किया गया

चित्र 3.2 : **मानव विकास की अवस्थाएँ**

है। तालिका 3.1 : विकास की प्रमुख अवस्थाएं एवं उनकी अवधि–

तालिका 3.1

अवस्थाएं	अवधि
1. गर्भकालीन अवस्था	गर्भाधान से जन्म तक
2. शैशवावस्था	जन्म से 2 वर्ष तक
(अ) नवजात शैशवावस्था	जन्म से 1 माह तक
(ब) शैशवावस्था	तीसरे सप्ताह से 2 वर्ष तक
3. बाल्यावस्था	3–12 वर्ष
(अ) पूर्व बाल्यावस्था	3–6वर्ष तक
(ब) उत्तर बाल्यावस्था	6–12 वर्ष तक
4. किशोरावस्था	
(अ) वय:संधि (नव किशोरावस्था)	11–12 से 12–14 वर्ष तक
(ब) किशोरावस्था	13 वर्ष से 17 वर्ष तक
(स) उत्तर किशोरावस्था	17 वर्ष से 21 वर्ष तक
5. प्रौढ़ावस्था (पूर्व प्रौढ़ावस्था)	21 से 40 वर्ष तक
6. मध्यावस्था	40 से 60 वर्ष तक
7. उत्तर प्रौढ़ावस्था या वृद्धावस्था	60 वर्ष के बाद
8. मृत्यु एवं वियोग	जीवन का अन्त

विकास के नियम

1. विकास में परिवर्तन होते हैं : विकास परिवर्तनों का लम्बा सिलसिला है जो गर्भाधान से लेकर जीवनपर्यन्त तक बिना टूटे लगातार चलता रहता है। विकास के क्रम में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन होते रहते हैं।
2. विकास का एक निश्चित क्रम होता है : प्रत्येक प्राणी में चाहे वह पशु हो या मानव, विकास का अपना एक निश्चित प्रारूप होता है। व्यक्ति का शारीरिक विकास दो दिशाओं में होता है–

   (अ) मस्तकाधोमुखी दिशा (क्रम) : विकास के इस क्रम में शारीरिक विकास 'सिर से पैर की तरफ' होता है। अर्थात् पहले विकास सिर वाले भाग में होता है फिर धड़, पेट, पीठ की ओर। सबसे अन्त में पैर वाला भाग विकसित होता है।

   (ब) निकट–दूर दिशा (क्रम) : विकास का क्रम सुषुम्ना नाड़ी के पास के क्षेत्रों में पहले और सुषुम्ना नाड़ी से दूर के क्षेत्रों में देर (बाद) में होता है; उदाहरण के लिये, जैसे–हाथों का विकास पहले और हाथ की उंगलियों का विकास देर से होता है।
3. विकास, परिपक्वता एवं अधिगम का परिणाम है : बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास, अधिगम (सीखना) एवं परिपक्वता, दोनों ही कारणों से होता है। परिपक्वता सीखने के लिए नींव तैयार करता है, जिसके कारण सीखने की क्रिया संभव हो पाती है।
4. आरम्भिक विकास, पश्चात् विकास की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है : विकासात्मक अध्ययनों के आधार पर यह पूर्णतया स्थापित तथ्य है कि बाद में होने वाले विकास की तुलना में, जीवन के आरंभिक काल के विकास अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। आरंभिक दशाएं, विकास की नींव को प्रभावित करती हैं। बच्चा जिस परिवेश में रहता है उसका प्रभाव उसकी आनुवांशिक क्षमताओं के विकास पर पड़ता है। ये प्रमुख दशाएं हैं–अनुकूल अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध, धनात्मक सांवेगिक दशाएं, बालक को प्रशिक्षित करने का ढंग, भूमिका निर्वहन का अवसर, पारिवारिक संरचना एवं परिवेशीय उद्दीपन इत्यादि।
5. विकास सामान्य से विशिष्ट की ओर अग्रसर होता है : विकासात्मक अनुक्रियाएं सामान्य से विशिष्ट की ओर अग्रसर होती है। गर्भस्थ शिशु का पूरा शरीर तो गतिशील होता है, परन्तु वह किसी एक अंग को गतिशील नहीं कर सकता है। शिशु किसी चीज को पकड़ने की अनुक्रिया के पूर्व अपनी भुजाओं को ऊपर उठाने या गतिमान करने की अनेक अनुक्रियाएं करता है।
6. विकास में निरन्तरता होती है : विकास गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें कभी तीव्र तो कभी धीमी गति से परिवर्तन आते रहते हैं। पीकोवस्की (1968) के अनुसार, विकास सदैव एक–सा नहीं होता बल्कि इस प्रक्रिया में कभी तीव्र असंतुलन की अवधि तो कभी सन्तुलन की अवधि पायी जाती है। विकास में पठार भी आता है। ये स्वरूप किसी एक स्तर पर या विभिन्न स्तरों पर भी पाये जाते हैं।
7. विकासक्रम में विभिन्न अंग भिन्न–भिन्न गति से विकसित होते हैं :

यद्यपि विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं का विकास निरन्तर जारी रहता है, तथापि सभी अंगों का विकास एक समान गति से कभी नहीं होता है। शरीर के विभिन्न अंगों के विकास में परिपक्वता अलग-अलग अवधि में आती है। जैसे किशोरावस्था के प्रारम्भ तक हाथ-पैर एवं नाक पूर्णत: विकसित हो जाते हैं परन्तु चेहरे के नीचे का भाग एवं कंधे का विकास धीमी गति से होता है।

8. विकास के विविध प्रकार्यों में सहसम्बन्ध पाया जाता है : यह सामान्य विश्वास है कि विकास के एक पक्ष की कमी की क्षतिपूर्ति स्वाभाविक रूप से अन्य क्षमता के उच्चतर विकास द्वारा होती है। जैसे कुशाग्र बुद्धि का बालक शारीरिक रूप से कमजोर हो सकता है। जब शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है, तो मानसिक विकास भी तीव्रगति से होता है।

9. विकास में वैयक्तिक भिन्नताएं पायी जाती हैं : यद्यपि विकास स्वरूप सभी बच्चों में समान पाया जाता है तथापि प्रत्येक बच्चों का विकास अपने ढंग एवं गति से होता है। कुछ बच्चों का विकास धीरे-धीरे एवं एक चरण से दूसरे चरण की ओर अग्रसर होता है तो कुछ बच्चों में विकास तीव्र गति से होता है। इस प्रकार सभी बच्चे विकास की उत्कृष्टता को एक ही आयु में नहीं प्राप्त कर पाते हैं। विकास में भिन्नता कई कारणों से पायी जाती है। जैसे-शारीरिक विकास, आंशिक रूप से आनुवंशिक क्षमताओं एवं कुछ अंश तक अन्य परिवेशीय कारकों जैसे भोजन, स्वास्थ्य, शुद्ध हवा व प्रकाश, संवेग एवं शारीरिक थकान इत्यादि द्वारा निर्धारित होता है। इसी प्रकार बौद्धिक विकास आन्तरिक क्षमताओं के अतिरिक्त सांवेगिक दशाओं, प्रोत्साहन, सीखने का अवसर, तीव्र अभिप्रेरणा इत्यादि से निर्धारित होता है।

10. विकासात्मक स्वरूपों की निश्चित अवधि होती है : यद्यपि विकास सतत रूप से होता है तथापि किसी अवधि में विकास तीव्र तो किसी अवधि में धीमी गति में पाया जाता है। विजॉय का सुझाव है कि इन समयावधियों को न केवल आयु के आधार पर बल्कि अन्य जैविकीय घटनाओं एवं व्यक्ति के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर रेखांकित किया जा सकता है।

11. विकास की प्रत्येक अवधि से कुछ सामाजिक अपेक्षाएं होती हैं : प्राय: यह देखा जाता है कि कुछ सामाजिक व्यवहार एवं कौशल आयु की किसी अवधि में दूसरी अवधि की अपेक्षा अधिक सफलतापूर्वक सीखे जाते हैं। अत: समाज, व्यक्ति से इसी समयसारिणी के अनुसार विकास की प्रत्याशा रखता है। इन सामाजिक अपेक्षाओं को 'विकासात्मक कार्य' (Developmental task) भी कहा जाता है। हेविगहस्ट (1995) ने विकासात्मक कार्यों को इस प्रकार परिभाषित किया है, 'विकासात्मक कार्य वे कार्य हैं जो व्यक्ति के जीवन की किसी निश्चित अवधि में उत्पन्न होते हैं, इनकी सुलभ उपलब्धि उनके लिए प्रसन्नतादायक होती है एवं बाद में कार्यों की सफलता की ओर ले जाती है। इसके विपरीत, इन कार्यों में जटिलता एवं कठिनाई उत्पन्न करती है।' इनमें से कुछ कार्य परिपक्वता के कारण होते हैं, तो अन्य प्रकार के कार्यों का विकास सामाजिक, सांस्कृतिक दबाव से होता है, जैसे उपयुक्त यौन भूमिकाओं को सीखना या पढ़ने-लिखने की शैली को सीखना।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. वृद्धि का तात्पर्य संरचनात्मक शारीरिक परिवर्तनों से है, जैसे-व्यक्ति की लम्बाई, आकार एवं वजन में वृद्धि को दर्शाता है।
2. विकास के अन्तर्गत गुणात्मक परिवर्तन आते हैं, जैसे-सामाजिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास।
3. वृद्धि एवं विकास में प्रमुखता से अन्तर पाया जाता है, जैसे-वृद्धि मूर्त होती है इसे देख सकते हैं, किन्तु विकास अमूर्त होता है इसे देखा नहीं जा सकता।
4. विकास की प्रमुखत: आठ अवस्थाएं पायी जाती हैं।
5. विकास के नियमों में कई नियम सम्मिलित किये जाते हैं, जैसे-ये परिवर्तनशील होते हैं, निश्चित क्रम में होते हैं, परिपक्वता और अधिगम का परिणाम होते हैं। इनमें आरम्भिक विकास बाद के विकास की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। विकास सामान्य से विशिष्ट की ओर होते हैं। इनमें निरन्तरता पायी जाती है इत्यादि।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें :

(i) गुणात्मक होती है।

(अ) वृद्धि (ब) विकास

(स) प्रत्यय (द) अ व ब दोनों

(ii) 3-12 वर्ष की आयु कहलाती है।

(अ) गर्भावस्था (ब) शैशवावस्था

(स) बाल्यावस्था (द) किशोरावस्था

(iii) विकास परिणाम है-

(अ) आयु (ब) अधिगम

(स) परिपक्वता (द) ब व स दोनों का

(iv) विकासात्मक स्वरूपों की अवधि होती है।

(अ) निश्चित (ब) अनिश्चित

(स) अनन्त (द) कोई नहीं

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

(i) विकास में.....पायी जाती है।

(ii) विकास की प्रक्रिया.....से लेकर.....तक

चलती रहती है।

(iii) .....जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

(iv) गर्भाधान से जन्म तक की अवस्था को.....अवस्था कहते हैं।

3. विकासात्मक कार्य किसे कहते हैं?
4. वृद्धि एवं विकास में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. विकास के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
6. विकास की अवस्थाओं को समझाइये।
7. विकास के नियमों का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला

1. (i) ब (ii) स (iii) द (iv) अ
2. (i) वैयक्तिक भिन्नता (ii) गर्भधारण, मृत्यु
   (iii) विकास (iv) गर्भकालीन

अध्याय 4

गर्भावस्था

गर्भावस्था के लक्षण एवं संकेत

गर्भावस्था का समय 9 माह 7 दिन का होता है। गर्भावधि की गणना रजोधर्म के अन्तिम दिन से प्रसव के दिन तक की होती है। जब स्त्री के अण्डाणु का निषेचन पुरुष के शुक्राणु से हो जाता है तो इसे निषेचित अण्डाणु कहते हैं। इस निषेचित अण्डाणु में बड़ी तीव्र गति से गुणन क्रिया होती है, जिससे इनका वृद्धि एवं विकास होता है। जब ये निषेचित अण्डाणु गर्भाशय में अपना स्थान बना लेते हैं तथा माता के अपरा से पोषण प्राप्त करने लगते हैं तब गर्भावस्था के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

प्रथम 5 माह के लक्षण व संकेत

1. **मासिक चक्र का रुकना।**
2. **प्रात:काल जी मिचलाना**– चक्कर आना व उलटी आना।
3. **अधिक नींद का आना**–हार्मोन में परिवर्तन के कारण व शरीर में नवीन प्रक्रियाओं के समायोजन के लिए अतिरिक्त विश्राम की आवश्यकता होती है।
4. **लार का अधिक स्त्रवण**–खट्टे या मीठे भोज्य पदार्थों को देखकर लार स्त्रवण बढ़ जाता है।
5. **आलस्य व सुस्ती का अनुभव।**
6. **बार-बार मूत्र विसर्जन हेतु जाना**–बढ़े हुए गर्भाशय का भार मूत्राशय पर पड़ता है, जिससे बार-बार स्त्री को मूत्र त्यागने की इच्छा होती है।
7. **गर्भ की हलचल का अनुभव**–यह अनुभव 16-18सप्ताह की अवधि में होता है। गर्भस्थ शिशु के हाथ व पैरों की हलचल माँ को अनुभव होती है।
8. **पेट का बढ़ना**–गर्भाशय के आकार में वृद्धि होने से उदर में भी वृद्धि होने लगती है।

प्रथम 5 माह की अवधि में चिकित्सक द्वारा जाने गये संकेत

1. **स्तनों में परिवर्तन**–स्तनों का आकार बढ़ने लगता है। चौथे माह में स्तनों के चारों ओर कालिमा छा जाती है व पाँचवें माह तक स्तनों की शिराएं फूलने लगती हैं।
2. **गर्भाशय के आकार, आकृति एवं स्थिति में परिवर्तन**–गर्भाशय सामान्य स्त्री की अपेक्षा गोलाकार हो जाता है। गर्भकाल के चौथे व पाँचवें माह तक गर्भाशय के मध्य भाग तथा अग्रभाग नाभि तक पहुँच जाते हैं। इस प्रकार गर्भाशय में वृद्धि होती है।
3. **भ्रूण की उपस्थिति से उत्पन्न संकेत**–चौथे माह तक भ्रूण का विकास हो जाता है तथा अब यह गर्भ में हलचल करने लगता है जिसे माता स्पष्ट अनुभव करने लगती है। भ्रूण के विकास के साथ-साथ गर्भाशय में उल्व तरल पदार्थ भी बढ़ने लगता है। स्टैथोस्कोप से भ्रूण के हृदय की धड़कन को सुना जा सकता है।
4. **योनि का नीला पड़ना**–गर्भावस्था के दूसरे माह से योनि के रंग में परिवर्तन होने लगता है। चौथे माह तक योनि का नीलापन अपनी चरम सीमा पर होता है जो प्रसव के समय तक बना रहता है।
5. **त्वचा में परिवर्तन**–गर्भवती स्त्री के चेहरे का रंग पीला व आँखों के नीचे व ऊपर के होंठ के आस-पास का रंग कुछ काला हो जाता है।

अन्तिम 5 माह में उत्पन्न लक्षण एवं संकेत

1. भ्रूण की क्रियाशीलता बनी रहती है व भ्रूण की गतिशीलता निरन्तर बढ़ती जाती है।
2. स्तनों के भार में वृद्धि भी निरन्तर होती रहती है।
3. पैरों की पेशियों में अन्त:उदरीय रक्तचाप के बढ़ने से संकुचन होने लगता है व सूजन आ जाती है।
4. गर्भावस्था के अंतिम दो-तीन माह में गर्भवती स्त्री की महाप्राचीरा पेशियां मध्य पट पर अधिक दबाव पड़ने लगता है जिससे साँस लेने में कठिनाई का अनुभव होता है।
5. गर्भाशयी संकुचन भी होता रहता है।

गर्भावस्था में आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन

1. **उपापचयात्मक परिवर्तन**–गर्भवती स्त्री के शरीर में अधिक पोषण की माँग, भ्रूण द्वारा अधिक पोषण की माँग, स्तनपान हेतु अतिरिक्त पोषण की माँग, गर्भाशय की वृद्धि व विकास के लिए उपापचयात्मक परिवर्तन होता है। अमाशयिक स्राव भी कम होने लगता है जिससे भोजन अधिक समय तक अमाशय में पड़ा रहता है। प्रोजेस्टीरोन हार्मोन की उपस्थिति के कारण आँतों की पेशियों में शिथिलता आ जाती है। कब्ज, उल्टी, जी मिचलाने व छाती में जलन की समस्या भी होती हैं।

2. **मूत्र नलिकाओं में परिवर्तन**–रक्त-परिसंचरण वृक्क की ओर अधिक होने लगता है जिससे वृक्क को अतिरिक्त कार्य करना पड़ता है। ग्लो मेरुलर फिल्टरेशन की गति 50 प्रतिशत तक बढ़ जाती है, जिससे अधिक यूरिया का निष्कासन होने लगता है, इस अवस्था में ग्लूकोज के पुन:शोषण की गति कम हो जाती है, जिससे मूत्र में ग्लूकोज आने लगता है। प्रोजेस्टीरोन हार्मोन के अत्यधिक स्राव से मूत्र नलिकाएं फूलकर वक्र हो जाती हैं।
3. **रक्त परिसंचरण में परिवर्तन**–शरीर में रक्त की मात्रा बढ़ने के कारण हृदय को अधिक कार्य करना पड़ता है। रक्तवारी के आयतन (Volume) में वृद्धि हो जाती है। रक्त में हीमोग्लोबिन का प्रतिशत कम हो जाता है। रक्तचाप भी चौथे व पाँचवें माह तक बढ़ जाता है। रक्तचाप के बढ़ने से टाँगों की शिराएँ फूलकर मोटी हो जाती हैं।
4. **श्वसन सम्बन्धी परिवर्तन**–गर्भाशय का बढ़ता भार महाप्राचीरा पेशी पर पड़ता है जिससे यह दब जाती है, फलत: श्वसन क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है।
5. **हार्मोन्स में परिवर्तन**–गर्भावस्था के दौरान एड्रीनोकोर्टीको तथा थाइरोट्रोपिन की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। एड्रीनल ग्रन्थियों से भी अधिक मात्रा में कार्टिकोस्टीरोन हार्मोन स्रावित होने लगता है, जिससे उदर पर निशान बन जाते हैं। रक्त में प्रोजेस्टीरोन हार्मोन की उपस्थिति के कारण उथला श्वास होता है। थायराइड ग्रन्थि का आकार बढ़ जाता है।
6. **नाड़ी संस्थान में परिवर्तन**–नाड़ी संस्थान में परिवर्तन के कारण गर्भवती में तनाव, भय, चिन्ता, सिरदर्द आदि का अनुभव होता है।
7. **योनि मार्ग, ग्रीवा व गर्भाशय में परिवर्तन**–हार्मोन्स का प्रभाव प्रजनन अंगों पर पड़ता है। स्ट्रोजन के कारण योनि मार्ग की श्लेष्मिक झिल्ली अधिक मोटी हो जाती है, रंग नीला पड़ जाता है। ग्रीवा में रक्त नलिकाओं का जाल बढ़ जाता है व ग्रीवा की संयोजक तन्तुएँ अधिक आर्द्रताग्राही हो जाती हैं।
8. **उदर व श्रोणि जोड़ों में परिवर्तन**–उदर में वृद्धि के कारण वहाँ की त्वचा में तनाव पैदा होता है जिससे वहाँ की त्वचा लचीली होकर खिंचकर फट जाती है, फलस्वरूप पेट पर धारियाँ बन जाती हैं।
9. **पेशियों व कंकाल तन्त्र में परिवर्तन**–ऐच्छिक पेशियों की गति कम हो जाती है। पीठ व कमर की पेशियों में भी खिंचाव होता है। मलाशय की पेशियों पर दबाव पड़ता है, जिससे गुदा-द्वार की शिराएँ फूल जाती हैं और बवासीर भी हो सकता है।

गर्भाधान–गर्भाधान के क्षण से ही विकास प्रक्रिया शुरू हो जाती है एवं गर्भित कोशिका जो डिम्ब (Ovum) एवं शुक्राणु (Sperm) के सम्मिलन से निर्मित होती है, उसमें समस्त आनुवंशिक सूचनाएँ कूट संकेतित (Coded) रहती हैं जिससे कुछ समयान्तराल के पश्चात् एक पूर्ण मानव का निर्माण होता है।

गर्भकालीन विकास की अवस्थाएँ– गर्भकालीन विकास की कुल अवधि 9 माह की होती है, इसे तीन अवस्थाओं में विभाजित किया है (चित्र 4.1)।

(1) **बीजावस्था (Zygote) :** शुक्राणु से गर्भित डिम्ब से बीजावस्था प्रारम्भ होती है। यह दो सप्ताह तक चलती है। आन्तरिक भाग में निरन्तर कोशिका विभाजन की क्रिया चलती रहती है, जिसके कारण कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि होती है। गर्भाधान के 7-8दिन तक निषेचित डिम्ब माता के गर्भाशय में उपस्थित तरल पदार्थ में तैरता है। 10 दिन बाद यह माता के गर्भाशय की दीवार से चिपक जाता है, जिसे आरोपन कहते हैं। पहले समूह से शिशु शरीर का विकास होता है, दूसरे से नाभि नाल एवं अपरा का विकास तथा तीसरा कोशिकाओं का समूह पारदर्शी झिल्ली का रूप ग्रहण कर लेता है। इस झिल्ली में 'गर्भस्थ जीव' लिपटा रहता है तथा इसकी सुरक्षा होती है।

(2) **भ्रूणावस्था (Embryo Period) :** भ्रूणावस्था में विकास की अवस्था प्रारम्भ होती है। यह तीसरे सप्ताह से प्रारम्भ होकर माह के अंत तक होती है, बढ़ते हुए कोषों के समूह को 'भ्रूण' (Embryo) कहते हैं। इस अवधि में भ्रूण का संरचनात्मक विकास पूर्ण हो जाता है।

(अ) **बाह्य परत**– यह भ्रूण की सबसे ऊपरी एवं पहली परत होती है, इस परत से शिशु के बाल, नाखून, त्वचा, दाँत एवं नाड़ी मंडल का निर्माण होता है।

चित्र 4.1 : **गर्भावस्था की अवस्थाएँ**

(ब) **मध्य परत**–इससे त्वचा के भीतरी भाग व मांसपेशियों का निर्माण होता है।

(स) **अन्त: परत**–इससे सभी जीवनोपयोगी अंगों (फेफड़े, मस्तिष्क, यकृत, पाचन प्रणाली) का निर्माण होता है। भ्रूणावस्था के अन्त तक भ्रूण 1-1/4 इंच से 2 इंच की लम्बाई प्राप्त कर लेता है व वजन 15-

20 ग्राम का हो जाता है। माह अन्त तक भ्रूण के हृदय में धड़कन प्रारम्भ हो जाती है व नाभि नाल का विकास होता है।

(3) **गर्भस्थ शिशु (Period of foetus) :** यह अवस्था 3 माह से लेकर शिशु के जन्म के पहले तक की है। इसमें शरीर के विभिन्न अंगों एवं मांसपेशियों का विकास पूर्ण हो जाता है और सभी अंग क्रियाशील हो जाते हैं। लम्बाई, आकार, आकृति एवं वजन में तेजी से वृद्धि होती है।

3 माह–इस माह में शिशु छोटा व मोटा अर्द्धवृत्त के समान दिखाई देने लगता है। रीढ़ की हड्डी बनने लगती है। शरीर लम्बा हो जाता है व माह के अन्त तक हाथ व पैर बनने प्रारम्भ हो जाते हैं। गुलाबी रंग की त्वचा बनती है। सिर का विकास शरीर के आकार का 1/3 भाग होता है व गुर्दे कार्य करना शुरू कर देते हैं। इसी माह में चेहरा भी बनने लगता है। बाह्य कान, आँख की पलकें बन जाती हैं और हाथ अधिक लम्बे होते हैं। लम्बाई 6-8सेमी व वजन 3/4 औंस हो जाता है। पोषण अब नाभिनाल से नाभिरज्जु (Umbilical cord) द्वारा होने लगता है। गर्भाशय के आकार में वृद्धि होती है।

4 माह–शिशु का सिर अधिक बड़ा होता है व छोटे-छोटे बाल भी उग जाते हैं। पीठ धनुषाकार होती है व हाथ-पैरों की उँगलियों में नाखून और मसूड़ों के भीतर दाँत का विकास होने लगता है। लिंग निर्धारण भी इसी माह में होता है। माह के अन्त तक आन्तरिक अंग अपना-अपना कार्य करने लगते हैं। लम्बाई 11-12 सेमी तथा वजन 100-110 ग्राम हो जाता है।

5 माह–हृदय की धड़कन में स्पष्टता आती है। मांसपेशियों के सक्रिय होने से क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। लम्बाई 18-20 सेमी व वजन 280-300 ग्राम हो जाता है।

6माह–इस माह में त्वचा पर कोमल रोएं उगने लगते हैं तथा शरीर पर सफेद क्रीम जैसा चिपचिपा तैलीय तरल पदार्थ भी एकत्रित होने लगता है जिसे वर्निक्स (Vernix) कहते हैं। माता को शरीर के अंगों के संचालन का अनुभव होने लगता है। शिशु की पलकें अलग-अलग हो जाती हैं। सिर का विकास तीव्र होता है। माह के अंत तक 30-32 सेमी लम्बाई व वजन 600-750 ग्राम तक होता है।

7 माह–इस माह तक सम्पूर्ण शिशु बन जाता है। हाथ-पैरों की उँगलियों में नाखून बन जाते हैं। सामान्यत: किसी एक स्थिति को ग्रहण कर लेता है। क्रियाशीलता कम हो जाती है। इस समय तक लम्बाई 15-16इंच तथा वजन 1.5-2 किलो तक हो जाता है।

8माह–आँखें पूर्ण रूप से विकसित हो जाती हैं, रेटिना का निर्माण हो जाता है, श्वसन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है व त्वचा एवं शरीर में वसा एकत्रित होती है। शिशु परिपक्व हो जाता है।

9 माह–त्वचा का रंग स्वाभाविक हो जाता है। बाल उग आते है। होंठ पतले व गुलाबी रंग के होते हैं। वसीय तन्तुओं की मात्रा भी अधिक होती है। 9 माह के अन्त तक 3.0-3.5 किग्रा. वजन व लम्बाई 18-20 इंच तक हो जाती है। नौवें माह के अन्त तक गर्भवती स्त्री को गंभीर संकुचन होने लगता है। जन्म से पूर्व शिशु धीरे-धीरे गर्भाशय में नीचे की ओर खिसकने लगता है।

गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले कारक

गर्भावस्था के कष्ट

- जी मिचलाना या प्रात: वमन
- कब्ज
- छाती में जलन
- अपच
- अनिद्रा
- बवासीर
- पेशीय ऐंठन
- बार-बार मूत्र उत्सर्जन
- कमर का दर्द
- शारीरिक सूजन
- शिराओं का फूल जाना
- योनि स्राव
- अल्प श्वास
- आहार के प्रति घृणा या प्रेम

गर्भवती स्त्री की देख-भाल

आहार–गर्भावस्था में आहार का बहुत महत्त्व है। संतुलित आहार के सेवन से स्वास्थ्य उत्तम रहता है। इस अवस्था में अतिरिक्त भोज्य तत्त्वों (कार्बोज, प्रोटीन, विटामिन व खनिज लवण) की आवश्यकता होती है।

गर्भवती स्त्री को अनाज (चावल, गेहूँ, बाजरा, जौ, मक्का, रागी आदि), दूध व दूध से बने भोज्य पदार्थ, पनीर, दाल, दही, अण्डा, मछली, सोयाबीन, मूँगफली, सूखे मेवे, तेल, घी, नारियल, तेल युक्त

बीज, पपीता, आम, गाजर, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, गुड़, शलजम, हल्दी, केला आदि जो कि कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज लवण (कैल्सियम, फास्फोरस, आयरन, आयोडीन) जल व रेशे आदि से भरपूर पोषण हो वही सन्तुलित आहार में शामिल करने चाहिए।

- गर्भवती माँ को एक या दो बार भरपेट भोजन न करके थोड़ी-थोड़ी मात्रा में 5-6बार भोजन करना चाहिए।
- मिर्च, मसाले युक्त, तला गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिए।
- हरी पत्तेदार सब्जियाँ, छिलके सहित फल, पीली सब्जियाँ, सलाद, दूध, छाछ आदि को अधिक मात्रा में आहार में सम्मिलित करना चाहिए।
- जल की भी मात्रा अधिक लेनी चाहिए।
- छिलकेदार दाल, चोकर सहित आटा, अंकुरित अनाज आदि के सेवन से कब्ज की शिकायत नहीं होगी।
- रात्रि में सोने से दो घण्टे पूर्व भोजन कर लेना चाहिए।
- बासी व गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिए।
- आराम व नींद पर्याप्त मात्रा में लेनी चाहिए व आरामदायक वस्त्र पहनने चाहिए ताकि शारीरिक क्रियाओं में बाधा न आए व रक्त-संचार सुचारु हों।
- हलका-फुलका हानि रहित व्यायाम करना चाहिए।
- स्वच्छ वायु व सूर्य का प्रकाश भी नियमित रूप से लेना चाहिए ताकि मानसिक शान्ति के साथ शरीर सुचारु रूप से चलता रहे।
- शारीरिक स्वच्छता, वातावरण स्वच्छता, आहार स्वच्छता व वस्त्र स्वच्छता का अच्छे से खयाल रखना चाहिए।
- मानसिक स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना चाहिए। गर्भवती माँ को खुश व चिन्तामुक्त, सकारात्मक होना चाहिए व सुबह-शाम खुले स्थान व स्वच्छ वायु में टहलना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. गर्भावस्था का समय 9 माह 7 दिन का होता है, गर्भावधि की गणना रजोधर्म के अन्तिम दिन से प्रसव के दिन तक की होती है।
2. मासिक चक्र का रुकना, प्रात:काल जी मिचलाना, अधिक नींद का आना, बार-बार मूत्र उत्सर्जन हेतु जाना, पेट का बढ़ना आदि गर्भावस्था के प्रथम पाँच माह के लक्षण हैं।
3. भ्रूण की क्रियाशीलता में वृद्धि, स्तनों के भार में वृद्धि, पैरों की पेशियों में संकुचन, गर्भाशयी संकुचन आदि गर्भावस्था के अन्तिम पाँच माह के लक्षण हैं।
4. उपापचयात्मक परिवर्तन, मूत्र नलिकाओं में परिवर्तन, रक्त परिसंचरण में परिवर्तन, श्वसन संबंधी परिवर्तन, उदर प्रदेश श्रोणि जोड़ों में परिवर्तन आदि गर्भावस्था में आन्तरिक रूप से होते हैं।
5. बीजावस्था, भ्रूणावस्था, गर्भस्थ शिशु-ये गर्भावस्था की तीन अवस्थाएँ हैं।
6. गर्भवती माता का आहार, मादक पदार्थों का सेवन, संवेगात्मक अनुभूतियाँ, स्वास्थ्य, माता-पिता की उम्र सभी गर्भकालीन विकास को प्रभावित करते हैं।
7. अनिद्रा, बवासीर, कमर दर्द, सूजन, अल्प श्वास, कब्ज, उल्टी, छाती में जलन आदि कष्ट गर्भावस्था में होते हैं।
8. माता और बच्चे के अच्छे स्वास्थ्य के लिए माता को संतुलित भोजन करना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें :

प्रश्न i. गर्भावस्था का समय है-

(अ) 10 माह 2 दिन (ब) 9 माह 7 दिन

(स) 8माह (द) 7 माह

प्रश्न ii. गर्भावस्था का प्रारम्भिक लक्षण है-

(अ) अधिक नींद आना (ब) मासिक चक्र का रुकना

(स) लार का अधिक स्रवण (द) बार-बार मूत्र उत्सर्जन हेतु जाना

प्रश्न iii. भ्रूण की उपस्थिति का संकेत माँ को मिलता है-

(अ) 3 माह (ब) 7 माह

(स) 4 माह (द) 6माह

प्रश्न iv. गर्भकालीन विकास की सर्वप्रथम अवस्था है-

(अ) भ्रूणावस्था (ब) गर्भस्थ शिशु

(स) आरोपन (द) बीजावस्था

प्रश्न v. गर्भावस्था में आरोपन कहते हैं-

(अ) भ्रूण में मसूड़ों का निर्माण होना

(ब) निषेचित डिम्ब का माता के गर्भाशय की दीवार से चिपक जाना

(स) अपरा नाल

(द) अंगों व मांसपेशियों का बनना

प्रश्न vi. लिंग निर्धारण गर्भावस्था के किस माह में होता है।

(अ) 2 माह (ब) 4 माह

(स) 5 माह (द) 6माह

प्रश्न vii. गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले कारक हैं-

(अ) गर्भवती माता का आहार

(ब) माता-पिता की अभिवृत्तियाँ

(स) मादक पदार्थों व शराब का सेवन

(द) उपरोक्त सभी

प्रश्न viii. जन्म के समय शिशु का सामान्य वजन होना चाहिए।

(अ) 2.5-3.0 किग्रा (ब) 3.0-3.5 किग्रा

(स) 5.0-6.0 किग्रा (द) 4.0-4.5 किग्रा

२. रिक्त स्थान भरो

प्रश्न i. गर्भाशय का आकार सामान्य स्त्री की अपेक्षा.....हो जाता है।

प्रश्न ii. गर्भावस्था में निषेचित अण्डाणु आरोपन के बाद..... से पोषण प्राप्त करता है।

प्रश्न iii. .....से भ्रूण के हृदय की धड़कन को सुना जा सकता है।

प्रश्न iv. पैरों की पेशियों में.....के बढ़ने से संकुचन होने लगता है व सूजन आ जाती है।

प्रश्न v. .....हार्मोन की उपस्थिति के कारण आँतों की पेशियों में शिथिलता आ जाती है।

प्रश्न 3. गर्भावस्था में प्रथम पाँच माह के लक्षण व संकेत क्या हैं?

प्रश्न 4. गर्भावस्था में आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन क्या होते हैं?

प्रश्न 5. गर्भावस्था में रक्त परिसंचरण में क्या परिवर्तन आता है?

प्रश्न 6. बीजावस्था क्या है?

प्रश्न 7. भ्रूणावस्था को विस्तार से समझाओ।

प्रश्न 8. गर्भावस्था की विकास की अवस्थाएँ समझाइए।

प्रश्न 9. गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को विस्तार में लिखो।

प्रश्न 10. गर्भवती स्त्री की देख-भाल व गर्भावस्था के कष्ट क्या है?

उत्तरमाला :

1. (i) ब, (ii) ब, (iii) स, (iv) द, (v) ब, (vi) ब, (vii) द, (viii) ब

2. (i) अधिक (ii) माता (iii) स्टेथोस्कोप
   (iv) रक्तचाप (v) प्रोजेस्ट्रोन

अध्याय 5

प्रसूता एवं नवजात शिशु की देख-भाल

प्रसूता की देख-भाल

शिशु जन्म के बाद चिकित्सक, नर्स अथवा प्रशिक्षित दाई शिशु की तात्कालिक देख-भाल करते हैं। इसके बाद प्रसूता स्त्री की देख-भाल करनी आवश्यक हो जाती है। प्रसव की कठिन पीड़ा के बाद प्रसूता स्त्री काफी सुस्त एवं शक्तिहीन हो जाती है। उसे नींद या बेहोशी का सा अहसास होता है अत: उसे गर्म दूध या चाय पीने को दी जाती है। इसके पश्चात् प्रसूता को निश्चिन्त होकर सोने दिया जाना चाहिए।

गर्भावस्था के दौरान स्त्री के गर्भ सम्बन्धी अंगों में विशेष परिवर्तन होते हैं, जिसे पुन: अपने स्वाभाविक रूप में आने में काफी समय लगता है। प्रसूता को इस समय बहुत आराम की आवश्यकता होती है। इस समय गर्भाशय का आकार एक किलोग्राम तक होता है जो सामान्य आकार-अवस्था (40-50 ग्राम) से अधिक होता है। इसे अपनी सामान्य अवस्था में आने में लगभग 40 दिन का समय लगता है अत: प्रसूता को अधिक आराम करने की सलाह दी जाती है। इन दिनों रक्त स्राव भी अधिक होता है जो लगभग 20-30 दिनों तक रहता है अत: प्रसूता को पौष्टिक आहार के साथ शारीरिक स्वच्छता का जैसे स्वच्छ वस्त्र पहनना, स्वच्छ नैपकिन के उपयोग आदि का ध्यान रखना चाहिए।

इसके अतिरिक्त प्रसूता को भारी कार्य जैसे-वजन उठाना, पानी की भरी बाल्टी उठाना इत्यादि कार्य नहीं करने चाहिए।

मूत्राशय में भी कई बार संक्रमण हो जाता है जिससे प्रसूता को ज्वर रहने लगता है। प्रसव के पश्चात् पाचन शक्ति भी कमजोर हो जाती है, इसके लिए प्रसूता को प्रथम दिन खिचड़ी, दलिया, दूध, सब्जियों का सूप, दाल व अन्य ठोस भोज्य पदार्थ खाने को देते हैं, जो कि सभी प्रकार के विटामिन तथा खनिज लवणों से युक्त होते हैं।

सामान्य प्रसव में प्रसूता को अजवाइन, गुड़ का पानी, बादाम और खसखस का हलवा, गोंद के लड्डू, मेथी, मेवे के गुड़ व घी में बने लड्डू भी खाने को दिये जाते हैं, परन्तु प्रसूता को मिर्च-मसालेदार, तला-भुना, बासी, गरिष्ठ व खट्टा भोज्य पदार्थ खाने को नहीं देना चाहिए। इस समय प्रसूता को दिन में 5-6बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में सुपाच्य भोजन देना चाहिए तथा कम-से-कम 40-50 दिन तक विश्राम की व्यवस्था भी करनी चाहिए।

प्रसव के समय के लिए आवश्यक तैयारी

1. उचित डॉक्टर का चुनाव।
2. प्रसव हेतु स्थान का चयन।
3. प्रसव पश्चात् देख-भाल हेतु दाई या नर्स का चुनाव।
4. प्रसूता के लिए वस्त्र एवं अन्य सामग्री तैयार करना।
5. घर पर प्रसव की स्थिति में प्रशिक्षित दाई का चुनाव करना।
6. नवजात शिशु के लिये उपयोगी वस्त्र व अन्य आवश्यक सामग्री एकत्रित करना।

नवजात शिशु की देख-भाल

नवजात शिशु-गर्भस्थ शिशु जो माँ के शरीर से जन्म लेता है, नवजात शिशु (Neonate) कहलाता है। नवजात की देखभाल में काफी सावधानी व धैर्य बरतने की आवश्यकता है। शिशु के साथ कोमलता से व्यवहार करना होता है। नौ माह तक शिशु अपनी माँ के गर्भ में रहता है, जहाँ उसे उचित सुरक्षा एवं तापमान मिलता है।

जन्म के पश्चात् शिशु की शारीरिक क्रियाएँ

1. फुफ्फुसीय श्वसन क्रिया।
2. पाचन क्रिया की शुरुआत।
3. रक्त परिसंचरण में परिवर्तनों की स्थापना।
4. ताप का नियन्त्रण।
5. रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित करना।

शिशु का कृत्रिम पोषण

शिशु के लिए माता का दूध अमृत तुल्य है। माता के दूध से बेहतर और श्रेयस्कर कोई भी दूध शिशु के पोषण के लिए श्रेष्ठ नहीं है। यह कीटाणुरहित, ताजा, सदा उपलब्ध रहने वाला, दुग्ध-परिष्कृति की कोई गुंजाइश नहीं, गुर्दीय विलेय (Renal Solute) कम एवं सभी गुणों से भरपूर रहता है। स्तनपान कराते समय शिशु के सिर के नीचे हाथ रखे जिससे दूध पीते समय शिशु की गर्दन को सहारा मिल सके। ध्यान रखे कि शिशु को सांस लेने में तकलीफ न हो इसके लिए उसकी नाक को दबने से बचाए। दूध पीने के पश्चात् शिशु को धीरे से कंधे पर लेकर उसकी कमर पर हाथ फेर कर उसे डकार दिलाये जिससे शिशु की आहारनाल में उपस्थित वायु निकल जायेगी और दूध आसानी से पच जाएगा। दूध पिलाते समय माता को प्रेम, वात्सल्य व ममतापूर्वक प्रसन्नचित्त होकर शिशु को दूध पिलाना चाहिए। परन्तु कई कारणों से यदि माता शिशु को स्तनपान नहीं करवा सकती है तो शिशु को भैंस, गाय, बकरी, डिब्बे के

चित्र 5.1 : **स्तनपान**

तैयार दूध पर निर्भर रहना पड़ता है।

माता के दूध के अतिरिक्त या उसके स्थान पर जो भी 'दूध' शिशु को 'पोषण' हेतु दिया जाता है उसे फार्मूला (Formula) कहते हैं। पोषण एवं पाचन की दृष्टि से गाय का दूध शिशु के लिए उत्तम है, परन्तु कई बार अगर गाय का ताजा दूध उपलब्ध नहीं होता तो उसे भैंस, बकरी का दुग्ध या दूध का पाउडर दिया जा सकता है।

फार्मूला तैयार करने के मूलभूत सिद्धान्त (चित्र 5.2)

1. दूध साफ, स्वच्छ एवं जीवाणुरहित रहना चाहिए।
2. दूध का फार्मूला तैयार करते समय यह अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए कि इससे शिशु का वजन, शक्ति एवं ऊष्मा की आवश्यकता की पूर्ति हो सके।
3. वह शिशु के लिये सुपाच्य हो।

चित्र 5.2 : **फार्मूला तैयार करना**

बोतल की सफाई (चित्र 5.3)

सफाई की दृष्टि से चौड़े मुँह की बोतल का उपयोग करना अच्छा रहता है। बोतल तथा निपल को स्वच्छ करके विसंक्रमित करना अत्यन्त आवश्यक है। बोतलों को साफ करने के लिए उन्हें सर्फ या साबुन के पानी से खूब अच्छी तरह ब्रश से रगड़ कर धो लेना चाहिए। इसके पश्चात् उसे खौलते पानी में 10–15 मिनट तक ढककर उबालना चाहिए ताकि बोतल का विसंक्रमण हो जाए।

निपल

1. दूध पिलाने के पश्चात् तुरन्त निपल को धो लेना चाहिए।
2. उसे अन्दर व बाहर–दोनों ओर से ब्रश से रगड़ कर साफ करना चाहिए।
3. निपल को खौलते पानी से ना धोकर गर्म पानी से साफ करें।
4. निपल को हमेशा ही चौड़े मुँह की बोतल, जार या प्लेट में ढककर रखना चाहिए ताकि इस पर मक्खियाँ आदि बैठकर इसे संदूषित न कर पाएं।

चित्र 5.3 : **बोतल की सफाई**

बोतल से दूध पिलाने की विधियाँ

1. शिशु को गोद में लेकर दूध पिलाना चाहिए उसी प्रकार जैसे स्तनपान करवाते हैं।
2. शिशु को गोद में लेकर सिर को थोड़ा ऊँचा कर देना चाहिए।
3. शिशु को तब तक दूध पिलाए, जब तक वह स्वयं ही दूध पीना न छोड़ दे। एक बार भरपेट दूध पी लेने पर शिशु स्वयं ही दूध पीना छोड़ देगा।
4. दूध पिलाने के पश्चात् शिशु का मुँह साफ कर उसे डकार दिलानी चाहिए। इसके लिए शिशु को कंधे पर लिटाकर हलके-हलके हाथों से पीठ को 10–15 मिनट तक थपथपाना चाहिए।

शिशु का स्नान (चित्र 5.4)

बालक के जीवन में स्नान व शरीर के विभिन्न अंगों की स्वच्छता

बहुत आवश्यक है। स्नान से शरीर के रोमों का मुख खुल जाता है, जिससे शरीर के भीतर के दूषित पदार्थों का निष्क्रमण सरलता से हो जाता है।

स्नान की विधि

शिशु को स्नान कराने से पूर्व की आवश्यक सामग्री जैसे नहाने का टब, बोरिक लोशन, तेल, तौलिया, शिशु के वस्त्र, पाउडर इत्यादि अपने पास रख लेने चाहिए तथा अन्य आवश्यक कार्य निबटा लेने चाहिए ताकि शिशु को नहलाते समय बीच में उठना न पड़े। शिशु को स्नान कराने से पूर्व जल की ऊष्णता का भी ध्यान रखना चाहिए। जल न तो अधिक गर्म हो और न ही बहुत अधिक ठण्डा। तापमान को थर्मामीटर या कुहनी द्वारा नापा जा सकता है।

चित्र 5.4 : **स्नान**

शिशु को नहलाने से पूर्व तेल की मालिश करनी चाहिए। उसके पश्चात् नर्म कपड़े में साबुन लगाकर शरीर पर हलके हाथों से रगड़ें। यही क्रिया कानों के पीछे, गर्दन के चारों ओर, बगल, कुहनी, जाँघों तथा पैरों में अच्छी तरह दुहराएं। तत्पश्चात् शिशु को पेट के बल लिटाकर पीठ आदि पर भी इसी प्रकार साबुन लगाए। अब धीरे-धीरे दोनों हाथों के सहारे से उठा कर बच्चे को टब में लिटाए। बाएँ हाथ के सहारे कंधों को ऊँचा रखे तथा सिर को बायीं बाँह का सहारा दें। पीठ के नीचे दाहिने हाथ का सहारा दें। इसी स्थिति में दाहिने हाथ से रगड़कर शरीर का साबुन धो दें। तत्पश्चात् शरीर को तौलिये से अच्छी तरह पोंछकर, लोशन लगाकर शिशु को मौसम के अनुकूल वस्त्र पहना दें।

मल-मूत्र विसर्जन (चित्र 5.5)

प्रारम्भिक अवस्था में शिशु के मल त्याग क्रिया करने के पूर्व अन्तड़ियों की मांसपेशियाँ असुविधा के कारण एकाएक संकुचित होती हैं। यह शौच क्रिया करने का पूर्व संकेत होता है। वह बिना प्रतीक्षा किए तुरन्त ही मल त्याग कर देता है। वह दिन में अनियमित रूप से कई बार मल त्यागने की क्रिया करता है। सामान्यत: 6मास की आयु से पूर्व शिशु के मल त्याग का समय प्राय: अनियमित रहता है। लेकिन जब वह माता के दूध के अतिरिक्त अन्य ठोस पदार्थ एवं गाय आदि का दूध लेने लगता है तो उसके

चित्र 5.5 : **मल-मूत्र विसर्जन**

मल त्याग का समय नियमित हो जाता है। माता को पहले मास से ही शिशु के शौच करने के समय का कुछ-कुछ ज्ञान हो जाता है। अब उसे चाहिए कि एक साफ ताम्रचीनी के पॉट या प्याले पर शिशु को मल त्याग के सम्भावित समय से पूर्व ही बिठा दें, कुछ दिनों के प्रयास से शिशु को पॉट में मल त्यागने का स्वयं ही अभ्यास हो जायेगा। पर यह तथ्य अवश्य दृष्टिगत रखना चाहिए कि शिशु स्वतन्त्र रूप से पॉट पर बैठ कर मल-त्याग के लिए तभी अकेला छोड़ा जाना चाहिए, जबकि उसकी पीठ की मांसपेशियाँ पर्याप्त रूप से विकसित हो जाये, उसमें शरीर का सन्तुलन बनाये रखने की क्षमता उत्पन्न हो जाये व उसमें गिरने के भय से सुरक्षित रहने की भावना समावेशित हो जाये।

विश्राम व निद्रा

बालक के मस्तिष्क एवं स्नायविक संस्थान को विश्राम देने से उसकी कार्यक्षमता तथा कार्यकुशलता बढ़ती है। निद्रा स्वास्थ्य का लक्षण है। यदि शिशु को गहरी नींद नहीं आती है तो यह समझना चाहिए कि उसके शरीर में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो गया है।

सोने का समय–एक स्वस्थ नवजात शिशु 24 घंटों में से लगभग 22 घण्टों तक सोता है। वह केवल उसी अवस्था में जागता है, जबकि उसे मल-मूत्र त्यागना हो या फिर उसे भूख लगी हो। शिशु की आयु ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसका निद्राकाल भी कम होता चला जाता है।

नींद पूर्ण होने से पहले भंग होने के कारण

1. भोजन ठीक से न पचने पर।
2. मल-मूत्र आदि से वस्त्र गीला होने पर।
3. अधिक मात्रा में दूध के सेवन से पेट भारी होने पर।
4. भूख या प्यास के कारण।
5. अधिक ठण्ड या गर्मी लगने पर।

6. पहने हुए वस्त्र अत्यधिक कसे हों।
7. अत्यधिक शोरगुल होने पर।
8. बालक के अस्वस्थ होने, उसे ज्वर, पेटदर्द या खाँसी होने पर।

गहरी निद्रा के लिए आवश्यक बातें

स्वच्छ व वायु युक्त कमरा
सुपाचन
मानसिक शान्ति
अच्छा स्वास्थ्य
उपयुक्त बिस्तर

बिस्तर लगाना (चित्र 5.6)

बालक के लिए अच्छी निद्रा आवश्यक है और गहरी व अच्छी निद्रा हेतु उपयुक्त बिस्तर का होना आवश्यक है। इसके लिए चाहिए कि बालक के बिस्तर साफ-सुथरे व मुलायम हों। बालक के बिस्तर का आकार सही होना चाहिए। बिस्तर लगाने से पूर्व ध्यान रखना चाहिए कि बिस्तर गीला ना हो। शिशु के सिर को सही आकार में रखने के लिए रूई से भरा तकिया उपयोग में लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिशु को उठाने वाले कम्बल या चादर अधिक भार युक्त नहीं होने चाहिए।

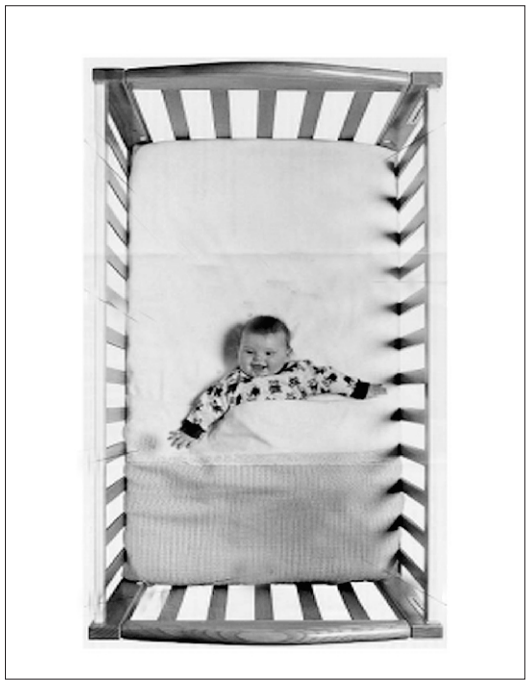

चित्र 5.6: **बिस्तर बनाना**

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. शिशु जन्म के बाद चिकित्सक-नर्स अथवा प्रशिक्षित दाई शिशु की तात्कालिक देख-भाल करते हैं।
2. गर्भावस्था के पश्चात् प्रसूता को बहुत आराम की आवश्यकता होती है। प्रसूता को पौष्टिक आहार के साथ-साथ भारी कार्य जैसे-वजन तथा पानी की भरी बाल्टी आदि नहीं उठाने चाहिए।
3. नवजात शिशु की देख-भाल में काफी सावधानी व धैर्य बरतने की आवश्यकता है।
4. शिशु के पोषण के अन्तर्गत शिशु को माता के दूध का स्तनपान कराना चाहिए। यदि किसी कारणवश ऐसा नहीं हो पाता है तो शिशु को भैंस, बकरी, डिब्बे के तैयार दूध पर निर्भर रहना पड़ता है।
5. फार्मूला तैयार करने के पश्चात् बोतल को अच्छी तरह साफ करके रखना चाहिए।
6. शिशु को स्नान कराते समय जल का तापमान देख ले तथा पूर्व की आवश्यक सामग्री जैसे-नहाने का टब, बोरिक लोशन, तेल, तौलिया, शिशु के वस्त्र, पाउडर इत्यादि अपने पास रख लेने चाहिए।
7. मलमूत्र विसर्जन हेतु शिशु को अभ्यास की आवश्यकता होती है। कुछ दिनों के प्रयास से शिशु को पॉट में मल त्यागने का स्वयं ही अभ्यास हो जायेगा।
8. शिशु की अच्छी नींद हेतु साफ-सुथरे व मुलायम बिस्तर की आवश्यकता होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें :

(i) शिशु जन्म के बाद उसकी देख-भाल करते हैं।
(अ) चिकित्सक (ब) नर्स
(स) प्रशिक्षित दाई (द) उपरोक्त सभी

(ii) सामान्य प्रसव में खाने को दिया जाता है।
(अ) गरिष्ठ भोजन (ब) तला हुआ भोजन
(स) मसालेदार भोजन (द) खिचड़ी, दलिया

(iii) माता के दूध के अतिरिक्त जो दूध शिशु को पोषण हेतु दिया जाता है कहलाता है-
(अ) कालेस्ट्रम (ब) फार्मूला
(स) पाश्चरीकृत दूध (द) वसा युक्त दूध

(iv) सफाई की दृष्टि से कौनसी बोतल का उपयोग करना चाहिए।
(अ) पतले मुँह की (ब) चौड़े मुँह की
(स) गोल मुँह की (द) संकरे मुँह की

(v) शिशु के स्नान हेतु जल का तापमान होना चाहिए।
(अ) अत्यधिक गर्म (ब) अत्यधिक ठण्डा
(स) न गर्म न ठण्डा (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

(I) शिशु को नहलाने से पूर्व.....की मालिश करनी चाहिए।

(ii) दूध पिलाने के पश्चात् तुरन्त.....को धो लेना चाहिए।

(iii) गर्भावस्था में स्त्री के.....अंगों में विशेष परिवर्तन होते हैं।

(iv) प्रसूता को कम से कम.....दिन का विश्राम देना चाहिए।

3. प्रसवोपरान्त प्रसूता को किस प्रकार की सावधानियाँ रखनी चाहिए?

4. प्रसूता को दिये जाने वाले भोजन के बारे में बताइए।

5. शिशु के दूध पिलाने की बोतल की साफ-सफाई किस प्रकार की जानी चाहिए?

6. शिशु को नहलाने की विधि समझाइए।

7. नवजात शिशु की देख-भाल के बारे में विस्तार से बताइए।

उत्तरमाला

1. (i) द (ii) द (iii) ब (iv) स (v) स

2. (i) तेल (ii) निपल (iii) गर्भ सम्बन्धी
(iv) 40-50

अध्याय 6

शैशवावस्था से बाल्यावस्था तक विकास-I

शैशवावस्था के विकास को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(i) **नवजात शैशवावस्था (Neonate)** (जन्म से एक माह तक)

(ii) **शैशवावस्था (Infancy)** (एक माह से 5 वर्ष तक)

(i) **नवजात शैशवावस्था (Neonatal period)** (जन्म से एक माह तक)–जीवन के आरम्भिक प्रथम माह का शिशु नवजात कहलाता है।

(ii) **शैशवावस्था (Infancy)** (एक माह से 5 वर्ष तक)–प्रथम माह से 5 वर्ष आयु तक की अवस्था शैशवावस्था कहलाती है। इसमें 1 माह से लेकर 2 वर्ष तक शैशवावस्था तथा 2 वर्ष से 5 वर्ष तक की अवस्था पूर्व बाल्यावस्था कहलाती है।

शिशु के जन्म से एक वर्ष तक के विकास को चित्र 6.1 में दर्शाया गया है।

यद्यपि नवजात शिशु शारीरिक रूप से अपरिपक्व तथा निर्भर होता है और उसमें संज्ञानात्मक योग्यताएं सीमित होती हैं परन्तु धीरे-धीरे उसमें शीघ्रता से अनेक परिवर्तन आते हैं जिससे बालक चलना, फिरना, बोलना इत्यादि कई क्रियाएं करना सीख जाता है। शैशवावस्था में विभिन्न प्रकार के विकासात्मक परिवर्तन के मानक बनाये गए हैं, परन्तु सभी बालक अपने ढंग से, अपनी क्षमता व गति से विकसित होते हैं।

बालक की विभिन्न अवस्थाओं में सभी प्रकार के विकास को संक्षिप्त में तालिका 6.1 के द्वारा समझाया गया है।

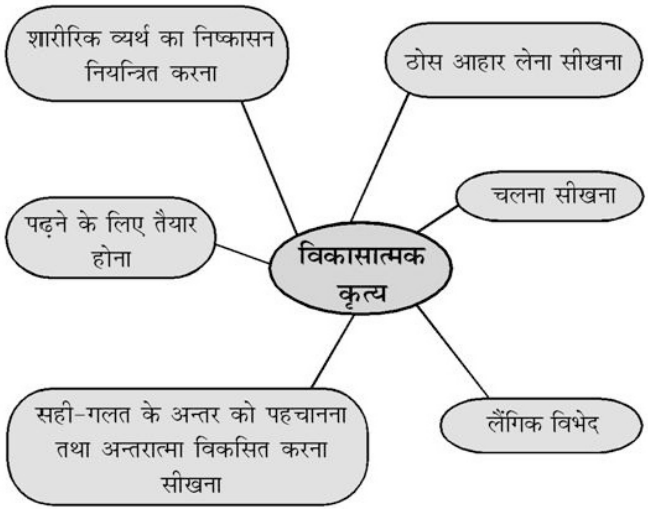

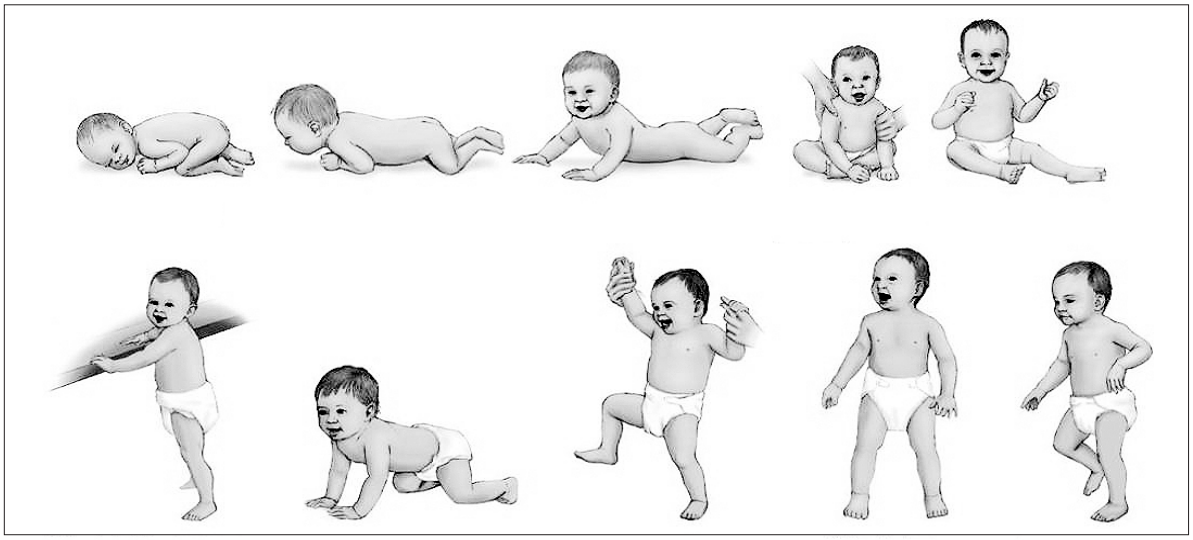

चित्र 6.1 : **शैशवावस्था**

तालिका 6.1 : **बालक की विभिन्न अवस्थाओं में विकास**

	नवजात शैशवावस्था	शैशवावस्था	पूर्व-बाल्यावस्था
	(जन्म से एक माह तक)	**(एक माह से 2 वर्ष तक)**	**(2 वर्ष से 5 वर्ष तक)**
शारीरिक विकास	शरीर का भार दोगुना (12-15 पौंड) हो जाता है। सिर की लम्बाई पूरे शरीर की लम्बाई की 1/4 होती है। त्वचा का स्वरूप परिवर्तित होता है तथा सिर पर नये बाल आने लगते हैं।	दो वर्ष की आयु तक शिशु की लम्बाई में 2 इंच तथा भार में 2-3 पौंड की वृद्धि हो जाती है। चलना, दौड़ना, साइकिल चलाना इत्यादि क्रियाएं सीखता है।	शैशवावस्था की तुलना में पूर्व-बाल्यावस्था में वृद्धि धीमी गति से होती है। इस आयु में औसतन 3 इंच की दर से लम्बाई में वृद्धि होती है। ये आयु कौशल विकास हेतु अत्यन्त उपयोगी है। स्वयं खाना खाना, कपड़े पहनना, बटन लगाना, बॉल फेंकना, मोती पिरोना इत्यादि कौशल बालक सीखता है।
संज्ञानात्मक विकास	शिशु में विभिन्न संवेदनाओं के प्रति अनुक्रम विकसित होते हैं। शिशु गतिमान उद्दीपकों को ढूंढ़ने का प्रयास करता है। रंगों की तीव्रता व चमकीलापन में विभेदन का विकास होता है तथा किसी ध्वनि उद्दीपक के प्रति एक तरफ देखना, पलक झपकाना तथा ध्वनि की तरफ मुड़ने की अनुक्रिया करते हैं।	इस आयु में शिशु नैसर्गिक क्रियाएं जैसे रोना, वस्तुएं फेंकना इत्यादि कार्य करता है। अनुभवों के आधार पर क्रियाओं का निष्पादन करता है। स्थिति से सामंजस्य बिठा कर उसके अनुकूल हो जाता है तथा अनुकरण जैसी क्रियाएं करता है जैसे बड़ों को देख बाल बनाना, ब्रश करना इत्यादि।	उत्तर बाल्यावस्था में बालक अपने अनुभवों को प्रतीकों, कौशलों, प्रतिभाओं आदि के माध्यम से प्रस्तुत करता है। स्वयं तथा अन्य लोगों में विभेदन, उलटे क्रम में चिन्तन तथा तार्किक क्रियाएं कर सकता है।
भाषा विकास	नवजात शिशु भाषा विकास की प्रक्रिया में सबसे पहले क्रंदन करता है जिसके लिए श्वसन तन्त्र का उपयोग किया जाता है।	इस आयु में शिशु बबलाते हुए कुछ विशिष्ट ध्वनियों का उच्चारण करता है जिसके साथ वह हाव-भाव का उपयोग भी करता है।	इस अवस्था में आयु में वृद्धि तथा अधिगम परिस्थिति का लाभ मिलने के कारण बच्चे अपने लिए शब्द भण्डार निर्मित करते हैं। आयु के साथ शब्द भण्डार बढ़ते हैं तथा पाँच वर्ष पूर्ण होते होते पूर्ण वाक्य क्षमता का विकास हो जाता है।
सामाजिक विकास	नवजात की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले व्यक्ति के साथ ही उसका लगाव रहता है इसीलिए बच्चे को मां का स्पर्श अच्छा लगता है। जब नवजात लोगों को पहचानने योग्य हो जाता है तो वह लोगों के साथ रहकर प्रसन्न व सन्तुष्ट रहता है और जब उसे अकेला छोड़ दिया जाये तो अप्रसन्न व असन्तुष्ट हो रोने लगता है। यहीं से उसका सामाजिक व्यवहार आरंभ होता है।	इस आयु में बालक जिसे पहचानता है उसे मुस्कराकर अनुक्रिया प्रकट करता है। बालक ध्यान आकर्षित करने के लिए हाथ-पांव चलाना, किलकारी भरना जैसी क्रियाएं करता है। अजनबी लोगों से डरकर शान्त होना और परिचित लोगों के सामने मुस्कराकर वह परिचित व अजनबी में भेद करता है।	इस अवस्था में माता-पिता, परिवार के अन्य सदस्य, रिश्तेदार प्रमुख अभिकर्ता के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बालक जैसे-जैसे बाहरी लोगों से सम्पर्क बनाता है वैसे-वैसे सामाजिक दुनिया विस्तृत होती रहती है। माता-पिता पर बालक की निर्भरता कम होने लगती है। इस अवस्था को 'टोली-पूर्व' अवस्था भी कहते हैं। बालकों में समूह के प्रति लगाव विकसित होता है तथा बालक संगठित खेल आरंभिक रूप से दिखने लगता है।

सांवेगिक विकास	सामाजिक विकास के साथ-साथ सांवेगिक विकास उसी क्रम में होता है। प्रारंभ में केवल प्रिय व अप्रिय संबंधी संवेग पाये जाते हैं। जन्म के समय तीन प्रकार के संवेग ही पाये जाते हैं (भय, प्रेम, क्रोध)। जन्म के समय दिखायी देने वाली उत्तेजना के बाद आयु वृद्धि के साथ संवेगों का विकास होता है।	इस आयु के सम्बन्ध में ब्रिजेज ने बताया कि पहले शिशु में क्लेश व प्रसन्नता का उद्‌भव होता है। पांचवें माह में क्लेश, क्रोध, घृणा, भय आदि संवेग उत्पन्न होते हैं। चौदहवें माह में ईर्ष्या उत्पन्न होती है। बीस माह में आनंद की उत्पत्ति होती है। दो वर्ष बाद परिपक्वता और अधिगम के आधार पर इन संवेगों की अभिव्यक्ति में धीरे-धीरे परिवर्तन, परिमार्जन व संशोधन होने लगता है।	इसमें संवेगात्मक अनुभूतियों का विस्तार होता है। मुख्य रूप से उद्वेग, तीव्र भय एवं ईर्ष्या ज्यादा व्यक्त होते हैं। खेलने, कूदने, दौड़ने जैसी शारीरिक क्रियाओं से उत्पन्न थकान से बच्चों में तीव्र संवेगशीलता उत्पन्न होती है।
व्यक्तित्व विकास	व्यक्तित्व विकास के लिए शैशवावस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण 'नाजुक आयु' होती है। इसमें व्यक्तित्व की आधारशिला का निर्माण होता है तथा इसी पर पूर्ण व्यक्तित्व का ढांचा बनता है। बालक निरन्तर माता-पिता के साथ ही रहता है अत: जैसा इनका आपस में सम्बन्ध होता है उसका प्रभाव आगे चलकर उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है। यदि शिशु को अनुकूल वातावरण मिले, तो शिशु विकसित होकर एक सहयोगशील और अनुक्रियाशील व्यक्ति बनेगा।	शैशवावस्था में ही बच्चे में अहं प्रत्यय विकसित होता है अहं प्रत्यय उसके व्यक्तित्व विकास में मूल (Core) का कार्य करता है। बच्चे का अहं प्रत्यय जितना स्थायी होगा उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन की सम्भावना कम होती है। व्यक्तित्व विकास में शील गुणों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।	व्यक्तित्व प्रतिमानों का विकास आनुवंशिक तथा पर्यावरण की अन्त:क्रिया का परिणाम होता है। प्रारंभ में 'स्व' के विकास में परिवार की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। जैसे ही बालक विद्यालय जाने लगता है उसका सामाजिक दायरा बढ़ता है और 'स्व' का विकास सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार होता है। बालक शील गुणों को अनुकरण द्वारा सीखते हैं। 'स्व' तथा शील गुण, दोनों मिलकर व्यक्तित्व का विकास करते हैं।

शैशवावस्था को प्रभावित करने वाले कारक (संकट)

शारीरिक कारक

2. नकारात्मक अभिभावकीय वातावरण
2. मुश्किल और उलझा हुआ जन्म
3. बहु जन्म
4. पश्च-परिपक्वता
5. पूर्व-परिपक्वता
6. शिशु मृत्युदर

मनोवैज्ञानिक कारक

1. जन्म के बारे में पारम्परिक विश्वास
2. असहायता
3. शिशु की विशिष्टता
4. विकासात्मक विलम्ब
5. विकास का पठार
6. प्रेरणा का अभाव
7. नवीन माता-पिता अवसाद

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. शारीरिक परिवर्तनों के अन्तर्गत शिशु के वजन व शारीरिक अनुपात में परिवर्तन होते हैं।
2. संज्ञानात्मक विकास में विभिन्न संज्ञानों का विकास होता है जैसे ध्वनि उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया, रोना, वस्तुएँ फेंकना इत्यादि।
3. शिशु में सामाजिक, भाषा, संवेग तथा विभिन्न व्यक्तित्व परिवर्तन भी शिशु में पाये जाते हैं।
4. शैशवावस्था के विकास को निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(अ) नवजात शैशवावस्था (Neonate)–(जन्म से एक माह तक)

(ब) शैशवावस्था (Infancy)–(एक माह से 5 वर्ष तक)

5. शैशवावस्था (Infancy)–1 माह से 2 वर्ष तक होती है, 2 वर्ष से 5 वर्ष तक की अवस्था पूर्व बाल्यावस्था कहलाती है।
6. शैशवावस्था को शारीरिक कारक व मनोवैज्ञानिक कारक प्रभावित करते हैं।
7. व्यक्तित्व विकास के लिये नवजात शैशवावस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण 'नाजुक आयु' होती है। इसमें व्यक्तित्व की आधारशिला का निर्माण होता है तथा इसी पर पूर्ण व्यक्तित्व का ढाँचा बनता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें :

(i) शैशवावस्था को कितने भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(अ) एक (ब) दो

(स) तीन (द) चार

(ii) भाषा विकास में शिशु सर्वप्रथम कौनसी क्रिया करता है।

(अ) हँसना (ब) क्रंदन

(स) बोलना (द) चिल्लाना

(iii) जन्म के समय कौन-सा संवेग नहीं पाया जाता है।

(अ) भय (ब) प्रेम

(स) क्रोध (द) ईर्ष्या

(iv) बबलाने की क्रिया शिशु किस आयु में करता है।

(अ) नवजात शैशवावस्था (ब) शैशवावस्था

(स) पूर्व बाल्यावस्था (द) उत्तर बाल्यावस्था

(v) किस अवस्था को टोली-पूर्व अवस्था कहते हैं।

(अ) नवजात शैशवावस्था (ब) शैशवावस्था

(स) उत्तर बाल्यावस्था (द) पूर्व बाल्यावस्था

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो।

(i) सामाजिक विकास के साथ.....विकास उसी क्रम में होता है।

(ii) व्यक्तित्व प्रतिमानों का विकास.....तथा.....का परिणाम है।

(iii) नवजात शैशवावस्था में शरीर का भार.....हो जाता है।

(iv) .....वर्ष तक पूर्ण वाक्य क्षमता विकसित हो जाती है।

(v) पूर्व बाल्यावस्था में 'स्व' का विकास.....प्रतिमान के अनुसार होता है।

3. शैशवावस्था के विकासात्मक कृत्य समझाइये।
4. शैशवावस्था को परिभाषित कीजिए।
5. पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक विकास को समझाइये।
6. शैशवावस्था में व्यक्तित्व विकास को समझाइये।
7. शैशवावस्था को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला :

1. (i) ब (ii) ब (iii) द (iv) ब (v) द
2. (i) सांवेगिक (ii) आनुवंशिक, वातावरण
   (iii) दुगुना (iv) पाँच (v) सामाजिक

अध्याय 7

शैशवावस्था से बाल्यावस्था तक विकास-II

बाल्यावस्था, जीवनकालिक विकास (Life span development) का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरण है। इस अवस्था में बच्चों में वृद्धि एवं विकास अत्यन्त त्वरित गति से होता है।

शारीरिक विकास बाल्यावस्था के अंतिम पड़ाव में बालक की लम्बाई 57.5 इंच तथा वजन 48किग्रा. होता है। बालक के चेहरे पर आमूलचूल परिवर्तन होते हैं और धीरे-धीरे शिशु जैसी आकृति का लोप हो जाता है। इस आयु को 'कुरूपता की आयु' भी कहते हैं। इस आयु में बालक अनाकर्षक दिखता है। बालक पेशियों तथा स्नायुतन्त्रों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है। सोद्देश्य प्रयास कौशल को सीखने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। पहचान सकने योग्य अक्षर लिखना, रंग भरना, मिट्टी की मूर्तियाँ बनाना सीख जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य शारीरिक कौशल जैसे दौड़ना, लाँघना, कूदना, छलांग मारना आदि सीख लेता है। कभी-कभी माता-पिता द्वारा अतिसंरक्षण के कारण बच्चा कौशलों को अच्छी तरह नहीं सीख पाता जिसके कारण वह उत्तरोत्तर पिछड़ता जाता है।

बाल्यावस्था में बालक अद्‌भूत शक्ति से भरपूर होते हैं। उनमें असीम ऊर्जा होती है जिनका उपयोग कौशल सीखने हेतु किया जाता है, किन्तु इन कौशलों को सीखने में लिंगगत अन्तर पाये जाते हैं जैसे लड़कियाँ सूक्ष्म पेशीय कौशल में आगे होती हैं, वहीं लड़के बड़ी पेशियों के कौशल को अपनाते हैं। छठे वर्ष तक बालक में एक हाथ की प्रधानता पक्की हो जाती है। पेशीय विकास यद्यपि अनुक्रम में होता है तथापि इसको अनेक कारक प्रभावित करते हैं।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

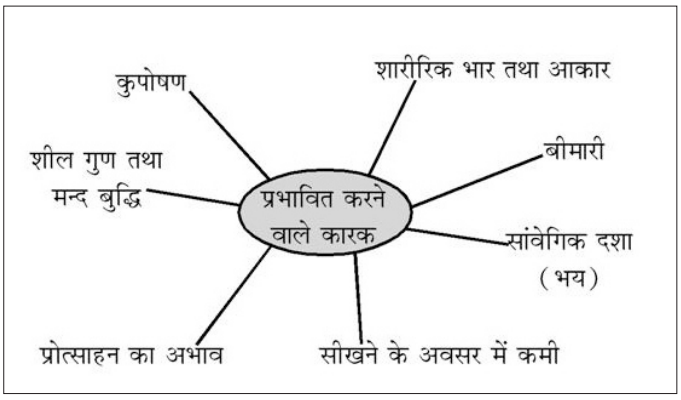

संज्ञानात्मक विकास

'संज्ञान' एक ऐसी योग्यता है जिसकी सहायता से व्यक्ति किसी वस्तु का स्वरूप, महत्त्व तथा विश्लेषण की क्षमता अर्जित करता है एवं उस वस्तु के बारे में स्पष्ट विचार निर्मित करता है। बालक का संज्ञानात्मक विकास उसकी अभिवृत्ति, अनुकूलन क्षमता, परिवेशीय परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाले भय व चिन्ता से सुरक्षा की योग्यता के विकास को निर्धारित करता है।

इस आयु में बालक अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से विभिन्न चीजों, घटनाओं, सूचनाओं को समझने लगता है। बौद्धिक एवं मानसिक विकास के कारण बालक तर्क, चिन्तन, विश्लेषण, स्मरण करना सीख जाता है तथा कई चीजों के बारे में विस्तार व गहराई से जानना चाहता है। इस अवस्था का बालक खोजी व जिज्ञासु प्रवृत्ति का होता है। यही कारण है कि बालक अपनी जिज्ञासाओं को शान्त करने हेतु माता-पिता, गुरुजनों, संगी-साथियों से तरह-तरह के प्रश्न करता है। इस अवस्था का बालक समूह प्रेमी (Gregarious) हो जाता है और अपने संगी-साथियों के साथ अधिकांश समय बिताना चाहता है। वह अपने खिलौनों को भी शेयर करता है। अब उसे यह भली-भाँति ज्ञात हो जाता है कि दूध का विभिन्न आकार में परिवर्तन हो जाता है, मगर उसका आयतन (Volume) एवं मात्रा समान ही रहती है। इसी प्रकार वह भार, लम्बाई, क्षेत्रफल, त्रिज्या, व्यास, गहराई, ऊँचाई आदि सूक्ष्म प्रत्ययों को समझने लगता है।

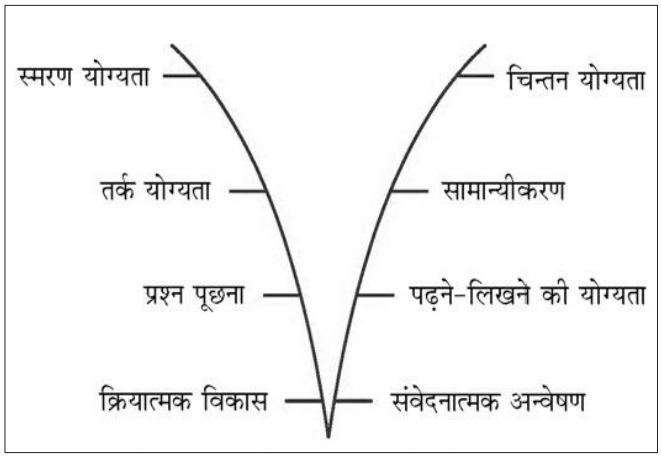

बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक योग्यताएँ

संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक–

–आनुवंशिकता
–परिपक्वता
–सीखने के अवसर
–शारीरिक स्वास्थ्य
–वातावरण
–शिक्षण–प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था
–ज्ञानेन्द्रियाँ
–मानसिक योग्यता
–मस्तिष्क में चोट/दोष विकार
–बुद्धि
–समायोजन क्षमता
–आयु विभेद

बौद्धिक विकास

बुद्धि एक ऐसी शक्ति है जो व्यक्ति को नित्य परिवर्तित परिस्थितियों में भी समायोजित होने की क्षमता प्रदान करती है। बुद्धि के आधार पर ही व्यक्ति की योग्यताओं का निर्धारण होता है और कुशाग्र बुद्धि, सामान्य बुद्धि या मंद बुद्धि वाला व्यक्ति कहा जाता है।

बाल्यावस्था में बौद्धिक विकास

1. रुचि का विकास होता है।
2. धारण क्षमता में विकास होता है।
3. बालक की जिज्ञासु प्रवृत्ति देखने को मिलती है।
4. बालक की अवलोकन क्षमता में तेजी से विकास होता है, जिससे उसकी ज्ञानेन्द्रियों में परिपक्वता आ जाती है।
5. जिज्ञासा शक्ति के बढ़ने से तर्क शक्ति का विकास होता है।
6. बालकों की निर्णय शक्ति का विकास होता है।
7. चिन्तन, स्मरण, कल्पनाशक्ति व रचनात्मकता में विकास होता है।
8. समस्या समाधान की क्षमता प्रबल रूप से बढ़ जाती है।

बौद्धिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

–शारीरिक स्वास्थ्य
–लिंग विभेद
–बालक का जन्म क्रम
–समाज
–आनुवंशिकता
–मस्तिष्क में दोष
–व्यक्तित्व
–वातावरण
–आयु विभेद
–विद्यालय
–मानसिक परिपक्वता
–ज्ञानेन्द्रिय दोष
–शिक्षा
–आस–पड़ोस का वातावरण

भाषा-विकास

भाषा सम्प्रेषण (Communication) का एक लोकप्रिय माध्यम है जिसकी सहायता से हम जो कुछ कहना चाहते हैं, कह पाते हैं। विचारों में स्पष्टता आ जाती है। यही कारण है कि बालक के सामाजिक, मानसिक, संवेगात्मक, व्यक्तित्व आदि में भाषा/वाणी विकास का अमूल्य योगदान है। इसलिए प्रत्येक बालक में वाणी विकास होना जरूरी है।

भाषा विकास की अवस्थाएँ

वास्तविक भाषा के पूर्व की अभिव्यक्तियाँ	वास्तविक भाषा की अभिव्यक्तियाँ
(i) क्रन्दन	(i) उच्चारण
(ii) कूईंग एवं बबलाना	(ii) आकलन शक्ति
(iii) हाव–भाव	(iii) शब्द भंडार
	(iv) वाक्य निर्माण/गठन

भाषा विकास का प्रतिमान

भाषा विकास का प्रतिमान क्रियात्मक विकास की तरह ही होता है और वे दोनों समानान्तर रूप से चलते रहते हैं। प्रत्येक बालक में भाषा विकास एक समान होता है, किन्तु जिन बालकों को उचित समय पर अभ्यास, प्रेरणा व प्रशिक्षण दिया जाता है वे जल्दी सीखते हैं और जिन्हें समय पर अभ्यास, प्रेरणा व प्रशिक्षण नहीं मिलता है वे देरी से सीखते हैं।

बालकों की भाषा सामग्री की विशेषताएं

वाणी विकास के संकट

(वाणी दोष)	(वाणी विकार)
1. उच्चारण में दोष	1. भ्रष्ट उच्चारण
2. शब्दों के अर्थ संबंधित दोष	2. अस्पष्ट उच्चारण
3. वाक्य रचना में दोष	3. तुतलाना
	4. हकलाना
	5. तीव्र अस्पष्ट वाणी

दो भाषाओं का प्रयोग

द्विभाषी का सामान्य अर्थ है–'दो भाषाओं का प्रयोग करना।' यह मात्र बोलने अथवा लिखने में ही प्रयोग नहीं होता है, बल्कि इसका तात्पर्य समझने से भी है कि दूसरे लोग क्या बोल रहे हैं।

संवेगात्मक विकास (भावनात्मक विकास)

बालकों के संवेग की विशेषताएँ

* संवेगों का तीव्र एवं उग्र होना।
* पुनः पुनः होना।
* संवेगात्मक व्यवहार में वैयक्तिक भिन्नता दिखना।
* आसानी से पहचाना जाना और प्रत्यक्ष रूप से दिखना।
* क्षणिक होना।
* शारीरिक क्रियाओं से संबंधित होना।
* संवेगों की शक्ति में परिवर्तन होना।
* मूर्त वस्तुओं तथा परिस्थिति से सम्बन्धित होना।

बाल्यावस्था के सामान्य संवेग

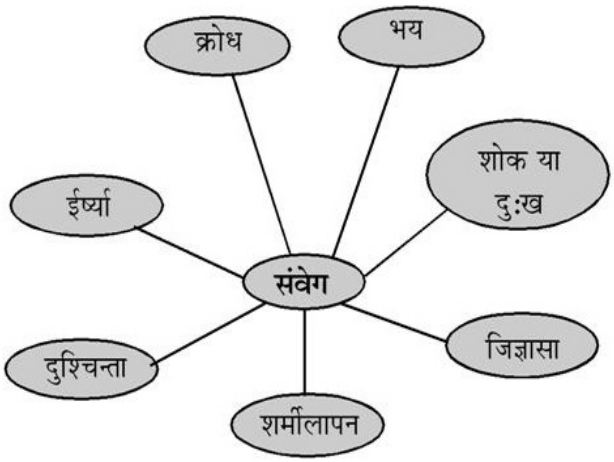

सामाजिक विकास

प्रत्येक बालक में अपने हमउम्र के बालकों के साथ रहने, खाने-पीने, घूमने, बातें करने की उत्कट लालसा रहती है। वे यही चाहते हैं कि टोली के बालक उसे पसन्द करें और उसकी बात का सम्मान करे। इसी कारण बालक के व्यवहार, पहनावे, बोल-चाल व रहन-सहन में भी व्यापक परिवर्तन देखने को मिलते हैं।

बाल्यावस्था में सामाजिक व्यवहार के कुछ विशिष्ट प्रतिमान

* अतिसंवेदनशीलता
* सामाजिक स्वीकृति
* सुझाव ग्रहणशीलता
* उत्तरदायित्व
* प्रतियोगिता
* एक अच्छे खिलाड़ी के रूप में
* सामाजिक अन्तर्दृष्टि
* सामाजिक विभेदीकरण
* पूर्वाग्रह
* यौन विरोधी भाव

नैतिक विकास

सामाजिक समूह के नैतिक संहिता के अनुसार व्यवहार करना ही नैतिक व्यवहार है।

नैतिक विकास का अधिगम

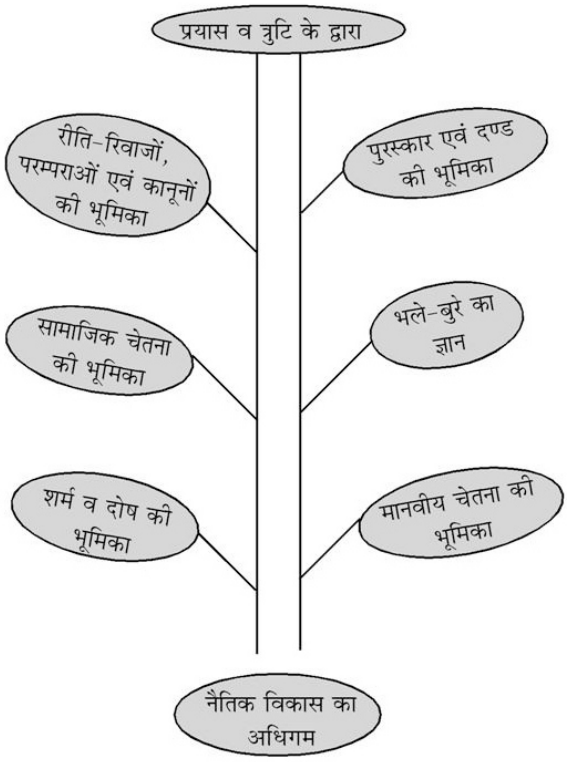

बालकों के जीवन में नैतिक विकास का महत्त्व

जागरूकता के विकास में
सही निर्णय लेने की क्षमता के विकास में
आचरणों के निर्धारण में सहायक
समाजीकरण में सहायक
अभिवृत्तियों के विकास में
सुरक्षा की भावना के विकास में
व्यक्तित्व के विकास में सहायक
चरित्र निर्माण में सहायक

बाल्यावस्था को प्रभावित करने वाले कारक

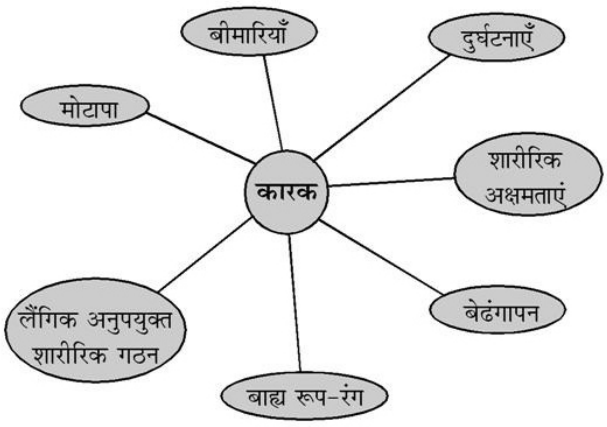

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. बाल्यावस्था, जीवनकालिक विकास का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरण है। इस अवस्था में बच्चों में वृद्धि एवं विकास अत्यन्त त्वरित गति से होता है।
2. शारीरिक विकास बाल्यावस्था के अंतिम पड़ाव में बालक की लम्बाई 57.5 इंच तथा वजन 48कि.ग्रा. होता है।
3. कुपोषण, शारीरिक भार तथा आकार, शील गुण तथा मन्दबुद्धि, सांवेगिक दशा, प्रोत्साहन का अभाव, सीखने के अवसर में कमी आदि बालक के विकास को प्रभावित करने वाले कारक हैं।
4. संज्ञान एक ऐसी योग्यता है जिसकी सहायता से व्यक्ति किसी वस्तु का स्वरूप, महत्त्व तथा विश्लेषण की क्षमता अर्जित करता है।
5. बौद्धिक एवं मानसिक विकास के कारण बालक तर्क, चिन्तन, विश्लेषण, स्मरण करना सीख जाता है।
6. बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक योग्यताएँ–स्मरण योग्यता, तर्क योग्यता, प्रश्न पूछना, चिन्तन योग्यता, सामान्यीकरण आदि हैं।
7. बुद्धि एक ऐसी शक्ति है जो व्यक्ति को नित्य परिवर्तन परिस्थिति में भी समायोजित होने की क्षमता प्रदान करती है।
8. वाणी विकास के निम्न संकट हैं–वाणी दोष, वाणी विकार, उच्चारण में दोष, शब्दों के अर्थ सम्बन्धित दोष, वाक्य रचना में दोष, भ्रष्ट उच्चारण, अस्पष्ट उच्चारण, तुतलाना, हकलाना, तीव्र अस्पष्ट वाणी आदि।
9. द्विभाषी का सामान्य अर्थ–'दो भाषाओं का प्रयोग करना।'
10. भाषा विकास की अवस्थाएँ हैं–क्रन्दन, कूईंग एवं बबलाना, हाव-भाव, उच्चारण, आकलन शक्ति, शब्द भंडार, वाक्य निर्माण।
11. सामाजिक समूह के नैतिक संहिता के अनुसार व्यवहार करना ही नैतिक व्यवहार है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) शारीरिक विकास को कौन-सा कारक प्रभावित नहीं करता है?

(अ) कुपोषण (ब) सुपोषण

(स) बीमारी (द) भय

(ii) निम्न में से कौनसी बाल्यावस्था की संज्ञानात्मक योग्यता हैं?

(अ) परिपक्वता (ब) ज्ञानेन्द्रियाँ

(स) तर्क योग्यता (द) बुद्धि

(iii) द्विभाषी में कितनी भाषाओं का उपयोग किया जाता है?

(अ) दो (ब) एक

(स) तीन (द) पाँच

(iv) निम्न में से वाणी विकार है।

(अ) उच्चारण में दोष (ब) मूक बधिर

(स) हकलाना (द) वाक्य रचना में दोष

(v) निम्न में से बाल्यावस्था के सामान्य संवेग नहीं है।

(अ) भय (ब) मुस्कुराना

(स) क्रोध (द) शर्मीलापन

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो–

(i) भाषा विकास का प्रतिमान.....विकास की तरह ही होता है।

(ii) सामाजिक समूह के नैतिक संहिता के अनुसार व्यवहार करना.....विकास है।

(iii) .....में बालक समूह प्रेमी हो जाता है।

(iv) जिज्ञासा के बढ़ने से.....का विकास होता है।

(v) शब्दों के अर्थ सम्बन्धित दोष.....विकार है।

3. बाल्यावस्था में शारीरिक विकास को समझाइये।
4. बाल्यावस्था में शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक समझाइये।
5. बाल्यावस्था की विभिन्न संज्ञानात्मक योग्यता बताइये।
6. बाल्यावस्था के सामाजिक व्यवहार के विशिष्ट प्रतिमान कौन से हैं?
7. बालकों के जीवन में नैतिक विकास के महत्त्व को समझाते हुए बाल्यावस्था को प्रभावित करने वाले कारक समझाइये।

उत्तरमाला :

1. (i) ब (ii) स (iii) अ (iv) स (v) ब
2. (i) सामाजिक (ii) नैतिक (iii) बाल्यावस्था (iv) तर्क शक्ति (v) वाणी दोष

अध्याय 8

रोग प्रतिरोधक क्षमता (टीकाकरण)

जन्म से पूर्व प्रत्येक शिशु को गर्भ में एक निश्चित वातावरण प्राप्त होता है। अत: गर्भकालीन विकास के दौरान केवल आन्तरिक वातावरण ही उसके स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। किन्तु जन्म के बाद उसे प्रतिपल एक नया वातावरण प्राप्त होता है। जो निरन्तर उसके स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। वातावरण में विद्यमान हानिकारक तत्त्व उसके स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं और उन्हें विभिन्न प्रकार की बीमारियों से ग्रसित कर देते हैं। सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि दो-तिहाई भारतीय बच्चे जन्म के प्रथम माह में ही टिटनेस के कारण मर जाते हैं। लगभग 25 प्रतिशत शिशु डायरिया के कारण मर जाते हैं। भारतवर्ष में ही नहीं अन्य विकासशील देशों में भी बच्चे डायरिया, डिहाइड्रेशन, खसरा, डिप्थीरिया, पोलियो और तपेदिक से 50-52 लाख बच्चे मौत के मुँह में समा जाते हैं।

बाल मृत्यु की इतनी गम्भीर समस्या को देखते हुए यह आवश्यक है कि शिशु स्वास्थ्य रक्षा की ओर समुचित ध्यान दिया जाये। हर मनुष्य के स्वास्थ्य की नींव जन्म से ही रखी जाती है। हर शिशु को परिवार, समाज व राष्ट्र के एक स्वस्थ व सुयोग्य नागरिक के रूप में विकसित करना हमारा परम कर्तव्य है। माता-पिता तथा अभिभावकों को भी शिशु स्वास्थ्य रक्षा की ओर समुचित ध्यान देना चाहिये। इसके लिये शिशु जन्म के बाद से ही शिशुओं को समय-समय पर सभी टीके लगवाने चाहिए जो शिशुओं के शरीर में विभिन्न रोगों के प्रति प्रतिरक्षा की क्षमता उत्पन्न कर सकें।

रोग प्रतिरोध (Immunization)

किसी रोग को रोकने की सर्वाधिक व्यावहारिक विधि रोग प्रतिरोध है। रोग प्रतिरोधक क्षमता से तात्पर्य विभिन्न संक्रामक रोगों से बचाव हेतु शरीर में विभिन्न प्रकार के एन्टीजन को प्रवेश करा कर शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना तथा विशिष्ट बीमारी के प्रति व्यक्ति के स्वास्थ्य की सुरक्षा करना है।

प्रतिरक्षीकरण में बीमारियों के कीटाणुओं को परिवर्तित रूप (मरे हुए अथवा कमजोर करके) अथवा उनके जीव विष (Toxin) से वैक्सीन बनायी जाती है। ये वैक्सीन जब निश्चित मात्रा में शरीर में पहुँचती है, तो बीमारियों से शरीर को सुरक्षित रखती है। कुछ वैक्सीन इन्जेक्शन द्वारा और कुछ मुँह से पिलायी जाती है।

अधिकांशत: प्रतिरक्षीकरण दो सोपानों में किया जाता है-

1. प्राथमिक प्रतिरक्षीकरण
2. गौण प्रतिरक्षीकरण

प्राथमिक प्रतिरक्षीकरण में रोग प्रतिकारिता उत्पन्न करने के लिये एक या एक से अधिक इन्जेक्शन लगाये जाते हैं। ये प्राथमिक इन्जेक्शन निश्चित समयावधि के लिये होते हैं अत: धीरे-धीरे समय व्यतीत होने पर रोग प्रतिरक्षा धीरे-धीरे कम हो जाती है।

प्राथमिक प्रतिरक्षीकरण की अवधि समाप्त होने के बाद गौण प्रतिरक्षीकरण किया जाता है। इसे 'बूस्टर डोज' (Boosters) भी कहते हैं। यदि प्राथमिक प्रतिरक्षीकरण की अवधि समाप्त होने के बाद गौण प्रतिरक्षीकरण नहीं किया जाता है तो रोग होने की सम्भावना रहती है।

रोगों से बचाव हेतु विभिन्न प्रतिरक्षण टीके

1. **चेचक का टीका-** चेचक या शीतला एक भयंकर बीमारी है। वर्तमान समय में इस पर पूर्ण नियन्त्रण पा लिया गया है। इस रोग से बचाव का प्रमुख उपाय है कि जन्म के प्रथम सप्ताह में ही शिशु को टीका लगवा दिया जाये।

चेचक के टीके के आविष्कारक 'जेनर' (1798) हैं उन्होंने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि काउ पोक्स (Cow Pox) स्माल पोक्स (Small Pox) से सुरक्षा प्रदान करती है। चेचक के टीके द्वारा वैक्सीनिया वायरस (Vaccina Virus) अर्थात् 'काउ पोक्स वायरस' (Cow Pox Virus) को शरीर में प्रविष्ट कराकर सक्रिय रोग निरोधक क्षमता उपार्जित की जाती है।

चेचक का टीका दबाव विधि से लगाया जाता है। चेचक का प्राथमिक टीकाकरण कराने से पूर्व इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बच्चा ज्वर से पीड़ित न हो, कमजोर न हो और त्वचा रोग न हो। भारतवर्ष में अब यह बीमारी सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी है। इसका

अंतिम रोगी 1975 में रिपोर्ट किया गया था।

2. **तपेदिक का टीका (बी.सी.जी.)–** तपेदिक या क्षय रोग से रक्षा के लिये BCG का टीका लगाया जाता है। यह टीका जन्म के प्रथम माह में ही लगवा देना चाहिये तत्पश्चात् 5 से 7 वर्ष की आयु में पुनः टीका लगवाना चाहिए। बी.सी.जी. (Bacilli Calmette Guerin) का निर्माण 'कालमेट' तथा 'ग्यूऐरिन' नामक दो वैज्ञानिकों ने किया था उन्हीं के नाम पर इसे बी.सी.जी. कहा जाता है।

बी.सी.जी. का टीका लगाने के लिये ट्यूबर क्यूलिन टेस्ट किया जाता है। टीका केवल उन्हीं को लगाया जाता है, जो ट्यूबर क्यूलिन निगेटिव होते हैं।

यह टीका बाँह के ऊपरी भाग में लगाया जाता है। टीका लगने के बाद 6सप्ताह से तीन माह के बीच गाँठ (Lump) का निर्माण होता है। यह गाँठ 2–3 माह तक बनी रहती है। यदि यह गाँठ अधिक समय तक बनी रहे तो चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए।

3. **डिप्थीरिया, कुकर खाँसी और टिटनेस (D.P.T. or Triple Antigen)–** ट्रिपल एण्टीजन वैक्सीन कुकर खाँसी, टिटनेस तथा डिप्थीरिया तीनों रोगों के जीवाणुओं का जीव विष (Toxin) मिलाकर तैयार की जाती है। सभी नवजात शिशुओं को यह टीका तीसरे, चौथे और पाँचवें माह में लगवा देना चाहिए। इसके बाद बूस्टर टीका दूसरे वर्ष में लगवाना चाहिए। इससे बच्चा आक्रमण अवधि से सुरक्षित हो जाता है।

इस टीकाकरण के बाद बच्चे को बुखार आता है तथा टीकाकरण के स्थान पर पीड़ा होती है। ज्वर तथा पीड़ा को नियंत्रित करने के लिये चिकित्सक से दवा लेनी चाहिए। ज्वर सामान्यतः 24 घण्टे रहता है। यदि अधिक समय तक रहे तो चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए।

4. **पोलियो के टीके (Polio Vaccine)** पोलियो रोग के उपचार की कोई भी औषधि उपलब्ध नहीं है, इसलिये इसके टीके लगाया जाना नितान्त आवश्यक है। आजकल पोलियो टीका तरल बूँदों अथवा मीठी गोलियों के रूप में मुँह के द्वारा भी दिया जाता है। मुँह के माध्यम से दिये जाने के कारण प्रतिक्रिया स्वरूप बुखार व पीड़ा उत्पन्न नहीं होते।

Trivalent Oral Polio टीका हमारे देश में उपलब्ध है। यह 2–3 माह की अवस्था में दिया जाना प्रारम्भ किया जाता है। टीके की तीन खुराकें चार से आठ सप्ताह के समयान्तर से दी जाती है। इसके पश्चात् रोग निरोधकता में वृद्धि करने के लिये वर्ष में एक खुराक दी जाती है। जहाँ औरल पोलियो वैक्सीन उपलब्ध नहीं होता वहाँ पोलियो के इन्जैक्शन प्रयुक्त किये जाते हैं। यदि बच्चों को दस्त लगे हो अथवा वे अन्य वायरस (Virus) रोग से पीड़ित हो तो मुँह द्वारा पोलियो वैक्सीन नहीं दिया जाना चाहिये। ट्रिपिल एण्टीजन और पोलियो वैक्सीन को एक ही समय में दिया जाना उपयुक्त होता है।

5. **आन्त्र ज्वर का टीका (Typhoid and Para-Typhoid)** मोतीझरा अथवा आन्त्र ज्वर भारत में अत्यन्त ही प्रचलित रोग है। टाइफायड और पैरा–टाइफायड का संयुक्त टीका बाजार में उपलब्ध होता है। कभी–कभी हैजे का टीका भी इसमें सम्मिलित कर दिया जाता है। जब बच्चा दो वर्ष का हो या इससे कुछ छोटा, तभी यह टीका लगाया जाता है। यह टीका साधारणतः एक से चार सप्ताह के समयान्तर से दो या तीन इन्जैक्शन में दिया जाता है। गौण टीका प्रतिवर्ष लगाया जाना चाहिये। टाइफायड का टीका लगाने का सर्वोत्तम समय ग्रीष्मकाल का प्रारम्भ है। इन्जैक्शन में पैरा–टाइफायड का टीका भी होता है। इन्जैक्शन लगने के स्थान पर पर्याप्त पीड़ा होती है तथा बुखार आ जाता है।

6. **हैजे का टीका–** टाइफायड के टीके के समान हैजे का टीका एक या दो वर्ष की आयु से लगाया जाना प्रारम्भ हो जाता है। इसे गर्मियों में लगाया जाना उपयुक्त होता है। प्रारम्भ में एक से चार सप्ताह के समयान्तर से दो या तीन इन्जैक्शन लगाये जाते हैं। प्रत्येक वर्ष गर्मियों में रोग निरोधकता को बढ़ाने के लिये टीका लगवाते रहना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. शिशु के जन्म के बाद से ही शिशुओं को समय–समय पर सभी टीके लगवाने चाहिये जो शिशुओं के शरीर में विभिन्न रोगों के प्रति प्रतिरक्षा की क्षमता उत्पन्न कर सकें।
2. संक्रामक रोगों से बचाव हेतु शरीर में विभिन्न प्रकार के एण्टीजन को प्रवेश करा कर शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाया जाता है।
3. चेचक का टीका जन्म के प्रथम सप्ताह में ही शिशु को लगाया जाता है।
4. बी.सी.जी. का टीका क्षय रोग में लगाया जाता है।
5. डिप्थीरिया, कुकर खाँसी और टिटनेस का ट्रिपल एण्टीजन लगाया जाता है।
6. पोलियो की दवाई मुँह में पिलायी जाती है।
7. मोतीझरा, टाइफायड व हैजे का टीका भी सम्मिलित करके लगाया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) चेचक का टीका लगाया जाता है–

(अ) जन्म के प्रथम सप्ताह में (ब) जन्म के प्रथम माह में

(स) जन्म के एक साल बाद (द) जन्म के पाँच साल बाद

(ii) तपेदिक का टीका लगाया जाता है–

(अ) क्षय रोग में (ब) खसरे में

(स) पीलिया में (द) पोलियो में

(iii) किस टीकाकरण के पश्चात् गाँठ का निर्माण होता है?

(अ) चेचक (ब) बी.सी.जी.

(स) काली खाँसी (द) टाइफायड

(iv) मुँह के द्वारा दवाई दी जाती है–

(अ) पीलिया (ब) हैजा

(स) खसरा (द) पोलियो

(v) किस बीमारी का टीका सम्मिलित करके भी लगाया जाता है–

(अ) चेचक व खसरा (ब) पोलियो व टाइफायड

(स) हैजा व टाइफायड (द) क्षय रोग व काली खाँसी

2. रिक्त स्थान भरो–

(i) हैजे का टीका.....वर्ष में लगाया जाता है।

(ii) ओ.पी.वी. (O.P.V.) .....का पूरा नाम है।

(iii) ट्रिपल एण्टीजन वैक्सीन.....,.....तथा.....है।

(iv) बी.सी.जी. का टीका.....बीमारी में लगाया जाता है।

(v) चेचक के टीके के आविष्कारक '.....' हैं।

3. टीकाकरण क्यों आवश्यक है?

4. वर्तमान में कौन-कौन-सी बीमारियों के टीके उपलब्ध हैं?

5. रोग प्रतिरोध (Immunization) क्या है?

6. प्रतिरक्षीकरण के कितने सोपान हैं?

7. चेचक का टीका किस बीमारी में लगाया जाता है?

8. तपेदिक, डिप्थीरिया, कुकर खाँसी और टिटनेस व पोलियो के टीके कब और क्यों लगाये जाते हैं?

9. आजकल कौन-कौन सी बीमारियों के टीके बाजार में उपलब्ध है व उनके क्या लाभ है विस्तार से समझाइए।

उत्तरमाला :

1. (i) अ (ii) अ (iii) ब (iv) द (v) स

2. (i) 1-2 वर्ष (ii) Oral Polio Vaccine

(iii) डिप्थीरिया, कुकर खाँसी तथा टिटनेस (iv) क्षय रोग

(v) जेनर

अध्याय 9

बच्चों के सामान्य रोग

शिशु का प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त ही कोमल होता है। इस अवस्था में रोग बड़ी शीघ्रता से उस पर आक्रमण करते हैं। रोगग्रस्त शिशु का विकास अवरुद्ध हो जाता है। अत: माता को शिशु के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सदैव अत्यधिक सतर्क रहना चाहिये। प्राय: देखा जाता है कि माता-पिता शिशु के उपचार हेतु चिकित्सक की शरण तभी लेते हैं, जबकि रोग पर्याप्त उग्र रूप धारण कर लेता है। रोग को प्रारम्भिक अवस्था में ही रोकने का भरसक प्रयास करना चाहिए। इसके लिये यह आवश्यक है कि बच्चों में होने वाले सामान्य रोगों के लक्षणों की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए।

रोगों के प्रारम्भिक लक्षण

यहाँ बच्चों के रोगों के प्रारम्भिक लक्षण प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

1. **व्यवहार में परिवर्तन**–रोगग्रस्त बालक का व्यवहार चिड़चिड़ा व जिद्दी हो जाता है और अधिक रोता है।
2. **भूख कम लगना**–बीमार होने पर बच्चा दूध नहीं पी पाता और भूख कम हो जाती है।
3. **शौच में अनियमितता**–बीमार होने पर बच्चे को या तो पतला मल त्याग होता है, कब्ज होने पर सख्त मल त्याग होता है या पूरा दिन मल त्याग नहीं होता है।
4. **शरीर के तापमान में परिवर्तन**–बुखार होने या सर्दी-जुकाम आदि होने से शरीर का तापमान सामान्य से अधिक हो जाता है।
5. **क्रियाशीलता में परिवर्तन**–रोगी बालक सुस्त, थका हुआ तथा बेचैनी अनुभव करता है।
6. **त्वचा में परिवर्तन**–अलग-अलग रोगों के कारण त्वचा में अलग-अलग प्रकार के परिवर्तन दिखाई देते हैं। त्वचा सूखी, खुरदरी, लाल या दानेदार दिखाई देती है। कभी-कभी पीलापन भी आ जाता है।
7. **भार में परिवर्तन**–रोगी बालक आयु के अनुसार भार में समुचित वृद्धि नहीं करता है।
8. **निद्रा में परिवर्तन**–शिशु को नींद कम आती है और सोते-सोते जाग जाता है।
9. **गोद न छोड़ना**–बच्चा अन्य दिनों के प्रतिकूल माता की गोद से अलग नहीं होता।

अत: यदि शिशु में उपरोक्त लक्षणों में से एक-दो या अधिक लक्षण प्रकट हो तो उसकी क्रियाओं के परिवर्तन को नोट करना चाहिये तथा चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिये। जब तक शिशु को चिकित्सक के पास न ले जायें तब तक निम्न उपाय करने चाहिए–

1. बुखार होने पर समय-समय पर शिशु का तापमान नोट करें।
2. यदि शिशु को कहीं पीड़ा है तो इस बात का पता लगायें कि पीड़ा पेट में, कान, आँख, पैर, हाथ कहाँ पर है छूकर देखें।
3. यदि शिशु दूध पीने के प्रति अरुचि दिखाता है तो जबरदस्ती मत कीजिये।
4. रोगी शिशु को पानी उबाल कर पिलायें।
5. रोगी शिशु की व्यक्तिगत स्वच्छता तथा भोजन की स्वच्छता पर विशेष ध्यान दें।
6. सर्दी, खाँसी या अन्य रोग में घरेलू उपचार पर अधिक समय तक निर्भर न रहकर चिकित्सक को दिखायें।

शिशुओं व बालकों में होने वाले प्रमुख पाचन संबंधी रोग निम्नलिखित हैं–

1. **अतिसार**–अतिसार बच्चों का एक सामान्य रोग है।

यदि शिशु दिन में चार से अधिक बार मल त्याग हेतु जाये तथा मल ढीला, जलयुक्त, हरा, झागदार व दुर्गन्धपूर्ण हो, गुदा लाल हो जाय तथा उसमें पीड़ा होने लगे तो चिकित्सकों के मतानुसार यह प्रवाहिका का रोग है।

रोग के कारण

1. बच्चे को आहार देने के समय में अनियमितता।
2. बच्चे द्वारा आवश्यकता से अधिक दूध पी लेना।
3. बच्चे को अधिक वसायुक्त ऊपरी दूध देना।
4. बच्चे को ठंडा व बासी दूध देना।
5. स्तनपान कराने वाली माताओं का अधिक गरिष्ठ तथा मिर्च मसालेयुक्त भोजन करना।
6. शिशु के दाँत निकलना।
7. मौसम में अधिक सर्दी व गर्मी का होना।
8. शिशु को बुखार, सर्दी, जुकाम होना।

उपचार

1. ऊपर का दूध बंद कर दें।
2. बच्चे को ठोस आहार न दें।
3. दूध के बर्तन, निप्पल, बोतल आदि की स्वच्छता पर ध्यान दें।
4. चावल का माँड व जौ का पानी दिया जा सकता है।
5. जल और लवणों की पूर्ति के लिये 1 लीटर उबले पानी में एक चुटकी भर नमक तथा एक मुट्ठी चीनी डालकर घोल बना लें और थोड़ी-थोड़ी देर बाद शिशु को पिलायें।
6. शिशु की व्यक्तिगत स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिये।
7. बच्चे को तुरंत चिकित्सक के पास ले जाकर समुचित उपचार कराना चाहिये।

2. कब्ज

कब्ज से तात्पर्य नियमित रूप से मल त्याग न होना, कम होना तथा कड़ा होना है। कभी-कभी मल इतना कड़ा होता है कि बच्चे को अत्यधिक जोर लगाना पड़ता है जिससे मल त्याग के समय बच्चा रोता-चिल्लाता है।

कारण

1. तरल पदार्थों को कम मात्रा में लेना।
2. रेशेयुक्त पदार्थों को कम मात्रा में लेना।
3. आँतों का कमजोर होना।
4. शिशु का ऊपरी दूध द्वारा पोषित होना।

उपचार

1. बच्चे के भोजन में नियमितता रखनी चाहिए।
2. बच्चे को नियमित समय पर मल त्याग के लिये प्रेरित करना चाहिए।
3. बच्चे के आहार में तरल पदार्थों जैसे-जल, फलों का रस तथा सब्जियों के सूप की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।
4. यदि दो दिन तक मल-त्याग न हो तो ग्लिसरीन की बत्ती या एनिमा देना चाहिये, परन्तु चिकित्सक के परामर्शानुसार देना चाहिए।

3. भूख न लगना

भूख न लगने से तात्पर्य है कि बच्चा भोजन के निर्धारित समय पर अपनी भूख की आवश्यकता को प्रकट न करे।

कारण

1. बच्चे को कोई पाचन विकार जैसे कब्ज, अपच आदि होना।
2. यकृत के रोग और आँतों के संक्रमण से भूख कम हो जाती है।
3. बच्चा अत्यधिक थका हुआ हो।

उपचार

सर्वप्रथम भूख न लगने का कारण ज्ञात करना चाहिए। यदि कारण ज्ञात न हो तो चिकित्सक को दिखाकर उपयुक्त दवा देनी चाहिये।

4. दूध उलटना

सामान्यत: दूध उलटना कोई रोग नहीं है। शिशुओं को दूध पीने के बाद जब उठाया जाता है या डकार दिलाने के लिये कंधे से लगाया जाता है तो ये दूध उलट देते हैं।

कारण

1. शिशु का पाचन संस्थान कमजोर होना।
2. दूध पीते समय अधिक मात्रा में वायु का पेट में चले जाना।
3. शिशु का दूध अधिक प्रोटीन व वसायुक्त होना।
4. दूध पिलाने के बाद शिशु को पेट के बल लिटा देना।
5. शिशु का अधिक मात्रा में दूध पीना।

उपचार

1. शिशु को स्तनपान या बोतल का दूध सही तरीके से पिलायें जिससे वायु पेट में न जाये।
2. दूध पिलाने के बाद कंधे से लगाकर डकार अवश्य दिलायें।
3. दूध पिलाने के बाद पेट के बल न लिटायें।

5. पेट में कीड़े होना

बच्चे के पेट में तीन प्रकार के कीड़े होते हैं-

अ. गोल कृमि

ब. सूत कृमि

स. अंकुश कृमि

अ. **गोल कृमि**-ये कीड़े सामान्यत: 8इंच लम्बे होते हैं जो आँतों में रहते हैं। ये भोजन, जल तथा कच्ची साग-सब्जी के माध्यम से आँतों में पहुँच जाते हैं जिससे बच्चों में अपच, पेट दर्द और पेट का फूलना जैसे लक्षण होते हैं।

ब. **सूत्र कृमि**-यह कीड़े अधिकांशत: बच्चों में ही पाये जाते हैं। इनका आकार छोटा तथा रंग सफेद होता है। गुदा मार्ग में खुजली, बिस्तर में पेशाब करना, बार-बार मल त्याग की इच्छा होना जैसे लक्षण पाये जाते हैं।

स. **अंकुश कृमि**-यह छोटे आकार का कृमि है जो आँतों में पाया जाता है। यह आँतों की दीवार से चिपक जाते हैं और रक्त चूसते रहते हैं। रक्ताल्पता, कमजोरी, बच्चे का विकास रुकना, पाचन शक्ति क्षीण होना, भूख न लगना आदि लक्षण बच्चों में पाये जाते हैं।

शरीर में कीड़ों के प्रवेश के कारण

1. गंदे हाथों से भोजन करने, बनाने और परोसने से।
2. दूषित जल व भोजन के सेवन करने से।
3. बच्चों के मिट्टी में खेलने से।

4. बच्चों के मिट्टी खाने से।
5. मल त्याग के बाद हाथ न धोने से।

उपचार

1. घर और आस-पास के वातावरण की स्वच्छता पर ध्यान दें।
2. बच्चों को मिट्टी न खाने दें।
3. पानी उबाल कर पिलायें।
4. बच्चों को अधिक मीठा खाने को न दें।
5. मल परीक्षण करवायें और चिकित्सक के परामर्शानुसार दवा दें।

6. सर्दी-खाँसी

बच्चों के सामान्य रोगों में सर्दी-खाँसी प्रमुख रोग है। बदलते मौसम में ये विशेष रूप से जाड़ों में सर्दी-खाँसी के विकार हो जाते हैं। अगर इसमें लापरवाही बरती जाती है तो यह उग्र रूप धारण कर निमोनिया और ब्रोंकाइटिस आदि रोगों को जन्म देता है। अतः इसे साधारण-सा रोग समझकर इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये अपितु समुचित उपचार करना चाहिये।

कारण

1. मौसम का अत्यधिक ठंडा होना।
2. बच्चों का शीत ऋतु में पानी के साथ खेलना।
3. शिशुओं व बालकों का जुकाम से संक्रमित व्यक्ति के सम्पर्क में आना।
4. तापमान में एकाएक परिवर्तन होना।
5. शिशुओं को गर्म पानी से नहलाने के बाद हवायुक्त स्थान पर वस्त्र पहनाने से।

उपचार

1. रोगी को सर्दी से बचायें।
2. रोगी को नहलायें नहीं बल्कि स्पंज करें।
3. ठंडी चीजें न दें।
4. जाड़े के मौसम में बच्चों को पर्याप्त ऊनी कपड़े पहनायें।
5. मालिश के तुरंत बाद स्नान न करायें।
6. बच्चे को पर्याप्त आराम करने दें।
7. रोगी के रूमाल तथा वस्त्रों को अलग रखें।
8. यदि तीन-चार दिन में जुकाम की तीव्रता कम न हो तो चिकित्सक को दिखायें।

7. गल तुण्डिका

यह रोग गले से सम्बन्धित है।

लक्षण

1. गले के दोनों ओर की ग्रन्थियों में सूजन आ जाती है।
2. गले के अन्दर का भाग लाल तथा दोनों ग्रन्थियाँ बढ़ी हुई दिखाई देती हैं।
3. कान में भारीपन तथा दर्द रहता है।
4. खाने-पीने में कठिनाई होती है।
5. तेज बुखार व उलटियाँ होती हैं।

उपचार

1. योग्य चिकित्सक को दिखायें।
2. गले के चारों ओर मफलर या रूमाल बाँधें।
3. रोगी को हलका तरल व सुपाच्य भोजन दें।
4. गुनगुने पानी में नमक या फिटकरी डालकर कुल्ला करायें।

8. आँख का दुखना

आँख का दुखना शिशुओं का प्रमुख नेत्र रोग है जो स्वच्छता के अभाव से हो जाता है।

कारण

1. आस-पास का गंदा वातावरण।
2. कम रोशनी में कार्य करना।
3. धूल, मिट्टी, गन्दगी आदि का आँख में जाना।
4. आँख साफ करने के लिये गन्दे हाथों और गन्दे वस्त्रों का प्रयोग करने से।

उपचार

1. रोगी को तेज धूप व प्रकाश से बचायें।
2. बोरिक लोशन से आँखों की सफाई करें।
3. आँख साफ करने के लिये स्वच्छ जल, साफ हाथ और साफ रुई या कपड़े का प्रयोग करें।
4. नेत्रों की धूल, मिट्टी आदि से सुरक्षा करें।
5. नेत्र चिकित्सक से परामर्श लें।

9. ज्वर

ज्वर शरीर की वह अवस्था है जब शरीर का तापमान सामान्य (98.4° फारेनहाइट) से अधिक हो जाता है जिसका अहसास शरीर को छूने मात्र से ही हो जाता है।

कारण

1. शारीरिक रूप से कमजोर होने पर।

2. जुकाम-खाँसी होने पर।
3. मलेरिया-टाइफायड आदि रोग होने पर।
4. टॉन्सिल बढ़ने पर।

उपचार

1. बच्चे को शान्त व आरामदायक वातावरण में अधिक-से-अधिक आराम करने दें।
2. हलका व सुपाच्य भोजन दें।
3. यदि बुखार ठंड लगने के साथ आता है तो बच्चे को पर्याप्त कपड़े पहना कर रखें।
4. डॉक्टर से परामर्श लें।
5. ज्वर तीव्र होने पर माथे पर ठंडे पानी की पट्टियाँ रखें।

10. आक्षेप

आक्षेप शिशुओं में होने वाली एक भयंकर बीमारी है। इसमें पहले बच्चे का शरीर काँपता है फिर ऐंठने लगता है। दाँत भिंच जाते हैं। चेहरा पीला हो जाता है। बालक की मुट्ठियाँ भिंच जाती हैं और बालक बेहोश हो जाता है।

कारण

1. मस्तिष्क को संक्रमण द्वारा क्षति पहुँचने पर।
2. बच्चों को मेनिजाइटिस रोग होने पर।
3. तीव्र ज्वर जैसे-मलेरिया, निमोनिया आदि होने पर।
4. मिरगी रोग होने पर।
5. मस्तिष्क में जन्मजात दोष होने पर।
6. आमाशय में अंत्रशोध होने पर।

उपचार

1. आक्षेप आने पर सबसे पहले बच्चे को पीठ के बल लिटायें।
2. कपड़े ढीले कर दें।
3. दाँतों के बीच कपड़े की गद्दी रख दें ताकि जीभ न कटे।
4. यदि कंपन अधिक हो तो हाथ-पाँव की मालिश करें और कम्बल ओढ़ा दें।
5. तुरन्त चिकित्सक के पास ले जायें।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. रोग के प्रारंभिक लक्षण-व्यवहार में परिवर्तन, भूख कम लगना, शौच में अनियमितता, शरीर के तापमान में परिवर्तन, क्रियाशीलता, त्वचा, भार, निद्रा में परिवर्तन आदि हैं।
2. बच्चों को समय पर आहार न देने, आवश्यकता से अधिक या वसायुक्त दूध देने, ठंडा व बासी दूध देने, शिशु के दाँत निकलने के कारणों से शिशु दिन में 4 बार से अधिक मल त्यागता है, इन लक्षणों को अतिसार कहते हैं।
3. मल के अत्यधिक कड़ा होने की वजह से कब्ज होती है व मल विसर्जन कठिनाई से होता है।
4. यकृत के रोग व आँतों के संक्रमण से भूख कम लगती है।
5. शिशु को स्तनपान या सही बोतल से दूध पिलाने व डकार दिलाने से दूध उलटने की समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा।
6. पेट में गोल कृमि, सूत कृमि व अंकुश कृमि पाये जाते हैं।
7. दूषित भोजन व गंदे हाथों से भोजन करने के कारण पेट में कीड़े पड़ जाते हैं।
8. सर्दी-खाँसी का इलाज सही समय पर ना हो तो निमोनिया व ब्रॉंकाइटिस हो जाता है।
9. गलतुण्डिका रोग गले से सम्बन्धित है।
10. स्वच्छता के अभाव, तेज धूप के कारण आँख दुखना रोग होता है।
11. ज्वर शरीर की वह अवस्था है जब शरीर का तापमान सामान्य (98.4° फारेनहाइट) डिग्री से अधिक हो जाता है।
12. आक्षेप में बच्चे का शरीर काँपता है, ऐंठने लगता है, दाँत भिंच जाते हैं व चेहरा पीला हो जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें :

(i) शरीर के तापमान में वृद्धि होती है-

(अ) बुखार होने से (ब) खाना नहीं पचने से

(स) स्नान नहीं करने से (द) स्वच्छ नहीं रहने से

(ii) रोग की अवस्था में बालक

(अ) खेलता है (ब) सुस्त व थका हुआ होता है

(स) खुश रहता है (द) अधिक भोजन करता है

(iii) यदि शिशु को दिन में चार बार से अधिक मल लगे तो लक्षण है-

(अ) कब्ज (ब) उलटी

(स) अतिसार (द) पेट में कीड़े होना

(iv) संक्रमण से होने वाला रोग है-

(अ) जुकाम (ब) कब्ज

(स) पीलिया (द) पोलियो

(v) गलतुण्डिका में शरीर का कौनसा भाग प्रभावित होता है-

(अ) कान (ब) गला

(स) आँख (द) मुँह

2. रिक्त स्थान भरो-

(i) ज्वर में शरीर का तापमान सामान्य.....से अधिक हो जाता है।

(ii) .....में गले के दोनों ओर की ग्रंथियों में सूजन आ जाती है।

(iii) अत्यधिक जुकाम से.....व.....होने की संभावना रहती है।

(iv) .....बीमारी में कृमि आँतों की दीवार से चिपक कर खून चूसते हैं।

(v) शिशु का पाचन संस्थान कमजोर होना.....होने का संकेत है।

प्रश्न 3. पेट में कीड़े की बीमारी के बारे में बताइये।

प्रश्न 4. रोगों के प्रारम्भिक लक्षण क्या है?

प्रश्न 5. अतिसार के क्या कारण है?

प्रश्न 6. कब्ज के कारण व उपचार बतलाइये।

प्रश्न 7. बच्चों में भूख न लगना व दूध उलटने की बीमारी को संक्षिप्त में बताइये।

प्रश्न 8. बच्चों के पेट में कितने प्रकार के कीड़े पाये जाते हैं?

प्रश्न 9. सर्दी-खाँसी होने के प्रमुख कारण व इसके उपचार लिखो।

प्रश्न 10. आँख के दुखने के कारण व इससे बचाव के उपायों का वर्णन करो।

प्रश्न 11. आक्षेप व ज्वर के बारे में विस्तारपूर्वक समझाओ।

प्रश्न 12. गलतुण्डिका व आँख दुखना बीमारी के लक्षण बताइये।

प्रश्न 13. कब्ज व अतिसार बीमारी के उपचार लिखिए।

प्रश्न 14. टीकाकरण के महत्त्व को लिखिए।

उत्तरमाला :

1. (i) अ (ii) ब (iii) स (iv) अ (v) ब

2. (i) 98.4° फारेनहाइट (ii) गलतुण्डिका (iii) निमोनिया और ब्रॉंकाइटिस (iv) पेट में कीड़े (v) रोग

अध्याय 10

बच्चों की वैकल्पिक देख-भाल

जन्म के बाद से ही बच्चे के जीवन में विकास व सीखने की क्रियाएँ शुरू हो जाती हैं जो कि आजीवन काल तक चलती है और आयु के अनुरूप बदलती रहती है। बच्चे के जीवन की शुरुआती आयु (0-6) सबसे महत्त्वपूर्ण होती है। उनके जीवन में बचपन में सीखे सभी अनुभव उनके सकारात्मक जीवन के लिए अहमीयत रखते हैं। इसके लिए माँ के साथ-साथ और भी कई वैकल्पिक देख-भाल की जरूरत होती है। हमारे समाज व शिक्षा प्रणाली में ऐसे कई विकल्प मौजूद हैं जो कि बालक के सर्वांगीण विकास के लिए सहायक हैं वे निम्न हैं-

आयु : 0-2 साल

1. **घर पर बच्चों की देख-भाल के लिए नौकरानी/दाई (Home based child care Provider)**—बच्चे की देख-भाल के लिए घर पर ही आया या नौकरानी रखना जो दैनिक कार्यों में उसकी मदद करे।
2. **क्रेश (Creche Day care center)**-कामकाजी महिलाओं के लिए यह बहुत उपयोगी है। इसमें माताएँ अपने बच्चों (0-2 साल) को क्रेश में दिन भर छोड़ती हैं जहाँ उनकी अच्छे से देख-भाल की जाती है (चित्र 10.1)।
3. **मोबाइल क्रेश** (**Mobile Chreche**)-मोबाइल क्रेश स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा मजदूरवर्ग जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर निर्माण कार्य के लिए जाता है उनके वंचित और उपेक्षित बच्चों की शिक्षा व हित का कार्य करता है। तत्काल तैयार किए जा सकने वाले तंबुओं का प्रयोग किया जाता है जहाँ बच्चों को पढ़ाया जा सके।

चित्र 10.1 : **क्रेश**

आयु : 2-4 साल

1. **प्रयोगशाला नर्सरी स्कूल**-प्रयोगशाला नर्सरी स्कूल में 2½ से 3½ साल के बच्चों को खेल के माध्यम से विद्यालय की गतिविधियों और आधार ज्ञान व कौशल सिखाया जाता है।
2. **प्ले स्कूल (Play School)**-यह शिक्षण व्यवस्था सम्पूर्ण रूप से खेल द्वारा सीखने पर निर्भर है क्योंकि यह बहुत प्रभावशाली व रोचक माध्यम है। बच्चों के शिक्षण के लिए इसमें विभिन्न प्रकार के खेलों के माध्यम से रोचक व मनोरंजक तरीके से सिखाया जाता है। यह बच्चों में अपने भावों, रुचि, विचार को दर्शाने के लिए प्रोत्साहित करता है एवं इस माध्यम से बच्चों का सर्वांगीण विकास होता है। इसमें की जाने वाली क्रियाएँ व समयसारिणी लचीली होती है व बच्चों का विद्यालय के प्रति भय निकल जाता है।

आयु : 4-6साल

3. **किंडर गार्टन (Kinder Garten)**-फ्रेडरिक विलियम फ्रोबेल (1782 ई.-1852 ई.) ने 1837 में किंडर गार्टन की अवधारणा दी। फ्रोबेल ने बालक के सर्वांगीण विकास को बढ़ावा देने के लिए कई गिफ्ट (उपहार) दिए जो निम्न हैं-

   उपहार I-6रंगी हुई गेंदों का समूह।

   उपहार II-लकड़ी की गेंद, क्यूब, सिलेण्डर।

   उपहार III, IV, V, VI-अलग-अलग आकार और आकृति के लकड़ी के ब्लॉक सेट।

   उपहार VII-त्रिभुजाकार व वर्गाकार के लकड़ी के दो सेट।

   उपहार VIII-लकड़ी की सीधी रेखाएँ व कागज के गोलाकार।

   उपहार IX-बीज, पत्थर, कागज के सेट।

   - उपहार X स्ट्रॉ, तीखी लकड़ियाँ, मोम आदि।

   इन गिफ्ट की सहायता से फ्रोबेल ने बच्चों को ठोस, तरल, सतह, रेखाएँ आदि की अवधारणा को समझाया। इनमें सभी क्रियाएँ जैसे-क्ले को पकाना, कागज मोड़ना, कागज काटना, मोतियों को पिरोना, बटन बंद करना व खोलना, ड्राइंग बनाना आदि को सम्मिलित किया।

4. **मोण्टेसरी स्कूल (Montessorri School)**-मोण्टेसरी

(1870-1952 ई.) ने बच्चों के अध्ययन में ज्ञानेन्द्रियों के उपयोग पर जोर दिया। इस तरह के अध्ययन में बच्चों को स्वयं की सहायता कौशल या दैनिक कार्यों को करने के लिए व प्रकृति को समझने के लिए कई शिक्षण सामग्री दी। मोण्टेसरी ने प्रायोगिक क्रियाएँ, ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण, प्रकृति का अध्ययन, भाषा विकास, बौद्धिक शिक्षा पर जोर दिया।

5. **पूर्व आधारीय मूलभूत शिक्षा (Pre Basic Education)** – महात्मा गाँधी (1869-1948) ने पूर्व आधारीय शिक्षा व्यवस्था पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि शिक्षण व्यवस्था बालक केन्द्रित होनी चाहिए। उन्होंने बालक की सृजनात्मकता को बढ़ाने के लिए उत्प्रेरक क्रियाओं पर जोर दिया। इसका मुख्य उद्देश्य बच्चों में आदतों, विशेषताओं, साफ-सफाई (व्यक्तिगत व सामुदायिक), अनुशासन, अच्छी भाषा का विकास करना है।

सरकार द्वारा भी बच्चों की वैकल्पिक देख-भाल के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये हैं-

1. **बालवाड़ी (Balwadi)**-बालवाड़ी कार्यक्रम बच्चों के हित के लिए चलाए गए। इसमें 3-6वर्ष के बच्चों की दिनभर की शिक्षण क्रियाओं, खेल, पोषण आदि का केन्द्र पर ध्यान रखा जाता है।
2. **आंगनवाड़ी (Anganwadi)**-सरकार द्वारा ICDS के अन्तर्गत चलाया गया आँगनबाड़ी कार्यक्रम 0-6साल के बच्चों, माताओं और किशोर-किशोरियों के लिए है। इसमें बच्चे की शिक्षण व पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है। निश्चित समय पर बच्चे आँगनबाड़ी केन्द्र पर जाते हैं उनको पढ़ाया व भोजन दिया जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. बच्चे के जीवन की शुरुआती आयु (0-6) सबसे महत्त्वपूर्ण होती है।
2. घर पर बच्चों की देख-भाल के लिए आया (नौकरानी) रखी जाती है।
3. 0-2 वर्ष के बच्चों की देख-भाल के लिए क्रेच चलते हैं जहाँ कामकाजी माताएँ अपने बच्चों को दिनभर के लिए छोड़ती हैं।
4. 2-4 वर्ष के बच्चों के लिए प्रयोगशाला नर्सरी स्कूल, प्ले स्कूल आदि चलते है, जिनमें विभिन्न प्रकार की क्रियाओं से उनका विकास होता है।
5. 4 से 6साल के बच्चों के लिए किंडर गार्टन, मोण्टेसरी स्कूल, पूर्व आधारीय शिक्षा, बालवाड़ी व आंगनबाड़ी विकल्प उपलब्ध हैं।
6. मजदूरवर्ग जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर निर्माण कार्य के लिए जाता है उनके बच्चों की शिक्षा के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा तत्काल तम्बू तैयार कर बच्चों को शिक्षित किया जाता है, जिसे मोबाइल क्रेच कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें :

(i) बच्चों की घर पर देख-भाल के लिए विकल्प है-
(अ) क्रेच (ब) नर्सरी स्कूल
(स) आया (नौकरानी) (द) आँगनबाड़ी

(ii) कामकाजी महिलाओं के लिए बच्चों की देख-भाल के लिए उपयोगी है-
(अ) प्रयोगशाला नर्सरी स्कूल (ब) बालवाड़ी
(स) पूर्व आधारीय शिक्षा (द) क्रेच

(iii) मजदूरवर्ग के बच्चों की शिक्षा के लिए चलने वाली स्वयंसेवी संस्थाएँ हैं-
(अ) मोबाइल क्रेच (ब) आई.सी.डी.एस.
(स) किंडर गार्टन (द) प्ले स्कूल

(iv) अध्ययन में ज्ञानेन्द्रियों के उपयोग पर जोर दिया-
(अ) तारा बाई मोदक (ब) मारिया मोण्टेसरी
(स) जवाहर लाल नेहरू (द) महात्मा गाँधी

(v) किंडर गार्टन के संस्थापक थे-
(अ) फ्रेडरिक विलियम फ्रोबेल (ब) मारिया मोण्टेसरी
(स) महात्मा गाँधी (द) जॉन रूसो

2. रिक्त स्थान भरो

(i) आँगनबाड़ी कार्यक्रम सरकार द्वारा.....कार्यक्रम के अन्तर्गत चलाया जाता है।

(ii) प्रयोगशाला नर्सरी स्कूल में बच्चों को भेजने की उम्र..... साल है।

(iii) क्रेच में.....से.....साल के बच्चों को भेजा जाता है।

(iv) खेल के माध्यम से अध्ययन पर.....में जोर दिया।

(v) पूर्व आधारीय शिक्षा का प्रत्यय.....ने दिया।

प्रश्न 3. बालवाड़ी व आंगनवाड़ी में अंतर समझाओ।

प्रश्न 4. प्ले स्कूल में बच्चों को किस तरह सिखाया जाता है?

प्रश्न 5. आधारीय ज्ञान के क्या लाभ है?

प्रश्न 6. मोबाइल क्रेच क्या है?

प्रश्न 7. मोण्टेसरी स्कूल की क्या अवधारणा है?

प्रश्न 8. किंडर गार्टन को विस्तार से बताओ।

प्रश्न 9. बच्चों की वैकल्पिक देख-भाल के लिए कौन-कौन से विकल्प उपलब्ध हैं?

उत्तरमाला :

1. (i) स (ii) द (iii) अ (iv) ब (v) अ
2. (i) ICDS (ii) 2½ से 3½ (iii) 0-2 साल (iv) प्ले स्कूल

इकाई-III : पारिवारिक पोषण

अध्याय 11

भोजन एवं स्वास्थ्य में अर्न्तसम्बन्ध

जीवित रहने के लिये प्राणवायु की आवश्यकता होती है, उसी तरह से जल व भोजन भी मनुष्य के लिए अनिवार्य है। भोजन न केवल जीवित रहने के लिये आवश्यक है वरन् यह विभिन्न शारीरिक कार्यों जैसे शरीर को शक्ति प्रदान करना, शरीर की वृद्धि व विकास के लिये तथा शरीर की विभिन्न आन्तरिक क्रियाओं के नियमन को सम्पादित करने के लिये भी आवश्यक है। संतुलित भोजन ग्रहण करने से व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। भोजन एवं स्वास्थ्य के अन्तर्सम्बन्ध को समझने के लिये कुछ परिभाषाओं का जानना जरूरी है।

भोजन (Food) :

भोजन वह ठोस एवं तरल पदार्थ हैं जिन्हें हमारा शरीर ग्रहण करता है तथा जो शरीर में जाकर पाचन क्रिया के पश्चात् अवशोषित होकर विभिन्न तरह के शारीरिक व मानसिक कार्यों के लिये काम लिया जाता है।

सामान्य भाषा में भोजन वह वस्तु है, जिसे हम प्रतिदिन ग्रहण करते हैं एवं वह शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है, शरीर के निर्माण में सहायक है। इसके अतिरिक्त भोजन शरीर की क्रियाओं का विनियमन करता है और शरीर का संरक्षण भी। भोजन शरीर को पोषण प्रदान करता है। भोजन उपचय और अपचय जैसी क्रियाओं द्वारा शरीर में प्रयोग किया जाता है और शरीर को बनाए रखता है। भोजन की अनुपस्थिति में शरीर का निर्माण नहीं हो सकता।

पोषक तत्त्व (Nutrients) :

पोषक तत्त्व भोजन में पाए जाने वाले घटक हैं जो कि शरीर के लिए अत्यावश्यक हैं। ये शरीर में ऊर्जा प्रदान करने हेतु, शरीर की वृद्धि हेतु एवं शारीरिक गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने में सहायक हैं। भोजन में पाए जाने वाले पोषक तत्त्वों के नाम हैं–प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विभिन्न विटामिन्स, खनिज-लवण, जल एवं रेशा। यह सभी साथ मिलकर शरीर को पोषण प्रदान करते हैं एवं एक स्वस्थ जीवन व्यतीत करने में योगदान प्रदान करते हैं।

पोषण (Nutrition) :

पोषण एक विज्ञान है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा भोजन में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्त्व मनुष्यों द्वारा भोजन के माध्यम से ग्रहण करने के पश्चात् चयापचय क्रियाओं में सम्मिलित होकर शरीर द्वारा विभिन्न कार्यों के लिये प्रयोग किये जाते हैं। इसके फलस्वरूप ही पोषक तत्त्व शरीर की वृद्धि करने में, उसे ऊर्जा प्रदान करने में व शरीर को संरक्षण प्रदान करने के काम आते हैं।

पोषण स्तर (Nutritional Status) :

पोषण स्तर भोजन के ग्रहण करने के अनुसार निर्धारित होता है। यह शरीर की अवस्था है जो कि पोषक तत्त्वों को भोजन द्वारा लेने से व उनके शरीर में उपयोग होने पर निर्भर करता है। पोषण स्तर की दो स्थितियाँ हो सकती हैं–

1. सुपोषण, 2. कुपोषण

सुपोषण–सुपोषण अर्थात् अच्छा, उचित पोषण स्तर जिसके अन्तर्गत समस्त पोषक तत्त्व, उचित मात्रा में व्यक्ति के आहार में सम्मिलित हैं, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का स्वास्थ्य उत्तम बना रहता है।

कुपोषण–कुपोषण अर्थात् एक अनुचित पोषण स्तर जिसके अन्तर्गत आहार में पोषक तत्त्व अत्यधिक मात्रा में कम या असन्तुलित मात्रा में उपस्थित होते हैं।

अतः कुपोषण में अल्प पोषण (Under nutrition) एवं अतिपोषण (Over nutrition) दोनों सम्मिलित हैं।

अल्प पोषण–जिसमें आवश्यक पोषक तत्त्व कम मात्रा में आहार में उपस्थित हैं जिसके कारण व्यक्ति पोषण से ग्रसित हो जाता है। अल्प पोषण की स्थिति ऊर्जा या किसी एक या कई आवश्यक पोषक तत्त्वों की कमी से उत्पन्न होती है। अल्प पोषण के उदाहरण हैं–रक्ताल्पता (Anameia), सूखा रोग (Marasmus), गलगण्ड (Goiter) इत्यादि।

अति पोषण–जिससे एक या कई आवश्यक पोषक तत्त्वों एवं ऊर्जा की अधिकता के कारण व्यक्ति अति पोषित हो जाता है और रोगग्रस्त होने लगता है। अति पोषण के उदाहरण हैं–मोटापा, फ्लोरोसिस इत्यादि।

सन्तुलित भोजन का सेवन करने से पोषण स्तर अच्छा होगा, परिणामस्वरूप उसका स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। सन्तुलित भोजन से यह तात्पर्य है जिसमें हमारी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार सभी पोषक तत्त्व उचित मात्रा में उपस्थित हैं।

स्वास्थ्य (Health) :

स्वास्थ्य सिर्फ बीमारियों की अनुपस्थिति का नाम नहीं है। स्वास्थ्य का अर्थ विभिन्न लोगों के लिए अलग-अलग होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार स्वास्थ्य सिर्फ रोग या दुर्बलता की अनुपस्थिति ही नहीं बल्कि एक पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक खुशहाली की स्थिति है।

स्वास्थ्य के विभिन्न आयाम अलग-अलग टुकड़ों की तरह हैं। अत: अगर हम अपने जीवन को कोई अर्थ प्रदान करना चाहते हैं तो हमें स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों को एक साथ अच्छी अवस्था में रखना होगा। अच्छे स्वास्थ्य में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य निहित है।

शारीरिक स्वास्थ्य– शारीरिक स्वास्थ्य शरीर की स्थिति को दर्शाता है, जिसमें व्यक्ति की संरचना, विकास, कार्य प्रणाली और रख-रखाव शामिल होता है।

मानसिक स्वास्थ्य– मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ हमारे भावनात्मक और आध्यात्मिक लचीलेपन से है जो हमें अपने जीवन में दर्द, निराशा और उदासी की स्थितियों में जीवित रहने के लिये सक्षम बनाती है।

सामाजिक स्वास्थ्य– सामाजिक स्वास्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति-विशेष की समुदाय में सामंजस्य बैठा पाने की क्षमता से है। एक सामाजिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में परोपकारिता, सहिष्णुता, सचेतता के गुण होते हैं। ऐसे व्यक्ति सदैव प्रसन्न रहते हैं एवं दूसरों से भी हार्दिक सम्बन्ध बनाये रखते हैं। इस तरह का व्यक्तित्व किसी भी सामाजिक स्थिति में सामंजस्य बैठा पाता है एवं यह क्षमता उसके सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने में सहायक होती है।

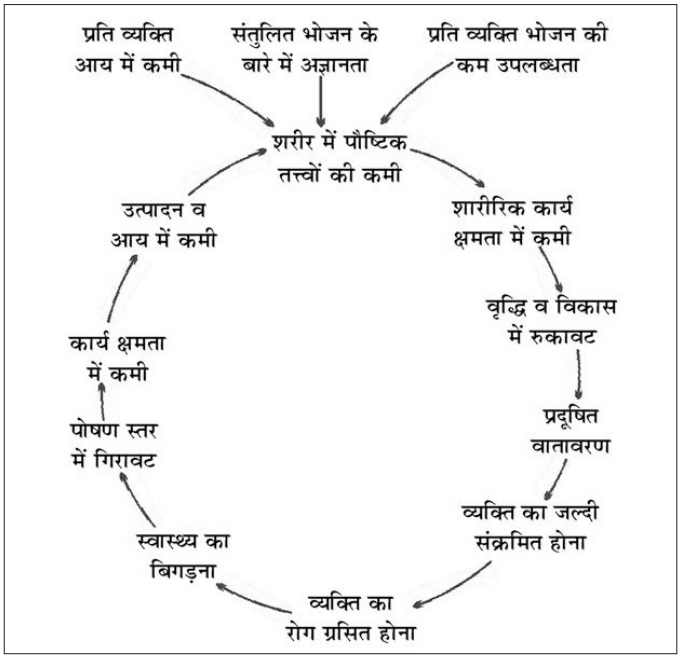

चित्र 11.1 : **भोजन एवं स्वास्थ्य में अन्तर्सम्बन्ध**

आध्यात्मिक स्वास्थ्य– हमारा अच्छा स्वास्थ्य आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ हुए बिना अधूरा है। जीवन के अर्थ और उद्देश्य की तलाश करना हमें आध्यात्मिक बनाता है। प्रार्थना एवं योग के माध्यम से व्यक्ति अपनी आन्तरिक क्षमता एवं ताकत को बनाये रखता है। ऐसे व्यक्ति जीवन की नकारात्मकता की स्थिति में भी अपने चित्त व मस्तिष्क को सदैव शान्त बनाये रखते हैं।

भोजन एवं स्वास्थ्य में अन्तर्सम्बन्ध

अच्छा व उत्तम स्वास्थ्य अच्छे भोजन द्वारा ही बनाया जा सकता है। अच्छे भोजन से अभिप्राय है, भोजन में सभी पोषक तत्त्व उचित मात्रा में उपस्थित होना।

यदि मूल रूप से समझा जाए तो पोषक तत्त्व ही शरीर को बनाते हैं। समस्त शारीरिक गतिविधियां सुचारु रूप से चलती रहे, इसके लिए पोषक तत्त्व अत्यावश्यक हैं। पोषक तत्त्वों के अभाव में पोषण स्तर में गिरावट आती है और व्यक्ति रोग से ग्रसित हो जाता है। बच्चों में पोषक तत्त्वों की कमी होने के कारण उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास में बाधा आती है। शारीरिक विकास के धीमे होने या शरीर के रोगग्रस्त होने से मनुष्य की कार्य क्षमता में कमी आती है जिसका विपरीत प्रभाव उत्पादन एवं जीविकोपार्जन पर पड़ता है एवं यह पौष्टिक तत्त्वों की उपलब्धता में और कमी लाता है। यह चक्र इसी प्रकार चलता रहता है (चित्र 11.1)।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. वायु एवं जल की तरह भोजन भी मनुष्य की परम आवश्यकता है।
2. भोजन वे ठोस एवं तरल पदार्थ हैं जो मनुष्य द्वारा खाने योग्य हों, आसानी से पचाया जा सके तथा शरीर को पोषित करे।
3. पोषक तत्त्व भोजन में उपस्थित वे रासायनिक तत्त्व हैं जो शरीर की विभिन्न क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिये एक विशेष मात्रा व अनुपात में आवश्यक हैं।
4. पोषण स्तर शरीर की वह अवस्था है जो भोजन में उपस्थित पोषक तत्त्वों के उपयोग से प्रभावित होती है। पोषण स्तर दो प्रकार के होते हैं–सुपोषण एवं कुपोषण।
5. स्वास्थ्य के चार आयाम होते हैं–शारीरिक, भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक।
6. एक स्वस्थ व्यक्ति वह होता है जिसका वजन व लम्बाई–उम्र व लिंग के अनुरूप हो, वह सुगठित शरीर व तेज दिमाग का स्वामी

हो, दृढ़ विश्वास तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाला सामाजिक मनुष्य हो।

7. भोजन व स्वास्थ्य में गहरा अन्तर्सम्बन्ध है। व्यक्ति पोषक तत्त्वों से युक्त भोजन ग्रहण करता है तो उसका पोषण स्तर अच्छा होगा तथा वह हमेशा स्वस्थ रहेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न को परिभाषित कीजिये–
   भोजन, पोषक तत्त्व, पोषण, पोषण स्तर, स्वास्थ्य
2. स्वास्थ्य के चतुरायाम बताइये।
3. पोषण स्तर के प्रकार बताइये।
4. कुपोषण स्वास्थ्य को किस प्रकार प्रभावित करता है?
5. भोजन एवं स्वास्थ्य के अन्तर्सम्बन्ध को रेखांकित कीजिये।

अध्याय 12

भोजन के कार्य

भोजन के कार्य :

जीवित रहने के लिए वायु, जल एवं भोजन तीन बुनियादी आवश्यकताएँ हैं। भोजन, मनुष्य की जल एवं वायु के बाद एक अति आवश्यक आवश्यकता है, जिसके बिना अधिक दिनों तक स्वस्थ तथा जिन्दा रहना संभव नहीं है। अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति हेतु संतुलित आहार आवश्यक है, जिसमें पर्याप्त मात्रा में कार्बोज, वसा, प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवण उपस्थित हों। जल में कोई भी पौष्टिक तत्त्व विद्यमान नहीं है, फिर भी जल को पौष्टिक तत्त्व के रूप में सम्मिलित किया गया है। क्योंकि जल शरीर के लिए विभिन्न कार्यों को करने के लिये, शरीर के तापक्रम संतुलन एवं नियमन के लिये आवश्यक है। भोजन के अन्तर्ग्रहण (Ingestion), पाचन (Digestion), अवशोषण (Absorption), वहन (Transportation), उत्सर्जन (Excretion) आदि कार्यों के लिये जल आवश्यक है।

भोजन में दो प्रकार के भोज्य पदार्थों का समावेश होता है–सामिष भोज्य पदार्थ एवं निरामिष भोज्य पदार्थ। दूध व दूध से बने पदार्थ एवं खेतों में उगने वाले भोज्य पदार्थ जैसे–अनाज, दालें, तिलहन, हरी सब्जियाँ, कंद-मूल, फल इत्यादि निरामिष भोज्य पदार्थ कहलाते हैं एवं ऐसे भोज्य पदार्थों का सेवन करने वाले मनुष्य शाकाहारी कहलाते हैं। अण्डा, मांस, मछली आदि भोज्य पदार्थ सामिष भोज्य पदार्थ या मांसाहार कहलाते हैं एवं ऐसे भोज्य पदार्थों का सेवन करने वाले मनुष्य मांसाहारी कहलाते हैं।

दोनों ही प्रकार के भोज्य पदार्थ शारीरिक विकास व बुद्धि को सीधे ही प्रभावित करते हैं। भोज्य पदार्थों का यह प्रभाव इनमें समाहित पोषक तत्त्वों के कारण होता है। वास्तव में भोजन में निहित पोषक तत्त्व ही भोजन के विभिन्न कार्य संपादित करते हैं।

भोजन में उपस्थित विभिन्न प्रकार के भोज्य तत्त्वों का कार्य भी भिन्न-भिन्न होता है–

भोज्य तत्त्वों का कार्य–विभिन्न भोज्य तत्त्वों (कार्बोज, वसा, प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण एवं जल) के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है–

1. **कार्बोज**–कार्बोज ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। इसमें रेशे भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहते हैं। ये रेशे भोजन की पाचन क्रिया के दौरान आमाशय के क्रमानुकुंचन में सहयोग देकर भोजन को छोटी आँत में भेजने का कार्य करते हैं, इससे भोजन सरलता से पच जाता है। साथ ही यह मल निष्कासन में सहायता करता है और मलबद्धता से बचाता है। सभी प्रकार के अनाज जैसे–चावल, गेहूँ, मक्का, बाजरा, मिलेट, जौ, रागी आदि में कार्बोज की मात्रा सबसे अधिक होती है।
2. **प्रोटीन**–शरीर की वृद्धि, मांसपेशियों का निर्माण, तन्तुओं की टूट-फूट की मरम्मत, हार्मोन का निर्माण, रक्त का थक्का बनना आदि अनेकों कार्यों के लिये प्रोटीन की आवश्यकता होती है। कोशिकाएँ प्रोटीन की बनी होती हैं। अत: कोशिकाओं के निर्माण के लिये प्रोटीन आवश्यक होता है। इसलिये प्रोटीन को 'निर्माणात्मक तत्त्व' कहा गया है।
3. **वसा**–वसा ऊर्जा का सान्द्र स्रोत है। यह शरीर को ऊर्जा एवं उष्णता प्रदान करता है। त्वचा के नीचे वसीय ऊतक के रूप में यह जमा रहता है और आवश्यकता पड़ने (व्रत या उपवास के दिन, यात्रा के दौरान, जब कभी भोजन नहीं मिलता है) पर यह टूटकर शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है। तंत्रिका ऊतक का निर्माण भी वसा के द्वारा होता है। एक ग्राम वसा 9 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रदान करता है। घी, तेल, मूंगफली, वनस्पति घी, चर्बी, सरसों का तेल एवं अन्य सभी तिलहनों में वसा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहती है।
4. **विटामिन**–विटामिन कार्बनिक यौगिक है जिसे आवश्यक पोषक तत्त्व कहा जाता है। शरीर में इसकी आवश्यकता बहुत कम होती है परन्तु यह शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक है। चयापचय एवं जटिल रासायनिक क्रियाओं के लिये विटामिन की आवश्यकता है। यह शरीर को विभिन्न रोगों से सुरक्षा प्रदान करते हैं तथा शरीर को रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करते हैं। यह शरीर में उत्प्रेरक की भाँति कार्य करते हैं और विभिन्न शारीरिक क्रियाओं को सम्पन्न करने में सहयोग करते हैं। अत: भोजन में विटामिन युक्त आहार लेना अत्यन्त आवश्यक है।
5. **खनिज लवण**– विटामिन की भाँति खनिज लवण भी शरीर के लिये आवश्यक हैं। इसके मुख्य दो कार्य हैं–

(अ) निर्माणात्मक कार्य

(ब) नियामक कार्य।

इस प्रकार यह शरीर की वृद्धि एवं विकास के साथ-साथ निर्माण का भी कार्य करता है। शरीर की विभिन्न क्रियाओं का नियमन खनिज लवण के द्वारा ही होता है। कुछ खनिज लवण तो ज्यादा मात्रा में, परन्तु कुछ खनिज लवण शरीर में अत्यल्प मात्रा में चाहिये। अत्यल्प मात्रा में आवश्यक लवण को 'ट्रेस तत्त्व' कहते हैं। यों तो इन तत्त्वों की शरीर में अति सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता रहती है परन्तु ये तत्त्व अत्यन्त ही आवश्यक होते हैं।

6. **जल**–वायु के बाद जल मनुष्य की मौलिक आधारभूत आवश्यकता है। जल घोलक के रूप में कार्य करता है और शरीर की विभिन्न क्रियाओं को करने के लिये आवश्यक है। हमारे शरीर का अधिकांश भाग (65 प्रतिशत) जल है।

प्राय: सभी भोज्य तत्त्वों में जल की मात्रा विद्यमान होती है।

भोज्य तत्त्व एवं उनका अनुपात– भोजन में विभिन्न पौष्टिक तत्त्व मौजूद रहते हैं। एक व्यक्ति को अपने दैनिक आहार में भोज्य तत्त्वों को समावेश करते समय यह ध्यान देना चाहिए कि उसके भोजन में कार्बोज, वसा एवं प्रोटीन अवश्य पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए। कार्बोज 60-70 प्रतिशत, वसा 20-30 प्रतिशत, प्रोटीन 10-15 प्रतिशत। मनुष्य के जीवित रहने के लिए भोजन अत्यन्त आवश्यक है। यह हमारे शरीर के भरण-पोषण, वृद्धि-विकास, नियंत्रण-नियमन आदि के साथ-साथ सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्य भी करता है। भोजन द्वारा निम्नलिखित कार्य सम्पन्न किये जाते हैं–

1. शारीरिक कार्य,
2. मनोवैज्ञानिक कार्य,
3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य।

1. **शारीरिक कार्य**– हमारे द्वारा ग्रहण किया गया भोजन हमारे शरीर का भाग बन जाता है। भोजन के प्रमुख कार्य शारीरिक वृद्धि एवं विकास, तंतुओं की टूट-फूट की मरम्मत, विभिन्न क्रियाओं का नियंत्रण एवं नियमन आदि है। शारीरिक कार्य के अन्तर्गत भोजन द्वारा निम्नलिखित कार्य सम्पन्न किये जाते हैं–

(i) **भोजन शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है**– विभिन्न शारीरिक क्रियाकलापों, जैसे–चलने, बैठने, दौड़ने, कार्य करने आदि के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है (चित्र 12.1)। यहाँ तक कि अचेतावस्था में भी जब हम सोते हैं तो भी शरीर के विभिन्न अंग स्वत: ही क्रियाएँ करते रहते हैं, जैसे–श्वसन, पाचन, अवशोषण, उत्सर्जन आदि। इन कार्यों को करने के लिये भी ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जो कि हमें भोजन से प्राप्त होती है। वसा एवं कार्बोज, ऊर्जा के मुख्य स्रोत हैं। ये शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं इसलिये इन्हें ऊर्जादायक भोज्य तत्त्व कहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर प्रोटीन भी ऊर्जा देने के काम आता है। एक ग्राम कार्बोज एवं

चित्र 12.1 : **ऊर्जा के लिए**

प्रोटीन से 4 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है जबकि एक ग्राम वसा से 9 किलो कैलोरी ऊर्जा की प्राप्ति होती है। हमें ऊर्जा कार्बोज एवं वसा से ही प्राप्त करनी चाहिये क्योंकि प्रोटीन का मुख्य कार्य निर्माणात्मक है।

(ii) **भोजन शारीरिक वृद्धि एवं विकास करता है**– शरीर एक विकासशील जैविकीय इकाई है जो छोटे-छोटे कोषों से बनी है। शरीर की सूक्ष्मतम इकाई कोशिका है। हमारा शरीर असंख्य कोशिकाओं से बना है। भ्रूण जब माता के गर्भ में विकसित होता है तभी से कोशिकाओं से नये-नये ऊतक बनना प्रारम्भ होते हैं तथा शरीर की वृद्धि एवं विकास करते हैं। शरीर निर्माण की यह प्रक्रिया शैशवावस्था, बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में विशेष रूप से क्रियाशील रहती है। यही कारण है कि जन्म के समय जो बच्चा 2.5 कि.ग्रा.-3.5 कि.ग्रा. भार का तथा 40-50 सेमी की लम्बाई का होता है वही युवावस्था तक 50-75 कि.ग्रा. तथा 5-6फीट की लम्बाई को प्राप्त करता है।

चित्र 12.2 : **वृद्धि के लिए**

माता के गर्भ में भ्रूण माँ के भोजन से आहार ग्रहण करता है तथा जन्म पश्चात् आहार उसे स्वयं ग्रहण करना होता है, जिसमें सभी प्रकार के पौष्टिक तत्त्व विद्यमान होते हैं। बच्चों में वृद्धि एवं विकास का होना भोजन की पर्याप्तता एवं संतुलित मात्रा पर निर्भर करता है। बाल्यावस्था

में वृद्धि ज्यादा तीव्र गति से होती है, इसलिए इस समय पौष्टिक एवं संतुलित आहार की ज्यादा आवश्यकता है। युवावस्था में जो भोजन ग्रहण किया जाता है, वह शरीर को यथास्थिति में रखने तथा स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये आवश्यक होता है। वृद्धावस्था में शरीर को निर्माणात्मक भोज्य तत्त्वों की ज्यादा आवश्यकता होती है, क्योंकि इस अवस्था में शरीर की कोशिकाओं एवं तंतुओं का निर्माण सबसे कम होता है तथा ह्रास अधिक होता है। इसलिये ऊर्जा प्रदान करने वाले भोज्य तत्त्वों की कम परन्तु प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज-लवण युक्त आहार की ज्यादा आवश्यकता होती है (चित्र 12.2)।

(iii) भोजन शरीर को रोगों से रक्षा प्रदान करता है तथा शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं का नियंत्रण–

भोजन से शरीर को रोगों के प्रति सुरक्षात्मक शक्ति प्राप्त होती है, स्वस्थ बनाये रखता है, बीमारियों से बचाता है तथा शरीर की विभिन्न क्रियाओं का नियंत्रण एवं नियमन करता है जैसे–शरीर के तापमान का नियंत्रण, रक्त संतुलन, अम्ल-क्षार संतुलन, मल-मूत्र का उत्सर्जन, जैव उत्प्रेरकों (Enzymes) का सक्रियीकरण इत्यादि। शरीर के रक्षात्मक एवं नियामक कार्य भोजन में उपस्थित विविध प्रकार के विटामिन, खनिज-लवण एवं जल के द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। प्रत्येक तत्त्व शरीर में अपने विशिष्ट कार्य के लिये उत्तरदायी होता है। यदि भोजन में इनमें से किसी भी एक तत्त्व या अधिक तत्त्वों की कमी हो जाये तो शरीर के विभिन्न कार्यों के संचालन में अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी तथा शरीर रोग ग्रस्त हो जायेगा। फलस्वरूप शरीर की वृद्धि एवं विकास पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा। शरीर को रोगों से संघर्ष करने की शक्ति इन्हीं पोषक तत्त्वों से मिलती है अत: इन्हें सुरक्षात्मक तत्त्व भी कहते हैं। ये विटामिन व खनिज लवण हरी पत्तेदार सब्जियों, अन्य सब्जियों, फलों, दूध, अण्डा, मांस व मछली में बहुतायत से पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त साबुत दालों व अनाज द्वारा भी ये पौष्टिक तत्त्व कुछ मात्रा में प्राप्त किये जा सकते हैं।

2. **मनोवैज्ञानिक कार्य–** भोजन न केवल हमारी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है अपितु मनोवैज्ञानिक संतुष्टि भी देता है। हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भोजन में पोषक तत्त्वों का पाया जाना पर्याप्त नहीं है अपितु भोजन का उचित मात्रा में होना, पसंद का होना, भली-भाँति पका होना एवं अच्छे वातावरण में परोसा जाना भी आवश्यक है ताकि वह न केवल भूख को शान्त कर सके बल्कि तृप्ति भी प्रदान कर सके। आपने अनुभव किया होगा कि आप जो भोजन प्रतिदिन ग्रहण करते हैं वही आपको मानसिक संतुष्टि देता है। उत्तरी भारत के गेहूँ खाने वाले व्यक्ति को दाल-भात व इडली-डोसा अधिक दिन तक पसन्द नहीं आयेगा। नये भोज्य पदार्थ परिवर्तन के लिये तो अच्छे लगते हैं किन्तु हम फिर वही भोजन खाना चाहते हैं जो हम प्राय: खाते हैं। भोजन हमें प्रतिदिन के परिश्रम एवं तनाव की जिन्दगी से राहत भी प्रदान करता है। घर में बने भोजन से जो संतुष्टि मिलती है वह किसी भी अच्छे-से-अच्छे होटल, रेस्तराँ आदि में खाने से प्राप्त नहीं होती है। क्योंकि घर में बने भोजन में प्रेम, स्नेह, मनोभाव आदि जुड़ा रहता है। घर के सभी सदस्यों की रुचि को ध्यान में रखकर भोजन तैयार किया जाता है। मनोवैज्ञानिक कार्य के अन्तर्गत भोजन के निम्नलिखित कार्य हैं–

(i) भोजन द्वारा संवेगों को प्रकट करना– भोजन द्वारा संवेगों को प्रकट किया जाता है जैसे प्रसन्न मन से अगर भोजन किया जाये तो ज्यादा खाया जायेगा जबकि खिन्न अथवा दु:खी मन से कम भोजन खाया जाता है। कुछ व्यक्ति तनाव को दूर करने के लिये अधिक भोजन का प्रयोग करते हैं। जबकि कुछ व्यक्ति बिलकुल ही कम खाने लगते हैं। इससे उनके तनावों पर प्रभाव पड़ता है और उन्हें तनाव से मुक्ति मिलती है।

(ii) सुरक्षा की भावना के रूप में– भोजन सुरक्षा की भावना का प्रतीक है। घर से बाहर, यात्रा या भ्रमण के दौरान अगर जाना-पहचाना भोजन मिलता है तो उससे सुरक्षा की अनुभूति होती है। माँ द्वारा खिलाया गया भोजन बच्चे को अधिक सुरक्षा प्रदान करता है, जबकि उसी बच्चे को वही भोजन अगर दूसरे व्यक्ति खिलाते हैं तो उसे वह सुख नहीं प्राप्त होता फलत: बच्चा ढंग से खाना नहीं खा पाता है।

(iii) भोजन का प्रयोग बल के रूप में– इतिहास साक्षी है कि भोजन का प्रयोग बल के रूप में किया जाता है। दुश्मनों को भोजन की प्राप्ति न होने देकर आसानी से लड़ाई जीती जाती है। व्यक्ति को समर्पण करवाने के लिये उन्हें कई दिनों तक भूखा रखा जाता है। इसी प्रकार किसी संस्था के विरुद्ध विद्रोह को दर्शाने के लिये कर्मचारियों द्वारा 'भूख हड़ताल' की जाती है। परिवार में भी बच्चों को सजा अथवा इनाम देने के लिये भोजन का प्रयोग किया जाता है। बच्चों के द्वारा अच्छा एवं प्रशंसनीय कार्य करने पर इनाम के तौर पर विशिष्ट व्यंजन तैयार किये जाते हैं जबकि सजा देने के लिये उसे 'सबसे प्रिय भोज्य पदार्थ' 'आइसक्रीम' आदि भोजन के रूप में नहीं दिये जाते हैं।

3. **सामाजिक कार्य एवं सांस्कृतिक महत्त्व–** भोजन सामाजिक सम्बन्ध बनाने एवं उन्हें मजबूत करने में भी सहयोग करता है इसलिये समाज में होने वाले विभिन्न समारोहों में विशिष्ट व्यंजन परोसे जाते हैं। भोजन आपसी मैत्री का प्रतीक है। समारोहों के अवसर पर जलपान, प्रसाद या भोज का आयोजन किया जाता है। जन्मदिन, शादी, वर्षगाँठ, मुण्डन, नौकरी में प्रोन्नति, पुत्र प्राप्ति के बाद, विवाह आदि अवसरों पर भोज का आयोजन किया जाता है व सुरुचिपूर्ण व्यंजन परोसे जाते हैं। विशेष तीज-त्योहारों पर विशिष्ट

एवं स्वादिष्ट व्यंजन तैयार किये जाते हैं।

(i) भोजन आर्थिक स्तर का प्रतीक है– प्रत्येक व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार भोजन का चुनाव एवं उसका आयोजन करता है। मध्यम वर्गीय व्यक्ति भोजन का आयोजन करते समय मौसम के फल-सब्जी एवं सामान्य भोजन का आयोजन करता है जबकि उच्च वर्गीय व्यक्ति भोजन में ऐसे खाद्य पदार्थों को सम्मिलित करते हैं जो बेमौसम के होते हैं तथा आसानी से उपलब्ध नहीं होते हैं। वे महँगे मेवे, फल एवं सब्जियों को अपने आहार में सम्मिलित करते हैं। इस प्रकार भोजन से उनके आर्थिक स्तर का ज्ञान होता है। अतिथि को परोसा गया भोजन हमारी प्रतिष्ठा व सम्पन्नता का प्रतीक होता है। अच्छा भोजन ग्रहण करना और इससे स्थूलता या मोटापा आना अभी भी कई स्थानों पर सम्पन्नता का प्रतीक माना जाता है।

(ii) भोजन दोस्ती एवं आतिथ्य का प्रतीक है– दोस्ती को मजबूत करने के लिये नवीन-नवीन व्यंजन दोस्तों के समक्ष परोसे जाते हैं। भोजन के द्वारा अतिथि का सत्कार किया जाता है, जैसे–घर में मेहमान के आने पर चाय, कॉफी, शरबत व अन्य पेय पदार्थ आदि परोसे जाते हैं। हमारे देश में अतिथि को देवता समतुल्य माना जाता है और उनकी अच्छी सेवा एवं आवभगत की जाती है तथा उनके समक्ष व्यंजन परोसे जाते हैं।

भोजन के आयोजन से कई बड़े-बड़े काम भी सरलता से चुटकियों में निकल जाते हैं। क्योंकि यह सभी जानते हैं कि 'दिल का रास्ता पेट से होकर जाता है।' इस प्रकार भोजन द्वारा व्यक्तिगत एवं सामाजिक कार्य सरलता से सम्पन्न हो जाते हैं।

भोज का आयोजन करते समय सबकी रुचि को ध्यान में रखकर भोज्य पदार्थों का चुनाव करना चाहिये। जलपान का आयोजन, सभा-सम्मेलन आदि के बीच में दिया जाने वाला भोजन, पेय पदार्थ आदि परस्पर आरामदायक एवं सौहार्द्रपूर्ण बनाने के लिये किया जाता है। ऐसे अवसरों पर परोसे जाने वाले व्यंजन रुचिकर, प्रसन्नता, तृप्ति एवं संतुष्टि देने वाले होने चाहिए तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभदायक हों एवं पूर्ण पोषक तत्त्व उसमें मौजूद हों।

भोजन हमारी संस्कृति का भी प्रतीक है जैसे–पंजाब में मक्की की रोटी और सरसों का साग खाया जाता है तो राजस्थान में दाल-बाटी और चूरमा पसन्द किया जाता है, दक्षिण में साम्भर-भात खाने की परम्परा है तो बिहार में मछली-चावल और मुम्बई में बड़ा-पाव। इस प्रकार कुछ विशेष पदार्थ प्रदेश या समाज विशेष की संस्कृति को भी प्रदर्शित करते हैं। हम सभी अपनी-अपनी परम्परा व संस्कृति के अनुसार ही भोजन का सेवन करना पसन्द करते हैं।

भोजन मात्र क्षुधापूर्ति का ही साधन नहीं अपितु यह मनुष्य की संस्कृति, रीति-रिवाज, भावनाओं को प्रदर्शित करने का साधन तथा आनन्द एवं सुरक्षा की अनुभूति को उजागर करने का माध्यम भी है। भोजन तनाव से मुक्ति देता है एवं सामाजिक सम्बन्धों को मजबूत बनाता है। उपरोक्त अवस्थाएँ व्यक्ति के अचेतन मन में भोजन के प्रति पसंद एवं नापसंद के रूप में प्रदर्शित होती हैं। किसी भी भोज्य पदार्थ के प्रति मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक प्रतिक्रिया की कोई वैज्ञानिक पृष्ठभूमि नहीं होती है अत: इन्हें बदलना कठिन होता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. जीवित रहने के लिए वायु, जल एवं भोजन तीन बुनियादी आवश्यकताएँ हैं।
2. जल को पौष्टिक तत्त्व के रूप में सम्मिलित किया गया है क्योंकि जल शरीर के तापक्रम संतुलन एवं नियमन के लिए आवश्यक है।
3. सभी प्रकार के अनाज जैसे–चावल, गेहूँ, मक्का, बाजरा, जौ, रागी आदि में कार्बोज की मात्रा सबसे अधिक है।
4. एक ग्राम वसा 9 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रदान करता है। घी, तेल, मूंगफली, वनस्पति घी आदि में वसा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहती है।
5. कोशिकाओं के निर्माण के लिए प्रोटीन आवश्यक होता है। इसलिए प्रोटीन को 'निर्माणात्मक तत्त्व' कहा गया है।
6. विटामिन शरीर को विभिन्न रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करते हैं। अत: विटामिन युक्त आहार लेना अत्यंत आवश्यक है।
7. हमारे शरीर का अधिकांश भाग (65 प्रतिशत) जल है।
8. भोजन में कार्बोज (60-70 प्रतिशत), वसा (20-30 प्रतिशत) तथा प्रोटीन (10-15 प्रतिशत) पर्याप्त मात्रा में लेना चाहिए।
9. घर के सभी सदस्यों की रुचि को ध्यान में रखते हुए भोजन तैयार करना चाहिए।
10. भोजन मात्र क्षुधापूर्ति का ही साधन नहीं है, अपितु यह मनुष्य की संस्कृति, रीति-रिवाज, भावनाओं को भी प्रदर्शित करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) ऊर्जा का मुख्य स्रोत है–

(अ) कार्बोज (ब) प्रोटीन

(स) विटामिन (द) जल

(ii) निम्न में से भोजन का शारीरिक कार्य नहीं है–

(अ) ऊर्जा प्रदान करना (ब) वृद्धि व विकास करना

(स) मानसिक शांति देना (द) सुरक्षात्मक व नियामक कार्य

(iii) निम्न में से निर्माणात्मक तत्त्व है–

(अ) कार्बोज (ब) प्रोटीन

(स) जल (द) वसा

(iv) शरीर में जल का भाग है–

(अ) 65 प्रतिशत (ब) 67 प्रतिशत

(स) 63 प्रतिशत (द) 64 प्रतिशत

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये–

(i) .....संवेगों को प्रकट करने का माध्यम है।

(ii) .....में शरीर को निर्माणात्मक भोजन तत्त्वों की ज्यादा आवश्यकता होती है।

(iii) .....शरीर की टूट-फूट की मरम्मत करता है।

(iv) विटामिन.....यौगिक है।

(v) .....व.....हरी पत्तेदार सब्जियाँ, फल, अण्डे व मांस में बहुतायत से पाये जाते हैं।

3. शरीर के लिए भोजन क्यों आवश्यक है?

4. भोजन के क्या कार्य है? संक्षेप में समझाइए।

5. विभिन्न भोज्य तत्त्वों के कार्य पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।

6. भोजन के सामाजिक कार्य व सांस्कृतिक महत्त्व को समझाइए।

उत्तरमाला :

1. (i) अ, (ii) स, (iii) ब, (iv) अ

2. (i) भोजन, (ii) वृद्धावस्था, (iii) प्रोटीन
(iv) कार्बनिक, (v) विटामिन , खनिज लवण

अध्याय 13

भोजन के पोषक तत्त्व–वृहत् मात्रिक पोषक तत्त्व

भोजन में कई प्रकार के पौष्टिक तत्त्व उपस्थित होते हैं। शरीर की विभिन्न जटिल रासायनिक प्रक्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए भोजन में पौष्टिक तत्त्वों की विद्यमानता आवश्यक होती है। सभी पोषक तत्त्व कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, विटामिन, रेशे एवं जल भोजन में पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए। पोषक तत्त्वों को दो भागों में वर्गीकृत करते हैं।

1. **वृहत् मात्रिक पोषक तत्त्व (Macro Nutrients)–** इनमें कार्बोहाइड्रेट एवं वसा ऊर्जा प्रदान करते हैं तथा प्रोटीन शारीरिक वृद्धि एवं विकास करता है। रेशे भोजन के पाचन में सहायता करते हैं एवं जल शरीर की सभी क्रियाओं के लिए आवश्यक होता है। इस वर्ग के पोषक तत्त्वों की हमें वृहत् मात्रा में आवश्यकता होती है।
2. **सूक्ष्म मात्रिक पोषक तत्त्व (Micro Nutrients)–** इस वर्ग के अन्तर्गत विटामिन जो विभिन्न प्रकार की जटिल रासायनिक प्रक्रियाओं में भाग लेते हैं तथा खनिज लवण जो शरीर के निर्माणात्मक कार्य करते हैं। इन पोषक तत्त्वों की हमें सूक्ष्म या कम मात्रा में आवश्यकता होती है।

कार्बोहाइड्रेट (कार्बोज)– कार्बोज हमारे भोजन का प्रमुख भाग है। एक साधारण व्यक्ति के भोजन में 55 प्रतिशत से 65 प्रतिशत तक ऊर्जा कार्बोज से मिलती है। यह ऊर्जा की पूर्ति का सबसे सस्ता और सरल स्रोत होता है। कार्बोज प्राप्ति का मुख्य स्रोत वनस्पति जगत है। हरी पत्तियों में उपस्थित क्लोरोफिल वर्णक जल एवं कार्बन डाइ ऑक्साइड लेकर प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में कार्बोहाइड्रेट्स का निर्माण करते हैं। ये कार्बोज शर्करा, स्टार्च, सेल्यूलोज एवं हेमी सेल्यूलोज के रूप में जमा रहता है।

क्लोरोफिल + $6CO_2$ + $6H_2O$ + सूर्य प्रकाश $\longrightarrow$

प्रकाश संश्लेषण की क्रिया

$\longrightarrow$ $C_6H_{12}O_6$ + $6O_2$

कार्बोज ऑक्सीजन

रासायनिक संगठन–कार्बोज की आधारीय रचनात्मक इकाई शर्करा है इसमें कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन तत्त्व पाए जाते हैं। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का अनुपात जल (H_2O) के समान ही होता है। इसीलिए इसका नाम कार्बोहाइड्रेट रखा गया है। इसका रासायनिक सूत्र $Cn(H_2O)n$ है।

वर्गीकरण–कार्बोज का वर्गीकरण आणविक संरचना के आधार पर निम्न प्रकार किया गया है।

कार्बोज

मोनोसेकेराइड्स	डाइसेकेराइड्स	पॉलीसेकेराइड्स
ग्लूकोज	सुक्रोज	स्टार्च
फ्रक्टोज	लैक्टोज	ग्लाइकोजन
गैलेक्टोज	माल्टोज	डैक्सट्रीन
		सेल्युलोज
		हेमी सेल्युलोज
		पेक्टिन

(1) **मोनोसेकेराइड्स (Monosaccharides)–** कार्बोज की सबसे सरलतम् इकाई दो शब्दों से मिलकर बनी होती है। मोनो+सैकराइड्स अर्थात् (एक शकर्रा)। पाचन क्रिया के उपरान्त सभी कार्बोज इसी शर्करा के सरलतम रूप में बदल जाते हैं। मोनोसैकेराइड्स में छः कार्बन अणु होते हैं। इसलिए इन्हें हेक्सोसेज (Hexoses) भी कहते हैं। इनमें तीन प्रमुख हैं–

1. **ग्लूकोज–** ग्लूकोज को डेक्सट्रोज (Dextrose) 'रक्त शर्करा' (Blood Sugar) या 'अंगूर शर्करा' (Grape sugar) भी कहते हैं। अधिकांश कार्बोहाइड्रेट शरीर में जाकर ग्लूकोज में परिवर्तित होकर ऊर्जा प्रदान करते हैं।
2. **फ्रक्टोज–** फ्रक्टोज को 'फल शर्करा' (Fruit sugar) भी कहते हैं। यह सबसे अधिक मीठी शर्करा होती है। इसका अवशोषण अतिशीघ्रता से होता है।
3. **गेलेक्टोज–** यह स्वतन्त्र विद्यमान ना होकर अन्य खाद्य पदार्थों के साथ मिश्रण के रूप में विद्यमान रहता है। दुग्ध शर्करा लेक्टोज एक अणु ग्लूकोज तथा एक अणु गैलेक्टोज से मिलकर बनी होती है। यह वनस्पति जगत में नहीं पाई जाती है।

(2) **डाइ सेकेराइड्स–** मोनो सेकेराइड के दो अणु जब आपस में घनीभूत क्रिया (Condensation Process) द्वारा मिलते हैं तो

डाइसेकेराइड्स का निर्माण होता है।

1. **सुक्रोज–** सुक्रोज का निर्माण गन्ने के रस या चुकन्दर से किया जाता है।

सुक्रोज $\xrightarrow[\text{सुक्रेज}]{}$ ग्लूकोज + फ्रक्टोज

2. **माल्टोज–** यह ग्लूकोज के दो अणुओं के मिलने से बनती है। यह माल्ट शर्करा के नाम से भी जानी जाती है तथा अनाजों के अंकुरण के दौरान बनती है।

माल्टोज $\xrightarrow[\text{माल्टेज}]{}$ ग्लूकोज + ग्लूकोज

3. **लेक्टोज–** इसे दुग्ध शर्करा के नाम से भी जाना जाता है। यह कम मीठी व अन्य शर्करा की अपेक्षाकृत पानी में कम घुलनशील है।

लैक्टोज $\xrightarrow[\text{लैक्टेज}]{}$ ग्लूकोज + गेलेक्टोज

(3) **पॉलीसेकेराइड्स–** ये जटिल कार्बोज पदार्थ होते हैं। यह जल में अत्यन्त कम घुलनशील होते हैं। इसी कारण यह पेड़-पौधों में संग्रहित रहने में समर्थ होते हैं। पोषण की दृष्टि से स्टार्च, डेक्स्ट्रीन, सेल्यूलोज, ग्लाइकोजन, पेक्टिन तथा हेमीसेल्यूलोज प्रमुख है।

1. **स्टार्च–** स्टार्च मुख्यत: एमाइलोज तथा एमाइलोपेक्टिन से मिलकर बना होता है। पेड़-पौधे स्टार्च प्राप्ति के मुख्य स्रोत हैं। गेहूँ, चावल, बाजरा इत्यादि अनाज, जड़ एवं तने वाली सब्जियाँ तथा सूखे बीज, मटर, सेव इत्यादि में पाया जाता है। कच्चे फलों में स्टार्च के रूप में कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है, जो पकने पर मिठास युक्त शर्करा (मोनो एवं डाइसेकेराइड्स) में परिवर्तित हो जाता है।
2. **ग्लाइकोजन–** ग्लाइकोजन को 'प्राणिज कार्बोज' या 'जान्तव स्टार्च' भी कहते हैं। यह जीवित मानव एवं जानवरों के यकृत व मांसपेशियों में पाया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर ग्लूकोज में परिवर्तित होकर ऊर्जा देता है।
3. **डेक्सट्रीन–** यह स्टार्च के आंशिक खंडन (Partial Hydrolyris) से प्राप्त किया जाता है। यह स्टार्च से कम जटिल होता है। यह कॉर्न शुगर, कॉर्न सिरप तथा शहद में पाया जाता है।

स्टार्च $\xrightarrow[\text{आंशिक खंडन}]{}$ डेक्स्ट्रीन $\xrightarrow[\text{माल्टेज}]{}$ माल्टोज $\xrightarrow{}$ ग्लूकोज

4. **सेल्यूलोज–** यह ग्लूकोज की कई इकाइयों से मिलकर बना होता है। यह पौधों में कोशिका भित्तियों में पाया जाता है। मानव शरीर में इसका पाचन नहीं होता है। परन्तु यह आँतों की मांसपेशियों को क्रियाशील रखने तथा क्रमाकुंचन गति बनाए रखने में सहायक होता है। आटे का चोकर, साबुत अनाज, छिलके, सलाद आदि में पर्याप्त मात्रा में उपस्थित होता है।
5. **हेमी-सेल्यूलोज–** मनुष्य में इसका भी पाचन नहीं होता है। परन्तु ये आँतों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होते हैं। दाल एवं अनाजों के छिलकों में बहुतायत से पाया जाता है।
6. **पेक्टिन–** यह पके फलों के छिलकों एवं कुछ जड़ वाली सब्जियों में पाया जाता है। इसका भी पाचन नहीं होता है। फल उद्योग में जेम व जेली बनाने में इसका महत्त्व है।

कार्य

1. शरीर को ऊर्जा प्रदान करना–कार्बोहाइड्रेट का मुख्य काम शरीर को ऊर्जा प्रदान करना है।

→ 1 ग्राम कार्बोज = 4.2 किलो कैलोरी ऊर्जा

ऊर्जा प्राप्ति का यह सबसे सस्ता स्रोत है। आवश्यकता से अधिक ग्लाइकोजन के रूप में यकृत तथा मांसपेशियों में संग्रहित हो जाता है जो आवश्यकता होने पर पुन: ग्लूकोज में परिवर्तित होकर ऊर्जा देता है।

2. प्रोटीन की बचत–प्रोटीन का मुख्य काम शरीर की वृद्धि व विकास का है। परन्तु कार्बोहाइड्रेट तथा वसा की अनुपस्थिति में प्रोटीन ही टूटकर ऊर्जा प्रदान करने लगता है। फलत: प्रोटीन का निर्माणात्मक कार्य प्रभावित हो जाता है।
3. विटामिन 'बी' समूह के संश्लेषण में–लेक्टोज विटामिन 'बी' समूह के संश्लेषण के लिए आवश्यक होती है। मनुष्य की छोटी आँत में उपस्थित जीवाणु विटामिन 'बी' समूह के संश्लेषण में सहायक होते हैं।
4. पाचन तन्त्र को स्वस्थ रखने में–सेल्यूलोज, हेमी सेल्यूलोज व पेक्टिन आदि जिनका मानव शरीर में पाचन नहीं हो पाता, परन्तु पेट को साफ रखने में एवं आँतों की क्रमाकुंचन गति को बढ़ाने में सहायक है। यह कब्ज से बचाता है।
5. कैल्शियम के अवशोषण में सहायक–दूध में उपस्थित लैक्टोज अन्य शर्कराओं की अपेक्षा कम घुलनशील होता है व बैक्टीरिया की उपस्थिति में लैक्टिक अम्ल में बदलकर आँत में अम्लीय माध्यम बढ़ाता है जो कैल्शियम के अवशोषण में मदद करता है।
6. अन्य कार्य–ग्लूकोज वसा के पूर्ण ऑक्सीकरण में सहायता करते हैं तथा वसा की उपयोगिता को बढ़ाते हैं। रेशेदार व जटिल कार्बोहाइड्रेट के सेवन से रक्त कोलेस्ट्रॉल व ग्लूकोज के स्तर में कमी आती है। जिससे हृदय रोग एवं मधुमेह की तीव्रता कम होती है। कार्बोज यकृत को स्वस्थ रखने में, नाड़ी संस्थान को स्वस्थ रखने में एवं विषाक्त पदार्थों को हानि रहित बनाने में सक्षम है।

स्रोत– सभी प्रकार के अनाज जैसे–गेहूँ, चावल, बाजरा, मक्का, कुछ प्रकार की दालें, शक्कर, गुड़ व शहद; जड़ वाली सब्जियाँ जैसे–आलू, शकरकन्द, अरबी व चुकन्दर; सूखे फल जैसे–किशमिश,

अंजीर, मुनक्का, खजूर, सेब, खोया, पनीर आदि कार्बोहाइड्रेट के स्रोत हैं।

कमी के प्रभाव– प्रतिदिन के आहार में कुल आवश्यक ऊर्जा का 55-66प्रतिशत भाग कार्बोहाइड्रेट से लेना चाहिए। कार्बोहाइड्रेट एवं वसा की अनुपस्थिति में प्रोटीन ऊर्जा प्रदान करने का काम करने लगता है। फलतः प्रोटीन का मुख्य काम गौण हो जाता है। फलतः शरीर की वृद्धि व विकास अवरुद्ध हो जाता है। अन्य प्रभाव–

1. वजन कम होना।
2. थकावट एवं स्वभाव में घबराहट एवं चिड़चिड़ापन।
3. शारीरिक क्रियाशीलता कम होना।
4. पाचन संस्थान सम्बन्धी विकार उत्पन्न होना।

अधिकता के प्रभाव–

भोजन में कार्बोहाइड्रेट युक्त भोज्य पदार्थों के अत्यधिक सेवन से अतिरिक्त ऊर्जा वसा के रूप में जमा हो जाती है। व्यक्ति को मोटापा हो जाता है। काम करने की क्षमता कम हो जाती है। मोटापा से हृदय रोग, मधुमेह, कीटोसिस आदि बीमारियाँ हो जाती हैं।

भोजन में रेशे का महत्त्व–

1. भोज्य पदार्थों में उपस्थित रेशों (सेल्यूलोज, हेमी सेल्यूलोज, पेक्टिन, लिग्निन) आदि का पाचन नहीं हो पाता। अतः ये पदार्थ ऊर्जा प्रदान नहीं करते हैं और भोज्य पदार्थों के ऊर्जा मान को कम करते हैं। रेशा युक्त भोज्य पदार्थ कम कैलोरी पर भी सन्तुष्टि प्रदान करते हैं।
2. भोजन में उपस्थित रेशे आँतों में क्रमाकुंचन की गति को बढ़ाते हैं तथा कब्ज की शिकायत को दूर करते हैं।
3. भोजन में उपस्थित रेशे विभिन्न पोषक तत्त्वों को अपने साथ बाँध लेते हैं तथा आँतों में उनके अवशोषण की गति को धीमा करते हैं, परिणामस्वरूप ये रक्त के ग्लूकोज व कोलेस्ट्रॉल स्तर को कम बनाए रखने में मदद करते हैं। इस प्रकार मधुमेह व हृदय रोगियों के लिये रेशा युक्त भोज्य पदार्थ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। ये भोजन से प्राप्त व पित्त से प्राप्त कोलेस्ट्रॉल को बाँधकर उसके अवशोषण की गति को धीमा कर देते हैं एवं आँत में विटामिनों का संश्लेषण करते हैं। इन जीवाणुओं द्वारा रेशे के अपघटन से बने उत्पाद आँत एवं श्लेष्मिक झिल्ली को स्वस्थ बनाए रखते हैं एवं आँतों के कैंसर से बचाते हैं।

स्रोत– ताजे फल व सब्जियाँ, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, साबुत अनाज व दालें, रेशे के अच्छे स्रोत हैं।

वसा– वसा ऊर्जा का सान्द्र रूप होते हैं। वसा वे कार्बनिक यौगिक हैं जो पानी में अघुलनशील किन्तु कार्बनिक घोलक जैसे क्लोरोफॉर्म, बेंजीन, ईथर आदि में सरलता से घुल जाते हैं। ये छूने पर चिकनाई का अनुभव देते हैं।

रासायनिक संगठन–वसा में भी मुख्य रूप से कार्बन, हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन उपस्थित होते हैं। वसा में ऑक्सीजन की मात्रा कार्बन तथा हाइड्रोजन की तुलना में काफी कम होती है। वसा को मुख्यतः 3 भागों में बाँटा गया है (तालिका सं. 13.1)।

वर्गीकरण–

तालिका सं. 13.1 : **वसा**

सरल	यौगिक	व्युत्पादित
वसा एवं तेल	सल्फोलिपिड	वसीय अम्ल
मोम	ग्लाइकोलिपिड	संतृप्त असंतृप्त
	फॉस्फोलिपिड	ग्लिसरॉल
	लाइपोप्रोटीन	स्टिरॉल
		कोलेस्टेरॉल
		अरगोस्टेरॉल

1. **साधारण वसा–** ये ग्लिसरॉल तथा वसीय अम्लों के आपस में मिलने से बनते हैं।

ग्लिसरॉल + वसीय अम्ल = साधारण वसा

1 अणु + 3 अणु

(i) **उदासीन वसा–** इसके अन्तर्गत वसा एवं तेल (Fat and oil) आते हैं। 20°C तापक्रम पर जो संघनित होकर ठोस बन जाते हैं, उन्हें वसा कहते हैं और जो 20°C ताप पर ठोस नहीं रहते हैं, बल्कि द्रव अवस्था में विद्यमान रहते हैं, उन्हें तेल कहते हैं। वसा एवं तेल का निर्माण ग्लिसरॉल एवं वसीय अम्लों के आपस में मिलने से होता है।

ग्लिसरॉल + वसीय अम्ल = वसा एवं तेल

(ii) **मोम**–ये अवसीय अम्लों तथा ग्लिसरॉल से उच्चतर स्तर के एल्कोहल से मिलकर बनते हैं।

2. **यौगिक वसा–** जब वसीय अम्लों एवं ग्लिसरॉल के साथ-साथ कुछ अन्य कार्बनिक यौगिक मिले रहते हैं तो उन्हें यौगिक लिपिड कहा जाता है।

वसा + अवसीय पदार्थ = यौगिक लिपिड

(ग्लिसरॉल + वसीय अम्ल)+(कार्बनिक या अकार्बनिक पदार्थ)

(i) वसा + कार्बोज + सल्फ्यूरिक अम्ल = सल्फोलिपिड

(ii) वसीय अम्ल + ग्लिसरॉल + कार्बोज = ग्लाइकोलिपिड

(iii) वसीय अम्ल + ग्लिसरॉल + फॉस्फोरिक अम्ल + नाइट्रोजन युक्त क्षार = फॉस्फोलिपिड

(iv) वसा + प्रोटीन = लाइपोप्रोटीन

3. **व्युत्पन्न वसा–** सरल एवं संयुक्त लिपिड के जल अपघटन से जो नए पदार्थ बनते हैं, उन्हें ही व्युत्पन्न वसा कहते हैं।

(i) **वसीय अम्ल**– वसा के जल अपघटन से वसीय अम्ल प्राप्त होते हैं। वसीय अम्लों को उनमें उपस्थित कार्बन परमाणुओं के साथ हाइड्रोजन अणुओं के जुड़ने की स्थिति के आधार पर संतृप्त एवं असंतृप्त वसीय अम्ल में वर्गीकृत किया जाता है।

- **संतृप्त वसीय अम्ल**–जिनमें कार्बन के सभी बंध (Bond) संतृप्त रहते हैं। इनमें ब्यूटाइरिक अम्ल, पामिटिक अम्ल इत्यादि आते हैं।
- **असंतृप्त वसीय अम्ल**– इन वसीय अम्लों में कार्बन तथा हाइड्रोजन अणुओं की संख्या में असमानता होती है। अत: हाइड्रोजन परमाणु कार्बन परमाणुओं से द्विबन्ध द्वारा जुड़े रहते हैं। इनमें फोलिक अम्ल, लिनोलिक अम्ल इत्यादि आते हैं।

(ii) **ग्लिसरॉल**–वसा के जल अपघटन से प्राप्त ग्लिसरॉल ऊर्जा उत्पादन का कार्य करता है।

(iii) **स्टिरॉल**–रासायनिक रूप से वसा से सम्बन्धित नहीं होते परन्तु इसमें वसीय अम्ल एवं एल्कोहल उपस्थित होते हैं। ये वे कार्बनिक यौगिक होते हैं, जो मिश्रित चक्रीय रचना के बने होते हैं।

प्राप्ति स्रोत के आधार पर स्टिरॉल्स को निम्न वर्गों में बाँटा गया है–

- **कॉलेस्ट्राल**– यह प्राणी जगत में पाया जाता है। यह जीवित मनुष्य एवं जानवरों के रक्त, यकृत, अधिवृक्क ग्रन्थियों, पीयूष ग्रन्थि, मस्तिष्क व परिधिय तन्त्रिकाओं में पाया जाता है। कोलेस्ट्रॉल अण्डे के पीले भाग, मक्खन, घी, पनीर, मांस, यकृत आदि में पाया जाता है।
- **अर्गोस्टेरॉल**– यह वसा खमीर (yeast) में सबसे अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह हमारे शरीर में त्वचा के नीचे भी रहता है जो सूर्य की पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति में विटामिन 'डी' में परिवर्तित हो जाता है।

कार्य–

1. **ऊर्जा प्रदान करना**– वसा ऊर्जा का संघनित रूप है। एक ग्राम वसा से 9 किलो कैलोरी ऊर्जा मिलती है। अत: यह कार्बोज व प्रोटीन की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक ऊर्जा देता है। उच्च सघनता तथा निम्न घुलनशीलता के कारण वसीय ऊतकों में संग्रहित रहती है तथा आवश्यकता पड़ने पर ऑक्सीकृत होकर ऊर्जा प्रदान करती है।
2. **शरीर के कोमल अंगों को सुरक्षा प्रदान करना**– वसा शरीर में त्वचा के नीचे वसीय ऊतकों के रूप में जमा रहती है एवं मोटी परत की तरह कार्य करती है। शरीर के सभी कोमल अंगों जैसे हृदय, यकृत, फेफड़े, गुर्दे, अग्न्याशय आदि के ऊपर वसा की दोहरी परत होती है। यह परत सुरक्षा कवच की तरह कार्य करती है।
3. **शरीर के तापक्रम को नियंत्रित रखना**– त्वचा के नीचे जो वसा की परत होती है, वह हमारे शरीर में ताप अवरोधक का काम करती है। वसा हमारे शरीर के तापक्रम को नियमित एवं नियंत्रित करने में सहायक है।
4. **वसा में घुलनशील विटामिन के स्रोत**– वसा में घुलनशील विटामिन 'ए', 'डी', 'ई' व 'के' की प्राप्ति का उत्तम साधन वसा है। इनका अवशोषण वसा की उपस्थिति में सहजता से हो जाता है।
5. **आवश्यक वसीय अम्लों की प्राप्ति**– कुछ आवश्यक वसीय अम्लों का शरीर में निर्माण नहीं होता है, किन्तु शरीर के स्वस्थ रहने व त्वचा की सुरक्षा के लिये ये आवश्यक होते हैं तथा वसायुक्त भोजन इनकी पूर्ति करता है।

अन्य कार्य– वसा का पाचन धीरे-धीरे होता है। इससे पेट खाली नहीं होता व भूख का आभास जल्दी नहीं होता। वस्तुत: वसा आमाशय में जठर रस का स्रवण कम कर देती है। वसा त्वचा को चिकना, कान्तिमय एवं स्वस्थ बनाये रखने में मददगार है। यह पाचन नली में स्नेहक के रूप में अर्थात् आमाशय एवं आँत मार्ग को चिकना बनाये रखने में सहयोग प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त शरीर के महत्त्वपूर्ण उत्पादों के निर्माण में सहायक है।

स्रोत–वसा एवं तेल प्राकृतिक रूप से, प्राणिज और वनस्पतिज, दोनों ही स्रोतों से प्राप्त होते हैं।

वानस्पतिक स्रोत–अनाज, दालें, मूंगफली, तिल, नारियल, सरसों, सोयाबीन व इनसे बने वनस्पति घी एवं सूखे मेवे जैसे–काजू, बादाम, मूंगफली, तिल आदि।

प्राणिज स्रोत– घी, मक्खन, क्रीम, दूध व दूध से बने पदार्थ, मछली का तेल, पशुओं की चर्बी आदि।

कमी के प्रभाव–आहार में पर्याप्त मात्रा में वसा का सेवन नहीं करने से निम्नांकित प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं–

1. शरीर को मिलने वाली ऊर्जा में कमी होना।
2. सामान्य वृद्धि रुक जाना।
3. त्वचा का सूखी, खुरदरी एवं चमकहीन हो जाना।
4. फ्राइनोडर्मा होना।
5. कोशिकाओं की कार्य क्षमता में कमी हो जाना।
6. आवश्यक वसीय अम्ल लिनोलीक, लिनोलिनिक व एरेकिडोनिक अम्ल एवं वसा विलेय विटामिन 'ए', 'डी', 'ई' व 'के' की कमी होना।

अधिकता के प्रभाव–

1. **मोटापा बढ़ना**–आवश्यकता से अधिक वसा भोजन में होने पर यह शरीर में त्वचा के नीचे जमने लगती है तथा शारीरिक भार में वृद्धि होती जाती है। इसे मोटापा कहते हैं।
2. **मधुमेह हो जाना**– वसा एवं कार्बोज के अत्यधिक सेवन से अत्यधिक मात्रा में ग्लूकोज का निर्माण होता है। रक्त में सीमित मात्रा में ही ग्लूकोज संग्रहित रह सकते हैं। ग्लूकोज मूत्र के साथ मिलकर मूत्र मार्ग से निष्कासित होने लगता है, जिसे 'मधुमेह' (Diabetes) कहते हैं।

3. **हृदय सम्बन्धी रोग**– वसा की अधिकता से रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ जाती है। सामान्य से अधिक कोलेस्ट्रॉल रक्त धमनियों की आन्तरिक दीवारों पर जमने लगते हैं। जिसे एथेरोस्क्लेरोसिस कहते हैं। फलतः रक्तचाप बढ़ जाता है और इसका सीधा असर हृदय पर पड़ता है जिससे हृदयाघात की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

प्रोटीन– जीवित रहने के लिए प्रोटीन अनिवार्य है अतः भोजन में उपस्थित तत्त्वों में से प्रोटीन महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए प्रोटीन को 'शरीर की आधारशिला' की संज्ञा दी गई है। प्रोटीन ग्रीक भाषा के शब्द 'प्रोटियस' से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है–'प्रथम स्थान ग्रहण करने वाला'। प्रोटीन की खोज सर्वप्रथम 1838ई. में डच निवासी मुल्डर (Mulder) नामक रसायनशास्त्री ने की थी। मनुष्य के शरीर का लगभग 1/5 भाग अर्थात् 20 प्रतिशत भार प्रोटीन का होता है।

रासायनिक संगठन–प्रोटीन एक कार्बनिक यौगिक है। इसमें कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन तत्त्व पाए जाते हैं। प्रोटीन में मुख्य भाग नाइट्रोजन होता है जिसका औसत 16प्रतिशत होता है। अमीनो अम्ल प्रोटीन की लघुतम इकाई है। कई अमीनो अम्ल मिलकर प्रोटीन का निर्माण करते हैं, इसलिए अमीनो अम्ल को प्रोटीन का आधारीय स्तम्भ कहते हैं।

अमीनो समूह ($-NH_2$) क्षारीय प्रकृति का होता है और प्रोटीन को क्षारीय गुण प्रदान करता है। कार्बोक्सिल समूह ($-COOH$) अम्लीय प्रकृति का होता है अतः उपरोक्त दोनों समूहों की उपस्थिति के कारण अमीनो अम्ल की प्रकृति उदासीन (Neutral) होती है।

अमीनो अम्ल का रासायनिक सूत्र निम्नानुसार है–

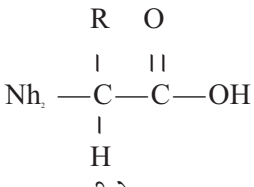

अमीनो अम्ल

सन् 1920 ई. में एमिल फिशर और हॉफ मिशर ने बताया कि अमीनो अम्ल पेप्टाइड बंध के द्वारा एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं।

प्रोटीन की गुणवत्ता उसमें उपस्थित अमीनो अम्ल के प्रकार, मात्रा और उनके आपस में जुड़ने के तरीके पर निर्भर करती है। अब तक कुल 22 प्रकार के अमीनो अम्ल का पता चला है जो हमारे भोजन एवं शरीर में पाये जाते हैं। इनमें से 10 अमीनो अम्ल ऐसे होते हैं जो हमारे शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। ये आवश्यक अमीनो अम्ल कहलाते हैं।

आवश्यक एवं अनावश्यक अमीनो अम्ल–आवश्यक अमीनो अम्ल को भोजन द्वारा लेना आवश्यक होता है, क्योंकि इनके बिना शरीर की वृद्धि एवं विकास अवरुद्ध हो जाता है। ये आवश्यक अमीनो अम्ल निम्नलिखित हैं–

1. हिस्टीडीन
2. ल्यूसिन
3. आइसोल्यूसिन
4. लाइसिन
5. आर्जिनिन
6. मिथियोनिन
7. थ्रीयोनिन
8. फिनाइल एलानिन
9. वैलिन
10. ट्रिप्टोफैन

अनावश्यक अमीनो अम्ल का निर्माण शरीर में नाइट्रोजन की उपस्थिति में स्वतः होता है। इन्हें भोजन के द्वारा लेना आवश्यक नहीं होता है। अनावश्यक अमीनो अम्ल निम्नांकित हैं–

1. एलानिन
2. हाइड्रोक्सीप्रोलीन
3. प्रोलीन
4. एस्पार्टिक अम्ल

प्रोटीन का वर्गीकरण– प्रोटीन को निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है (तालिका सं. 13.2)–

तालिका सं. 13.2 : **प्रोटीन**

गुणवत्ता के आधार पर	**प्राप्ति साधन के आधार पर**	**रासायनिक संरचना के आधार पर**
पूर्ण	वनस्पतिज	साधारण
आंशिक पूर्ण	प्राणिज	संयुग्मी
अपूर्ण		व्युत्पन्न

1. **गुणवत्ता के आधार पर**– प्रोटीन का वर्गीकरण उनमें उपस्थित अमीनो अम्ल के आधार पर किया है, क्योंकि किसी भी प्रोटीन की गुणवत्ता उसमें उपस्थित अमीनो अम्ल की मात्रा, प्रकार और गुण पर निर्भर करती है।

(i) **उत्तम या पूर्ण प्रोटीन**–उच्च जैविकीय मूल्य वाले इन प्रोटीन में सभी आवश्यक अम्ल पर्याप्त मात्रा एवं उचित अनुपात में विद्यमान रहते हैं। ये शरीर का समुचित विकास एवं वृद्धि करते हैं और निर्माणात्मक कार्य करते हैं। प्राणि जगत से दूध, दही, मांस, मछली, अण्डा, यकृत एवं वनस्पति जगत से सूखे मेवे, सोयाबीन आदि से उत्तम प्रकार के प्रोटीन की प्राप्ति होती है।

(ii) **मध्यम या आंशिक पूर्ण प्रोटीन**–इनमें कुछ आवश्यक अमीनो अम्ल उपस्थित रहते हैं, परन्तु एक या दो आवश्यक अमीनो अम्ल

की कमी रहती है। ये प्रोटीन जीवन को तो बनाए रखते हैं, परन्तु शारीरिक वृद्धि एवं विकास में बहुत अधिक उपयोगी नहीं होते हैं। ये प्रोटीन नये तन्तुओं और कोशिकाओं का निर्माण नहीं करते हैं। वनस्पति जगत से प्राप्त प्रोटीन मध्यम श्रेणी के या आंशिक पूर्ण प्रोटीन के अन्तर्गत ही आते हैं, जैसे दाल, अनाज, सोयाबीन आदि। अनाजों में लाइसिन तथा दालों में मिथियोनिन अमीनो अम्ल की कमी रहती है।

(iii) **अनुपयोगी या अपूर्ण प्रोटीन**–इस प्रकार के प्रोटीन में आवश्यक अमीनो अम्ल का पूर्णतया अभाव रहता है। इसलिए ऐसे प्रोटीन शारीरिक वृद्धि एवं विकास में बिल्कुल सहायक नहीं होते हैं। कन्द-मूल, साग-सब्जी, फल, मक्के के जीन आदि में अपूर्ण प्रोटीन ही रहता है। फलों में जिलेटिन अपूर्ण प्रोटीन ही है।

2. प्राप्ति के साधन के आधार पर–

(i) **वनस्पतिज प्रोटीन**–वनस्पति जगत से प्राप्त प्रोटीन मध्यम (आंशिक पूर्ण) या अनुपयोगी (अपूर्ण) प्रकार के होते हैं। मध्यम या आंशिक पूर्ण प्रोटीन के अन्तर्गत दाल, सोयाबीन, काजू, बादाम, मूंगफली, सूखे मेवे आदि आते हैं। वनस्पति-जगत से प्राप्त प्रोटीन को मिश्रित रूप में उपयोग कर पूर्ण बनाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर दालों में मिथियोनिन नामक अमीनो अम्ल अनुपस्थित होता है जबकि अनाजों में लाइसिन नहीं होता है। अत: अनाज व दाल, दोनों को मिलाकर उपयोग करने से पूर्ण प्रोटीन बन जाता है। इसी प्रकार अनाज या दालों को दूध व दूध से बने पदार्थों के साथ मिलाकर भी इन्हें पूर्ण प्रोटीन बना सकते हैं, जैसे दही बड़ा, खीर, खिचड़ी इत्यादि।

(ii) **प्राणिज प्रोटीन**–प्राणी जगत से प्राप्त प्रोटीन उत्तम कोटि के होते हैं। ये पूर्ण प्रोटीन होते हैं, क्योंकि इनमें सभी आवश्यक अमीनो अम्ल जो शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए नितान्त आवश्यक होते हैं, विद्यमान रहते हैं। उदाहरणार्थ–दूध, दही, खोया, अण्डा, मांस, मछली, यकृत, पनीर, छाछ इत्यादि।

– रासायनिक संरचना के आधार पर–प्रोटीन को भौतिक गुण एवं घुलनशीलता के आधार पर मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया गया है।

1. **साधारण प्रोटीन**–इस प्रकार के प्रोटीन केवल अमीनो अम्ल से बने होते हैं। जो जल-अपघटन के उपरान्त सरलतम इकाई अमीनो अम्ल प्रदान करते हैं। उदाहरणार्थ–

अण्डे के पीले भाग का प्रोटीन–एल्ब्यूमिन
गेहूँ का प्रोटीन–ग्लूटेनिन, ग्लाइडीन
दूध का प्रोटीन–लैक्ट एल्ब्यूमिन
मक्के का प्रोटीन–जीन

2. **संयुक्त प्रोटीन**– ये वे प्रोटीन होते हैं जिसमें साधारण प्रोटीन के अणु के साथ-साथ अन्य पोषक तत्त्व के अणु भी उपस्थित रहते हैं।

साधारण प्रोटीन + अन्य पोषक तत्त्व = संयुक्त प्रोटीन

पोषक तत्त्वों की उपस्थिति के आधार पर इन प्रोटीन का नामकरण भी किया गया है। जैसे–

ग्लाइकोप्रोटीन = साधारण प्रोटीन + कार्बोहाइड्रेट
न्यूक्लियोप्रोटीन = साधारण प्रोटीन + न्यूक्लिक अम्ल
लाइपोप्रोटीन = साधारण प्रोटीन + लिपिड
हीमोग्लोबिन = साधारण प्रोटीन (ग्लोबिन) + हीम (लौह तत्त्व)
फॉस्फोप्रोटीन = साधारण प्रोटीन + फॉस्फोरस

3. **व्युत्पन्न प्रोटीन**–भौतिक क्रियाओं, ताप, शारीरिक दबाव, पाचन क्रिया एवं जल-विश्लेषक अभिकरणों की क्रिया के द्वारा जब प्रोटीन का आंशिक विखंडन होता है, तब व्युत्पन्न प्रोटीन का निर्माण होता है। जैसे–

जमे हुए दूध में – कैसीन
जमे हुए रक्त में – फाइब्रिन
उबले अण्डों में – एल्ब्यूमिन
पेप्टोन्स, प्रोटिओज एवं पेप्टाइड्स – पाचक रसों की क्रिया द्वारा।

प्रोटीन के कार्य–

1. **शरीर की वृद्धि एवं विकास करना**–प्रोटीन शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक हैं। कोशिकाएँ प्रोटीन की ही बनी होती हैं। कोशिकाओं की कार्यक्षमता, जीवन एवं टूट-फूट की मरम्मत भी प्रोटीन ही करता है। शैशवावस्था, बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था तक प्रोटीन की आवश्यकता भी अधिक होती है। क्योंकि यह तीव्र विकास की अवस्थाएँ हैं। इसके उपरान्त मरम्मत कार्य के लिए वृद्धावस्था तक प्रोटीन की आवश्यकता होती है।

2. **ऊतकों के निर्माण कार्य एवं मरम्मत हेतु**–निरन्तर श्रम एवं विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के कारण ऊतकों में टूट-फूट होती रहती है। इनकी मरम्मत एवं पुनर्निर्माण आवश्यक होता है और यह कार्य प्रोटीन द्वारा ही सम्पन्न होता है। आंत्रमार्ग आवरण में, लाल रुधिर कणिकाओं के निर्माण हेतु एवं रक्त बहने पर थक्का जमने हेतु प्रोटीन की आवश्यकता होती है।

3. शरीर की विभिन्न क्रियाओं का नियमन करना–

1. प्रोटीन हमारे शरीर में अम्ल एवं क्षार को नियमित करता है, अत: बफर की तरह कार्य करता है।

2. **हार्मोन्स के निर्माण हेतु**–विभिन्न हार्मोन प्रोटीन अणुओं के ही बने होते हैं एवं हार्मोन्स विभिन्न गतिविधियों को नियमित एवं नियन्त्रित करते हैं। प्रोटीन के अभाव में हार्मोन का निर्माण एवं स्राव ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है।

3. **मांसपेशियों के संकुचन में**– मांसपेशियों के संकुचन एवं प्रसरण

के लिए मायोसिन और एक्टिन अनिवार्य होता है। मायोसिन एवं एक्टिन का निर्माण प्रोटीन द्वारा ही होता है।

4. **एन्जाइम का निर्माण करना–** प्रोटीन एन्जाइम का निर्माण करते हैं। एन्जाइम्स शरीर में विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न करते हैं। जैसे–भोजन का पाचन, ऑक्सीकरण, चयापचय आदि।
5. **विटामिन के निर्माण में–** कुछ अमीनो अम्ल शरीर में विटामिन के निर्माण में पूर्ववर्ती (Precursor) के रूप में भाग लेते हैं। जैसे (बी समूह के कोलीन के लिए मिथियोनिन, नियासीन के लिए ट्रिप्टोफैन) इत्यादि।
6. **सामान्य दृष्टि में सहायक–** आँखों के रैटिना में शकुं (Cones) एवं दंड (Rods) पाए जाते हैं जो प्रोटीन की उपस्थिति में विशिष्ट पदार्थों का निर्माण करते हैं एवं रंगों को मंद रोशनी में देखने में मदद करता है।
7. **ऊर्जा प्रदान करने में–** कार्बोहाइड्रेट एवं वसा की अनुपस्थिति में प्रोटीन ऊर्जा भी प्रदान करने का कार्य करते हैं। एक ग्राम प्रोटीन से 4 किलो कैलोरी ऊर्जा की प्राप्ति होती है।
8. **जल-संतुलन बनाए रखने में–** प्लाज्मा में उपस्थित प्रोटीन हमारे शरीर में परासरण दाब (Osmotic pressure) पैदा करता है जिसकी वजह से शरीर में जल-संतुलन बना रहता है।

प्रोटीन की कमी के प्रभाव–

प्रोटीन की कमी के कारण भोजन में प्रोटीन युक्त भोज्य पदार्थों की कमी होना अथवा लंबे अंतराल तक अपूर्ण या आंशिक रूप से पूर्ण प्रोटीन युक्त भोज्य पदार्थों का सेवन करना है। आहार में जब पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन नहीं होता है, तब शारीरिक वृद्धि एवं विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है। प्रोटीन की कमी का प्रभाव प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण के नाम से जाना जाता है, क्योंकि यह प्रोटीन और ऊर्जा, दोनों की कमी से होता है। बच्चों में प्रोटीन की कमी से निम्न रोग हो सकते हैं–(i) क्वाशियोरकर, (ii) सूखा रोग या मेरास्मस, (iii) मैरास्मिक क्वाशियोरकर

(i) **क्वाशियोरकर (Kwashiorkar)–** यह सामान्यत: 1-4 साल के बच्चों में होता है। यह रोग प्रोटीन की कमी के कारण होता है। यह रोग उन बच्चों में होता है जिनके भोजन में कार्बोहाइड्रेट तो पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहता है, परन्तु प्रोटीन नहीं। 'क्वाशियोरकर' का पता 1935 में सिसली विलियम ने लगाया। यह एक अफ्रीकन शब्द है जिसका अर्थ है–'वह रोग जो पहले बच्चे को दूसरे बच्चे के जन्म के बाद होता है। इसका कारण स्तनपान छुड़ाने के बाद बच्चों को उपयुक्त पूरक दुग्ध आहार का नहीं मिलना है।

1. वृद्धि में रुकावट (Growth failure)–बच्चों का वृद्धि एवं विकास, दोनों अवरुद्ध हो जाते हैं। तथा लम्बाई एवं वजन कम हो जाता हैं।
2. सूजन (Oedema)–शरीर में प्रोटीन की कमी से सूजन हो जाती है। शरीर की सभी कोशिकाओं और ऊतकों में पानी भर जाता है। सूजन के कारण बच्चा तन्दुरुस्त दिखाई देता है।
3. मांसपेशियाँ नष्ट होने लगती हैं। बाँहें, हाथ एवं पैर पतले एवं कमजोर हो जाते हैं।
4. स्वभाव में उदासीनता एवं चिड़चिड़ापन आ जाता है। बच्चा आलसी, सुस्त एवं थका-थका महसूस करता है।
5. प्रोटीन की कमी से हीमोग्लोबिन का निर्माण नहीं हो पाता है फलत: रक्तहीनता रोग हो जाता है।
6. मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।
7. रोग प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास होने से अन्य बीमारियाँ जल्दी घेर लेती हैं।

(ii) **सूखा रोग या मैरास्मस** (चित्र 13.1)– यह रोग शिशुओं में (6-12 महीने) में स्तनपान शीघ्र छुड़ाने की वजह से होता है। इसमें प्रोटीन के साथ-साथ ऊर्जा की भी कमी पाई जाती है। सूखा रोग (Marasmus) ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है 'व्यर्थ होना' (To waste) मैरास्मस का सबसे बड़ा कारण है प्रारम्भिक अवस्था में जल्दी ही माँ का दूध छुड़ा देना तथा उचित एवं पौष्टिक आहार नहीं दिया जाना। सूखा रोग के लक्षण निम्न हैं–

चित्र 13.1 : **मैरास्मस**

1. शारीरिक वृद्धि व विकास रुक जाना, लम्बाई में कमी, बोनापन व शारीरिक भार में गिरावट।
2. सूजन एवं त्वचा के नीचे वसा नहीं होती।
3. आंत्र मार्ग में संक्रमण के कारण बार-बार निर्जलीकरण हो जाता है।
4. त्वचा रूखी-सूखी, बेजान व कान्तिहीन हो जाती है।
5. मांसपेशियों का अत्यधिक क्षय।
6. हाथ-पैर पतले एवं कमजोर दिखते हैं।

(iii) मैरास्मिक क्वाशियोरकर (Marasmic Kwashiorkor)

अविकसित एवं विकासशील देशों में, जहाँ प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण अधिक है, वहाँ के बालकों में मेरास्मस एवं क्वाशियोरकॉर, दोनों के लक्षण एक साथ दिखाई देते हैं (चित्र 13.2)।

बालक एक प्रकार के प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण की स्थिति से दूसरी स्थिति में स्थानान्तरित हो सकता है। समुचित उपचार, पौष्टिक आहार से क्वाशियोरकर से पीड़ित बालकों का स्वास्थ्य जल्दी सुधर जाता है। परन्तु मैरास्मस से पीड़ित बालकों के स्वास्थ्य में सुधार थोड़ा धीरे आता है।

गर्भवती स्त्री में प्रोटीन की कमी से भ्रूण का विकास उचित तरह से नहीं हो पाता है। बालक दुबला-पतला तथा कमजोर पैदा होता है।

चित्र 13.2 : **क्वाशियोरकर**

स्तनपान कराने वाली धात्री माता में दूध की मात्रा कम हो जाती है। वयस्क में प्रोटीन की कमी से शरीर के भार की कमी, रक्ताल्पता, रोग प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास तथा बीमारियों से ग्रस्त होना आदि लक्षण पाए जाते हैं।

ऊर्जा– कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा मुख्य ऊर्जा उत्पादक भोज्य पदार्थ हैं इनके ऑक्सीकरण से ऊर्जा प्राप्त होती है। यह ऊर्जा शरीर के विभिन्न कार्य एवं गतिविधियों को सम्पन्न करने के लिए उपयोग में ली जाती है। जैसे दौड़ना, चलना, झाड़ू लगाना, भोजन पकाना आदि ऐच्छिक क्रियाएँ तथा साँस लेना, रक्त परिसंचरण, हृदय की धड़कन आदि अनैच्छिक क्रियाएँ। ऊर्जा को मापने की इकाई किलो कैलोरी है।

परिभाषानुसार एक किलोग्राम पानी का तापक्रम 1°C बढ़ाने के लिए जितनी उष्मा का प्रयोग होता है उस ऊर्जा की मात्रा को ही एक किलो कैलोरी कहते हैं।

एक ग्राम कार्बोहाइड्रेट एवं एक ग्राम प्रोटीन के ऑक्सीकरण से 4 किलो कैलोरी तथा 1 ग्राम वसा से 9 किलो कैलोरी ऊर्जा की प्राप्ति होती है।

भोजन में ऊर्जा की अधिकता से वजन बढ़ना, मोटापा तथा कई बीमारियाँ मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदयरोग इत्यादि हो सकती हैं। व्यक्ति की कार्य क्षमता प्रभावित होती है।

शरीर में निरन्तर कैलोरी की कमी से वजन कम हो जाना, क्रियाशीलता में कमी होना तथा शारीरिक वृद्धि पर प्रभाव इत्यादि हो सकते हैं।

जल– जल जीवन के लिए बहुत आवश्यक है। ऑक्सीजन के बाद मानव की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता जल है। जल H_2 एवं O_2 (हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन) के रासायनिक संयोग से बनता है। इसका सूत्र H_2O है। यह एक अकार्बनिक यौगिक है।

शारीरिक वितरण–हमारे कुल शरीर के भार का 60-70 प्रतिशत भाग जल होता है। ऊतकों में पानी की मात्रा 60-70 प्रतिशत तक होती है। अस्थियों एवं दाँतों में भी 20 प्रतिशत तक जल विद्यमान रहता (तालिका सं. 13.3) है।

तालिका सं. 13.3 : **शरीर में जल का वितरण : एक नजर में**

	शरीर भार का प्रतिशत (% of Body weight)	**कुल जल की मात्रा (Total water present)**
कुल शरीर भार	70 किग्रा	–
कुल जल की मात्रा	70	49 किग्रा.
(1) अंत:कोषीय जल	50	35 किग्रा
(2) बाह्यकोषीय जल	20	14 किग्रा
(अ) ऊतक तरल	9	6 लि
(ब) लसिका व लसिका वाहिनी	7	5 लि
(स) रक्तवाहिनी	4	3 लि

शरीर में जल सभी कोशिकाओं में विद्यमान रहता है, परन्तु उनका प्रतिशत शरीर के विभिन्न अंगों में भिन्न-भिन्न होता है। शरीर में जल वितरण को मुख्यत: दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **बाह्यकोषीय तरल (Extra cellular fluid)**– इसमें जल की मात्रा 20 प्रतिशत होती है।
2. **अंत:कोषीय तरल (Intra cellular fluid)**– इसमें जल की मात्रा 50 प्रतिशत तक होती है।
3. **ऊतक द्रव्य (Interstitial fluid)**– इसमें 9 प्रतिशत, लसिका तथा लसिका वाहिनियों में 7 प्रतिशत तथा रक्तवाहिनी में 4 प्रतिशत जल उपस्थित होता है।

शिशुओं के शरीर में 70-75 प्रतिशत तक पानी होता है। मोटे व्यक्तियों की अपेक्षा दुबले-पतले व्यक्तियों में पानी की मात्रा अधिक होती है। पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा जल अधिक होता है। उम्र बढ़ने के साथ ही शरीर में पानी की मात्रा घटती जाती है तथा वसा का संग्रह होता

जाता है।

वे अंग जो पाचन, अवशोषण एवं चयापचय की दृष्टि से अधिक क्रियाशील होते हैं, जैसे–यकृत, मस्तिष्क, आमाशय, छोटी आंत आदि में अन्य ऊतकों की अपेक्षा जल की मात्रा अधिक होती है। इसके ठीक विपरीत अस्थियाँ एवं दाँतों में जो कि चपापचय की दृष्टि से निष्क्रिय होते हैं, जलांश की मात्रा भी न्यून (20 प्रतिशत) होती है।

जल के कार्य–

1. **घोलक के रूप में–** जल एक महत्त्वपूर्ण प्रकार का घोलक होता है। जल के माध्यम से पोषक तत्त्व शरीर के सभी कोषों तक पहुँचाये जाते हैं तथा पाचन के लिए नितान्त आवश्यक है। यह भोजन के अवशोषण तथा चयापचय में भी मदद करता है।
2. **शारीरिक तापमान को नियंत्रित रखने में–** जल का एक विशिष्ट ताप (Specific heat) होता है। यही कारण है कि जल शरीर के तापमान को स्थिर रखने में सक्षम एवं समर्थ है। जल शरीर की भीतरी गर्मी को पूरे शरीर में वितरित कर देता है तथा शारीरिक तापमान में वृद्धि होने पर ऊष्मा को पसीने के रूप में शरीर से बाहर निष्कासित कर देता है जिससे शरीर का तापमान स्थिर रहता है।
3. **स्नेहक के रूप में–** जल आन्तरिक अंगों, जोड़ों तथा अंगों के मध्य स्नेहक की भाँति कार्य करता है। यह कोषों को नम बनाए रखता है। मुँह में लार (Saliva) की वजह से भोजन निगलने में आसानी होती है। श्वसन संस्थान, पाचन संस्थान, उत्सर्जन संस्थान इत्यादि में जल श्लेष्मा (Mucous) में उपस्थित रहता है। जोड़ों के मध्य में जल की उपस्थिति के कारण रगड़ नहीं लगती है। यही कारण है कि वृद्धावस्था में जोड़ों में उपस्थित जल की कमी होने से जोड़ों में दर्द रहता है।
4. **कोषों के संरचनात्मक घटक के रूप में–** मानव शरीर की सबसे लघुतम इकाई कोशिका होती है। यह नवीन कोषों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
5. **निर्माणात्मक कार्य के रूप में–** शरीर के प्रत्येक कोषों, तन्तुओं और ऊतकों में जल उपस्थित रहता है। भले ही कुछ तन्तुओं में जल की मात्रा अधिक रहती है तो कुछ में कम। जहाँ चयापचय की क्रियाएँ तेज होती हैं तथा जो अंग क्रियाशील अधिक होते हैं उनमें अधिक।
6. **कोमल अंगों की सुरक्षा करने में–** जल हमारे शरीर के नाजुक आन्तरिक अंगों के चारों ओर होता है तथा उसे बाह्य आघातों से बचाता है। जैसे मस्तिष्क के चारों ओर प्रमस्तिष्क मेरु द्रव (Cerebres final fluid).
7. **निरुपयोगी पदार्थों के निष्कासन में–** शरीर में उपस्थित विभिन्न प्रकार के व्यर्थ, वर्ज्य एवं निरुपयोगी पदार्थों को निकालना आवश्यक होता है अन्यथा ये शरीर में विष उत्पन्न कर देते हैं। जल व्यर्थ पदार्थों को शरीर से पसीने, मल-मूत्र आदि के माध्यम से बाहर निकालता है तथा व्यर्थ पदार्थों को घोलकर उत्सर्जन करता है।
8. **पोषक पदार्थों के हस्तान्तरण में–** जल सभी पौष्टिक तत्त्वों को अपने में घुला लेता है। घुले हुए पौष्टिक तत्त्व रक्त में आकर मिल जाते हैं तथा रक्त वाहिनियों तथा लसिका वाहिनियों के माध्यम से शरीर के सभी कोषों तक पहुँचते हैं।

स्रोत–शरीर को जल मुख्यत: तीन स्रोतों से प्राप्त होता है–

1. **तरल भोज्य पदार्थों से–** चाय, दूध, छाछ, सब्जियों के सूप, चावल का पानी, लस्सी, शर्बत, दाल का पानी, नारियल का पानी आदि।
2. **ठोस भोज्य पदार्थों से–** दूध, दही, पनीर, खोया, अनाज, दाल आदि।
3. **ऑक्सीकरण की क्रिया से–** कार्बोहाइड्रेट्स, वसा एवं प्रोटीन के ऑक्सीकरण से तथा चयापचय द्वारा।

जल सन्तुलन– शरीर में जल का सन्तुलन निरन्तर बना रहता है अर्थात् शरीर द्वारा जितना जल ग्रहण किया जाता है, उतना ही जल का उत्सर्जन शरीर द्वारा होता है। यह स्थिति आदर्श स्थिति कहलाती (तालिका सं. 13.4) है।

जल संतुलन = जल ग्रहण की मात्रा = जल उत्सर्जन की मात्रा

Water balance = Water Intake = Water loss

शरीर में जल की अधिकता या कमी, दोनों ही स्थितियाँ स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक होती हैं।

जल सन्तुलन मुख्यत: दो प्रकार का होता है।

1. धनात्मक जल सन्तुलन (Positive water balance)
2. ऋणात्मक जल सन्तुलन (Negative water balance)

तालिका सं. 13.4 **: शरीर में जल का सन्तुलन : एक नजर में**

शरीर से जल का अधिक उत्सर्जन

निर्जलीकरण	प्यास लगना
↓	↓
रक्त की तरलता कम होना	जल ग्रहण करना
↓	↓
परासरण दाब में वृद्धि होना	रक्त की तरलता बढ़ना
↓	↓
अधश्चेतक में परासरणग्राही कोशों का उत्तेजित होना	परासरण दाब में कमी
↓	↓
ADH का स्रावण बढ़ना	अधश्चेतक में परासरणग्राही कोशों का निरुत्साहित होना
↓	↓

मूत्रलता (Diyresis) का बन्द होना	ADH हार्मोन का स्त्रावण बंद होना
↓	↓
गुर्दों की नलिकाओं में अवशोषण क्षमता बढ़ना	बार-बार मूत्र त्यागने हेतु जाना
↓	↓
गुर्दों द्वारा जल का पुनर्वशोषण बढ़ना	मूत्र का अधिक निष्कासन

1. **धनात्मक जल सन्तुलन–** यदि शरीर द्वारा ग्रहण की गई जल की मात्रा शरीर द्वारा निष्कासित जल की मात्रा से अधिक होती है तो उसे 'धनात्मक जल सन्तुलन' कहते हैं।

इस स्थिति में शरीर के ऊतकों एवं तन्तुओं में जल भर जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जब रक्त में प्रोटीन की कमी हो जाती है तथा परासरण दाब (Osmotic Pressure) सामान्य नहीं रह पाता है तब ऊतकों में जल भरने लगता है। इस दौरान बाह्य कोषीय द्रव (Extra-cellular Fluid) की मात्रा भी अधिक हो जाती है।

धनात्मक जल सन्तुलन से शरीर में सोडियम की अधिकता, प्रोटीन की कमी, सूजन (Oedema) तथा यकृत सम्बन्धी रोग हो जाते हैं।

धनात्मक जल सन्तुलन = शरीर द्वारा ग्रहण जल > शरीर द्वारा उत्सर्जित जल

2. **ऋणात्मक जल सन्तुलन–** जब शरीर द्वारा ग्रहण किये गये जल की मात्रा शरीर द्वारा निष्कासित मात्रा से कम होती है तो इसे 'ऋणात्मक जल सन्तुलन' कहते हैं।

ऋणात्मक जल सन्तुलन = शरीर द्वारा ग्रहण जल < शरीर द्वारा उत्सर्जित जल

यदि शरीर से 10 प्रतिशत तक जल अधिक निकल जाता है तो भोजन का अवशोषण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। इस स्थिति में शरीर का तापमान बढ़ जाता है। प्लाज्मा (Plasma) तथा बाह्यकोषीय तरलों की मात्रा कम हो जाती है।

यदि शरीर में 15-20 प्रतिशत तक जल की कमी हो जाती है तो व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। क्योंकि इस दशा में, बाह्यकोशीय रस सघन हो जाता है। इसके कारण यह रसाकर्षण (Osmosis) क्रिया के द्वारा अंत:कोशीय द्रवों को खींचता है जिससे अंत:कोशीय द्रवों की मात्रा में काफी कमी हो जाती है। इसे अंत:कोशीय निर्जलीकरण कहते हैं।

निम्न तालिका सं. 13.5 में एक प्रौढ़ व्यक्ति के शरीर में जल सन्तुलन को दर्शाने का प्रयास किया गया है–

तालिका सं. 13.5 : **एक प्रौढ़ व्यक्ति के शरीर में जल संतुलन**

शरीर द्वारा जल ग्रहण	समशीतोष्ण जलवायु	गर्म जलवायु
1. पीने के द्वारा प्राप्त जल	1500 मिली	2000-5000 मिली
2. भोजन के द्वारा प्राप्त जल	1000 मिली	1000-2000 मिली
3. भोजन का ऑक्सीकरण से (प्रोटीन, वसा, कार्बोज के चयापचय से)	300 मिली	300 मिली
कुल जल की मात्रा	2800 मिली	3300-7300 मिली

शरीर द्वारा जल निष्कासन	समशीतोष्ण जलवायु	गर्म जलवायु
1. गुर्दों से मूत्र द्वारा	1500 मिली	1000-1500 मिली
2. त्वचा द्वारा (पसीने से)	800 मिली	1800-5200 मिली
3. फेफड़ों से (जलवाष्प रूप में)	400 मिली	400 मिली
4. मल से	100 मिली	100-200 मिली
कुल जल की मात्रा	2800 मिली	3300-7300 मिली

अत: शरीर के उत्तम स्वास्थ्य के लिए जल संतुलन का होना आवश्यक है।

शरीर में जल की कमी का प्रभाव

शरीर से जल का उत्सर्जन निरन्तर होता है। मल, मूत्र, पसीने, फेफड़े आदि के माध्यम से जल का उत्सर्जन होता है। अत: यह अत्यावश्यक है कि जल की उचित मात्रा प्रतिदिन आवश्यक रूप से ग्रहण की जाए ताकि शरीर में पानी की कमी नहीं रहने पाये। शरीर में पानी की कमी से निम्नांकित स्थिति उत्पन्न हो जाती है–

1. पाचक रसों में असन्तुलन होना–पाचन सम्बन्धी गड़बड़ियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।
2. शरीर से यूरिक अम्ल, यूरिया, विष, टॉक्सिन आदि का पूर्णत: निष्कासन नहीं हो पाता है। इससे शरीर में विकार एवं रोग उत्पन्न हो जाते हैं।
3. व्यक्ति अशान्त एवं चिड़चिड़ा हो जाता है।
4. भूख कम लगती है।
5. शारीरिक वजन कम हो जाता है।

6. शारीरिक वृद्धि प्रभावित होती है।
7. शरीर के तापमान में वृद्धि हो जाती है।
8. वृक्क की क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है।
9. रक्त की तरलता कम हो जाती है, अत: परिसंचरण में बाधा उत्पन्न होती है।

यदि शरीर में 10 प्रतिशत तक जल की कमी हो जाती है तो निर्जलीकरण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

निर्जलीकरण की स्थिति में शरीर में पानी की आपूर्ति हेतु व्यक्ति को नीबू पानी, नमक व शक्कर का घोल दिया जाना चाहिए। घर में उपलब्ध सभी प्रकार के तरल पदार्थ, जैसे–दही, छाछ, दाल का पानी, चावल का मांड, फलों का रस, सब्जियों का सूप, नारियल का पानी, फटे दूध का पानी (Whey Water) आदि दिया जाना चाहिए।

आजकल सभी स्वास्थ्य केन्द्रों, अस्पतालों एवं मातृ शिशु कल्याण केन्द्रों पर ओ.आर.एस. का पैकेट (Oral Rchydration Solution, ORS) नि:शुल्क मिलता है। अत: इसका घोल बनाकर दिया जाना चाहिए।

यदि व्यक्ति मुँह द्वारा जल लेने की स्थिति में नहीं है तो सेलाइन वाटर को उसके शरीर में रक्तवाहिनियों के माध्यम से पहुँचाया जाना चाहिए।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि यदि शरीर में पानी की अल्प कमी है तो 'निर्जलीकरण' के स्थान पर 'पानी की आपूर्ति में कमी' का प्रयोग करना उचित है। निर्जलीकरण का अर्थ है–शरीर से अधिक मात्रा में पानी का निकल जाना।'

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. भोजन में कई प्रकार के पौष्टिक तत्त्व उपस्थित होते हैं। जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज लवण एवं जल भोजन में पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए।
2. कार्बोज हमारे भोजन का प्रमुख भाग है। कार्बोज प्राप्ति के मुख्य स्रोत वनस्पति जगत है।
3. 1 ग्राम कार्बोज 4.2 किलो कैलोरी ऊर्जा देता है।
4. प्रोटीन अमीनो अम्ल से बने हैं। अमीनो अम्लों की उपस्थिति के आधार पर इन्हें पूर्ण, आंशिक एवं अपूर्ण प्रोटीन कहते हैं।
5. प्राणिज भोज्य पदार्थ जैसे दूध, अंडा, मांस, मछली आदि पूर्ण प्रोटीन के स्रोत हैं। तथा शरीर वृद्धि एवं टूट–फूट की मरम्मत का कार्य करते हैं।
6. आहार में प्रोटीन व ऊर्जा की कमी से बच्चों में क्वाशियोरकर, सूखा रोग व मरास्मिक क्वाशियोरकर हो जाते हैं।
7. कार्बोहाइड्रेट जैसे स्टार्च व शर्करा मुख्यत: ऊर्जा देने के कार्य करते हैं जबकि रेशे आँतों में क्रमानुकुंचन की गति के लिए आवश्यक हैं।
8. जल शरीर के विभिन्न जैविक कार्यों के लिए आवश्यक है। इसके बिना हम कुछ दिनों से अधिक जीवित नहीं रह सकते हैं।
9. जल की कमी के कारण निर्जलीकरण हो जाता है, ऐसी स्थिति में रोगी को ओर.आर.एस. व शिकंजी, छाछ आदि बराबर देते रहना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें।

(i) मोनोसैकेराइड है?

(अ) सुक्रोज (ब) माल्टोज

(स) फ्रक्टोज (द) उपरोक्त सभी

(ii) प्राणिज कार्बोज (जान्तव स्टार्च) किसे कहते हैं?

(अ) सैल्यूलोज (ब) पेक्टिन

(स) ग्लाइकोजन (द) डेक्सट्रीन

(iii) आवश्यक अमीनो अम्ल है?

(अ) हिस्टीडीन (ब) ल्युसिन

(स) लाइसिन (द) उपरोक्त सभी

(iv) दूध में पाया जाने वाला प्रोटीन है।

(अ) फाइब्रिन (ब) केसीन

(स) एल्ब्यूमिन (द) जीन

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

(i) दूध का प्रोटीन.....है।

(ii) वसा.....में घुलनशील होती है।

(iii) जल का रासायनिक सूत्र.....है।

(iv) जल की कुल मात्रा शरीर में.....तक पायी जाती है।

(v) शारीरिक वृद्धि एवं विकास में.....सहायक है।

(vi) प्रोटीन की कमी से.....रोग हो जाता है।

3. आणविक संरचना के आधार पर कार्बोज का वर्गीकरण कीजिए?
4. प्रोटीन का वर्गीकरण संक्षिप्त में समझाइए?
5. सामान्य जल और इलेक्ट्रोलाइट संतुलन बनाए रखने में हार्मोन की भूमिका की व्याख्या कीजिए?
6. जल और रेशों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए?

उत्तरमाला

1. (i) स (ii) (स) (iii) (द) (iv) (ब)
2. (i) लेक्टोएल्ब्यूमिन (ii) बेंजीन, ईथर
   (iii) H_2O (iv) 70 प्रतिशत (v) प्रोटीन
   (vi) क्वाशियोरकर, सूखा रोग और मेरास्मिक क्वाशियोरकर

अध्याय 14

भोजन के पोषक तत्त्व-सूक्ष्म मात्रिक

विटामिन– ये सक्रिय कार्बनिक तत्त्व होते हैं, जो शरीर के उत्तम स्वास्थ्य के लिए अत्यावश्यक होते हैं। यद्यपि शरीर में इनकी अत्यल्प मात्रा में ही आवश्यकता होती है, फिर भी ये शरीर की वृद्धि, विकास, तन्दुरुस्ती, चुस्ती एवं फुर्तीला बनाये रखने के लिए निहायत जरूरी होते हैं।

इतिहास– 19वीं सदी के पूर्व तक वैज्ञानिकों को पौष्टिक तत्त्वों में केवल कार्बोज, प्रोटीन, वसा तथा खनिज लवणों के बारे में ही जानकारी थी। तब विटामिन के बारे में किसी को कुछ भी जानकारी नहीं थी। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ वैज्ञानिकों द्वारा कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन व खनिज लवण के कृत्रिम मिश्रण से भोजन तैयार कर चूहों पर प्रयोग किये गये और देखा गया कि इस कृत्रिम भोजन से चूहों की वृद्धि रुक जाती है। इससे निष्कर्ष निकला कि प्राकृतिक भोजन में इन चार तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ और तत्त्व भी हैं जो शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं।

'विटामिन' शब्द केशीमियर फंक (Casimir Funk) द्वारा 1912 में दिया गया था। चावल के ऊपरी खोल से प्राप्त तत्त्व से बेरी-बेरी की स्थिति ठीक हो जाती है, यह खोजते हुए उसने आइजेकमैन (Eijkmane) की कल्पना की पुष्टि की कि यह बीमारी किसी खाद्य तत्त्व की कमी से होती है। यह तत्त्व जीवन के लिए आवश्यक समझा गया तथा 'बेरी-बेरी' विरोधी तत्त्व में नाइट्रोजन पाया गया। इस प्रकार 'विटामिन' (Vitamine) नाम दिया गया। लेकिन बाद में कई विटामिन में नाइट्रोजन नहीं पाये जाने के कारण अंतिम 'e' को हटा दिया गया व केवल Vitamin हो गया।

यदि भोजन में विटामिन की उपस्थिति उपयुक्त मात्रा में नहीं होती है तो विभिन्न विटामिनहीनता जनित रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इन रोगों से ज्ञात हुआ कि विटामिन कोई एक तत्त्व नहीं है बल्कि ये कई प्रकार के तत्त्व हैं।

विटामिनों का विभाजन– घुलनशीलता के आधार पर विटामिनों को जल में घुलनशील विटामिन तथा वसा में घुलनशील विटामिन में विभाजित किया गया है।

1. **जल में घुलनशील विटामिन:** जल में घुलनशील विटामिन शरीर में स्वनिर्मित नहीं हो पाते अत: उन्हें भोजन द्वारा प्राप्त करना आवश्यक है। यह जल में घुलनशील होते हैं अत: इनकी आवश्यकता से अधिक मात्रा शरीर से जल के साथ बाहर निकाल दी जाती है।

(1) विटामिन बी-काम्प्लेक्स

(i) विटामिन बी$_1$ या थायमिन

(ii) विटामिन बी$_2$ या राइबोफ्लेविन

(iii) निकोटिनिक अम्ल या नियासिन या निकोटिनामाइड

(iv) विटामिन B_6 या पाइरीडॉक्सिन

(v) पैन्टोथोनिक अम्ल

(vi) फोलिक अम्ल

(vii) कोलीन

(viii) बायोटीन

(ix) पैरा अमीनो बेंजोइक अम्ल

(x) विटामिन B_{12} या साइनोकोबालमिन

(2) विटामिन 'सी' या एस्कार्बिक अम्ल

2. वसा में घुलनशील विटामिन–इनमें से कुछ विटामिन की मात्रा शरीर में निर्मित हो जाती है पर वह शरीर की आवश्यकतानुसार पर्याप्त नहीं होती है। अत: इन विटामिन्स की प्राप्ति के लिए भोजन पर ही निर्भर रहना पड़ता है (तालिका सं. 14.1)।

(i) विटामिन 'ए' तथा कैरोटीन

(ii) विटामिन 'डी'

(iii) विटामिन 'ई'

(iv) विटामिन 'के'

तालिका सं. 14.1 : **वसा में घुलित व जल में घुलित विटामिनों में भिन्नता**

वसा में घुलित विटामिन	जल में घुलित विटामिन
1. वसा तथा वसीय घोलों में विलेय	1. जल में घुलनशील
2. आवश्यक मात्रा से ज्यादा होने पर वसा के साथ संग्रहीत हो जाते हैं।	2. अधिक ग्रहण करने पर जल विलेय होने के कारण मूत्र द्वारा निष्कासित हो जाते हैं
3. कमी के प्रभाव धीरे-धीरे	3. कमी के प्रभाव तेजी से

प्रतिलक्षित नहीं होते हैं	प्रतिलक्षित होते हैं
4. इनमें केवल कार्बन, ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन अणु उपस्थित होते हैं	4. इनमें कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन के अतिरिक्त नाइट्रोजन होता है। कभी-कभी सल्फर, कोबाल्ट भी पाये जाते हैं।
5. लसिका तंत्र में अवशोषित होते हैं।	5. यह पृष्ठशिरा द्वारा रक्त में अवशोषित होते हैं।

वसा में घुलनशील विटामिन (Vitamin 'A')

विटामिन 'ए' वसा में घुलनशील विटामिन की खोज सबसे पहले हुई। विटामिन 'ए' केवल प्राणिज भोज्य पदार्थों में पाया जाता है। वनस्पतिज भोज्य पदार्थों में कैरोटिनॉइड्स होता है, जो शरीर में जाकर विटामिन 'ए' में परिवर्तित हो जाता है। इसलिए कैरोटिनॉइड्स को प्रोविटामिन 'ए' भी कहते हैं।

विटामिन 'ए' के प्रकार (Types of Vitamin 'A')

विटामिन 'ए' मुख्यत: चार प्रकार के होते हैं। कई भोज्य पदार्थों में एक से अधिक विटामिन 'ए' पाये जाते है।

(1) विटामिन 'ए' (रेटीनॉल)- यह केवल प्राणिज भोज्य पदार्थों में पाया जाता है।

(2) विटामिन 'ए' एल्डीहाइड- यह आँखों के रेटिना के रॉड्स तथा कोन्स (Rods and Cones) में उपस्थित रोडोप्सिन तथा आइडोप्सिन पिगमेन्ट में उपस्थित रहता है। आँखों की दृष्टि प्रदान करने में यह विटामिन सहायक होता है।

(3) विटामिन 'ए', रेटीनॉइक अम्ल-इसका निर्माण शरीर में होता है तथा यह शारीरिक वृद्धि एवं विकास के लिए नितान्त आवश्यक है।

(4) विटामिन 'ए'-यह केवल ताजे पानी में पाये जाने वाली मछलियों के यकृत में पाया जाता है। क्रियाशीलता की दृष्टि से यह विटामिन बहुत ही कम क्रियाशील होता है।

β कैरोटीन (β Carotene)—β-कैरोटीन वनस्पतिज भोज्य पदार्थों में पाया जाता है। β कैरोटीन गहरे लाल रंग या रवेदार पदार्थ होते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से β कैरोटीन अत्यंत ही उपयोगी एवं लाभकारी है। शरीर में जाकर यह विटामिन 'ए' में परिवर्तित हो जाता है।

विटामिन 'ए' के कार्य

1. आँखों को सामान्य दृष्टि प्रदान करने में-विटामिन 'ए' आँखों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए बेहद जरूरी होता है। नेत्र के दृष्टि पटल में दो प्रकार के कोष पाये जाते हैं-छड़ (Rods) व शंकु (Cons) जो कि मंद व तेज रोशनी में देखने तथा रंगों की पहचान करने में मदद करते हैं। इनमें रंग प्रदान करने वाले वर्णक भी होते हैं। छड़ में रोडोप्सिन तथा शंकु में आइडोप्सिन होते हैं। इनमें ऑप्सिन नामक प्रोटीन होता है। विटामिन 'ए' एल्डीहाइड ऑप्सिन प्रोटीन के साथ मिलकर रोडोप्सिन में बदल जाता है जिसे 'Visual Purple' कहते हैं। रोशनी की उपस्थिति में रोडोप्सिन ब्लीच होकर विटामिन 'ए' एल्डीहाइड तथा ऑप्सिन में बदल जाता है। इस प्रकार कम रोशनी में रोडोप्सिन तथा तेज रोशनी में आइडोप्सिन का निर्माण होता रहता है और यह चक्र निरन्तर निर्बाध गति से चलता रहता है। इस प्रकार आँख द्वारा प्रकाश में देखने की शक्ति विटामिन 'ए' की उपस्थिति पर निर्भर करती है।
2. एपीथिलियम ऊतकों के स्वास्थ्य में-विटामिन 'ए' एपीथिलियम ऊतकों की क्रियाशीलता तथा स्थिरता रखने में सहायक है। हमारे शरीर के सभी बाह्य तथा आन्तरिक अंग इसी ऊतक से आच्छादित रहते हैं। ये ऊतक श्लेष्मा स्रावित करते हैं तथा अंगों को बाहरी जीवाणु, विषाणुओं तथा रोगाणुओं से सुरक्षा प्रदान करते हैं। विटामिन 'ए' इस स्रावण के निष्कासन में मदद करता है, जिससे त्वचा एवं आन्तरिक अंग कोमल, मुलायम एवं नम बने रहते हैं।
3. शारीरिक वृद्धि व विकास-विटामिन 'ए' शारीरिक वृद्धि एवं विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शोधों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि विटामिन 'ए' के अभाव में कोशिकाओं की विभाजन क्रिया में 30 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। अत: यह शरीर की वृद्धि एवं विकास में मदद करता है।
4. प्रजनन अंगों के स्वास्थ्य में सहायक-विटामिन 'ए' प्रजनन अंगों के उत्तम स्वास्थ्य तथा प्रजनन क्रिया को सुचारु रूप से सम्पन्न होने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। विटामिन 'ए' की कमी से यौन हार्मोन का पर्याप्त स्रावण नहीं हो पाता है। इसके अभाव से पुरुष एवं स्त्री के प्रजनन अंगों में विकार उत्पन्न हो जाते हैं।
5. अस्थियों की वृद्धि में सहायक-विटामिन 'ए' अस्थियों की सामान्य वृद्धि एवं विकास के लिए बेहद जरूरी होता है।
6. संक्रमण का प्रतिरोधक-विटामिन 'ए' शरीर में रोग-प्रतिरोधक की तरह कार्य करता है। यह एपीथिलियम ऊतकों की मजबूती में सहायक होता है, जिससे उन पर संक्रमण शीघ्र नहीं हो पाता।
7. नाड़ी संस्थान को स्वस्थ रखने में-विटामिन 'ए' नाड़ी संस्थान के ऊतकों की बेहतर क्रियाशीलता के लिए आवश्यक है। इसके अभाव में मायलीन शीथ नष्ट हो जाता है जिससे नाड़ी संस्थान में विकृति उत्पन्न हो जाती है।
8. ग्लूकोप्रोटीन के संश्लेषण में-ग्लूकोप्रोटीन के संश्लेषण में विटामिन 'ए' अमूल्य भूमिका निभाता है। इस विटामिन की कमी से गुर्दे तथा यकृत में पथरी पड़ने की आशंका रहती है।
9. श्वेत रक्त कणिकाओं को स्वस्थ रखने में-विटामिन 'ए' श्वेत रक्त कणिकाओं के उत्तम स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए बेहद जरूरी होता है। इसकी कमी से श्वेत रक्त कणिकाओं (WBC) की

संख्या में कमी होने लगती है जिसके कारण ल्यूकोपेनिया रोग हो जाता है।

10. प्रोटीन के संश्लेषण में–विटामिन 'ए' प्रोटीन के संश्लेषण में मदद करता है इस प्रकार इसकी कमी से राइबोन्यूक्लिक अम्ल (RNA) का चयापचय ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। जिसके परिणामस्वरूप प्रोटीन की सामान्य क्रियाशीलता प्रभावित होती है।

विटामिन 'ए' की कमी के प्रभाव

1. रतौंधी–रतौंधी आँखों का रोग (चित्र 14.1) है। रतौंधी के लक्षण विटामिन 'ए' हीनता होने के प्रारम्भ में ही प्रकट होने शुरू हो जाते हैं। इस रोग में कम प्रकाश में ठीक तरह देखने की क्षमता नहीं रहती, विशेष रूप से जब उजाले से अँधेरे में जाते है या तेज धूप से कमरे में आते है।
2. जेरोफ्थैलमियाँ–जब विटामिन 'ए' की हीनता बहुत अधिक समय तक तथा बहुत तीव्रता से होती है तो यह रोग हो जाता है। इसमें आँख की कॉर्निया झिल्ली सूख जाती है तथा सूजन आ जाती है। इसका कारण कार्निया में कैरेटिनाइजेशन क्रिया है। कैरोटिनाइजेशन के कारण कॉर्निया का भीतरी भाग धुएँ युक्त बादल की तरह दिखाई देने लगता है। धीरे-धीरे आँखों की रोशनी नष्ट हो जाती है।

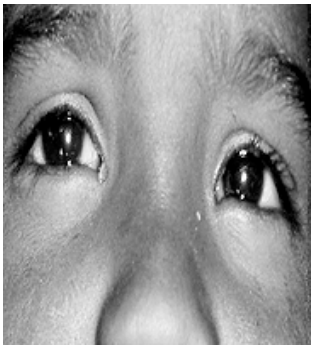

चित्र 14.1 : **रतौंधी**

चित्र 14.2 : **बिटॉट स्पॉट**

3. बिटाँट का धब्बा–इसमें आँख की कंजक्टाइवा एपीथिलियम पर सलेटी सफेद रंग का तिकोना धब्बा आ जाता है (चित्र 14.2)।
4. जेरोसिस कन्जेक्टाइवा–विटामिन 'ए' की कमी से कन्जक्टाइवा सूखकर मोटी हो जाती है। इन पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। कभी-कभी इन पर घाव भी हो जाते हैं।
5. जैरोसीस कॉर्निया–विटामिन 'ए' के अभाव के कारण अश्रु ग्रंथियाँ सूख जाती हैं जिससे आँसुओं का निकलना बन्द हो जाता है।
6. कैरेटोमलेशिया–आँखों से सम्बन्धित विभिन्न रोगों की अन्तिम अवस्था कैरेटोमलेशिया होती है। इसमें कॉर्निया बहुत कोमल हो जाता है, उस पर घाव हो जाते हैं तथा बैक्टीरिया आक्रमण कर देते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप पूर्ण रूप से आँख की दृष्टि समाप्त हो जाती है अर्थात् अन्धे हो जाते है।
7. फ्राइनोडर्मा–विटामिन 'ए' के अभाव में त्वचा की स्वेद ग्रंथियाँ ठीक प्रकार से कार्य नहीं करती हैं जिसके कारण पसीना नहीं निकलता है तथा त्वचा सूखी, रूक्ष, कठोर एवं खुरदरी हो जाती है।
8. शारीरिक वृद्धि में रुकावट–विटामिन 'ए' की कमी यदि शरीर में लम्बे समय तक बनी रहती है तो अस्थियों की वृद्धि एवं विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है।
9. प्रजनन शक्ति क्षीण होना–इस विटामिन की कमी से पुरुषों की जननेन्द्रियों पर प्रभाव पड़ता है। यौन हार्मोन का स्रावण कम होता है फलस्वरूप शुक्राणु कम मात्रा में बनते हैं।

विटामिन 'ए' की अधिकता का प्रभाव

विटामिन 'ए' की कमी का जितना दुष्प्रभाव शरीर पर पड़ता है, उतना ही भयंकर परिणाम इसकी अधिकता का भी होता है, जिसे हाइपरविटामिनोसिस कहते हैं।

विटामिन 'ए' की अधिकता का प्रभाव

1. भूख में कमी
2. जोड़ों में दर्द
3. आँख की रेटिना में रक्तस्राव
4. यकृत का बढ़ जाना
5. पैर की हड्डियों में सूजन
6. सिर दर्द एवं चिड़चिड़ापन
7. साँस लेने में कठिनाई
8. बालों का झड़ना
9. होंठों पर फुंसियाँ एवं छाले

विटामिन 'ए' की कमी के प्रभाव के उपचार

यदि विटामिन 'ए' की कमी हो तो 10,000 µg विटामिन 'ए' 10 दिनों तक दिया जाना चाहिए। परन्तु यदि काफी कमी है तो 50,000 µg तक विटामिन 'ए' लगातार कुछ सप्ताहों तक दी जानी चाहिए।

चित्र 14.3 : **विटामिन 'ए' प्राप्ति के स्त्रोत**

विटामिन 'ए' की प्राप्ति के साधन

विटामिन 'ए' प्रमुख रूप से मछलियों के यकृत के तेल में उपस्थित रहता है। अन्य जन्तु भोज्य पदार्थ, जैसे–मछली का तेल, यकृत, अण्डा, मक्खन, दूध आदि। वनस्पति भोज्य पदार्थों में चौलाई की पत्तियाँ, धनिया पत्ता, गाजर, सहजन के पत्ते, पुदीना, पालक आदि बीटा (b) कैरोटीन के उत्कृष्ट स्रोत हैं। (चित्र 14.3)

विटामिन 'D'

विटामिन 'D' वसा में घुलनशील दूसरा महत्त्वपूर्ण विटामिन है। इसे अस्थि विकृति नाशक विटामिन भी कहते हैं (चित्र 14.4)।

विटामिन 'D' के प्रकार

रिकेट्स प्रतिरोधक पदार्थों तथा स्टीरॉल्स यौगिक इन दोनों को ही सम्मिलित रूप से विटामिन 'D' कहते हैं।

चित्र 14.4 : **रिकेट्स**

विटामिन 'D' मुख्यत: दो प्रकार का होता है–

1. विटामिन D_2–इसे अर्गोस्टीरॉल या प्रोविटामिन 'D' भी कहते हैं। यह सूर्य की पराबैंगनी किरणों की क्रिया से कैल्सीफिरॉल बनाता है। यह फफूँदी एवं खमीर में पाया जाता है।
2. विटामिन D_3–इसे 7–डीहाइड्रोकोलेस्ट्रॉल भी कहते हैं। मनुष्य की त्वचा के नीचे 7–डीहाइड्रोकोलेस्ट्रॉल उपस्थित होता है जो सूर्य की पराबैंगनी किरणों के सम्पर्क में आकर विटामिन 'D' के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

विटामिन 'D' के कार्य

1. कैल्सियम तथा फास्फोरस के अवशोषण में सहायक–विटामिन 'D' रक्त में एल्केलाइन फास्फेट्स एन्जाइम की मात्रा को नियन्त्रित करता है जो कि हड्डियों द्वारा कैल्सियम तथा फास्फोरस की अवशोषण दर बढ़ाने में सहायक है। इसके अभाव में इन दोनों ही खनिज लवणों का अवशोषण नहीं हो पाता है, अत: अधिकांश कैल्सियम तथा फास्फोरस बिना अवशोषित हुए ही शरीर से बाहर निकल जाता है। इससे अस्थियों तथा दाँतों का विकास सही प्रकार से नहीं हो पाता है।
2. रक्त में कैल्सियम तथा फास्फोरस की मात्रा को नियंत्रित करना–विटामिन 'D' द्वारा रक्त में कैल्सियम तथा फास्फोरस की मात्रा नियंत्रित होती है। जब इन दोनों लवण की मात्रा रक्त में कम होती है तब यह दोनों लवण हड्डियों से निकलकर रक्त में मिल जाते हैं, इस तरह रक्त में कैल्सियम तथा फास्फोरस का स्तर बना रहता है।
3. शारीरिक वृद्धि हेतु–विटामिन 'D' शारीरिक वृद्धि एवं विकास में अमूल्य योगदान देता है। इसकी कमी से कैल्सियम एवं फास्फोरस का सही ढंग से अवशोषण नहीं हो पाता है, अत: शारीरिक वृद्धि रुक जाती है।
4. पैराथायरॉइड ग्रंथि पर नियंत्रण–विटामिन 'D' पैराथायरॉइड ग्रंथियों से निकलने वाले हार्मोन को नियंत्रित एवं नियमित करता है।
5. विटामिन 'D' छोटी आँत के म्यूकोसा में प्रोटीन की संश्लेषण क्रिया में भी सहायता करता है।

विटामिन 'D' की कमी के प्रभाव

शरीर में विटामिन 'D' के अभाव के कारण रक्त में एल्केलाइन फास्फेटेज की मात्रा बढ़ जाती है। इसकी कमी से आँतों के द्वारा कैल्सियम व फास्फोरस का ठीक तरह अवशोषण नहीं हो पाता है। अत: हड्डियाँ एवं दाँत कमजोर हो जाते हैं। (तालिका सं. 14.2)

विटामिन 'D' की हीनता के कारण निम्न बीमारियाँ हो जाती हैं–

1. रिकेट्स–यह अधिकतर बच्चों को प्रभावित करता है। इस रोग में शरीर में विटामिन 'D' कैल्सियम तथा फास्फोरस की काफी कमी हो जाती है। यह अधिकतर उन लोगों में पाया जाता है जो अधिक भीड़–भाड़, धुएँ तथा औद्योगिक स्थानों पर रहते हैं जहाँ पर्याप्त सूर्य की रोशनी एवं धूप भी नहीं पहुँच पाती है। अत: उन्हें रिकेट्स हो जाता है (चित्र 14.4)।
2. मांसपेशीय मरोड़ (टिटैनी)–विटामिन 'D' की कमी से कैल्सियम तथा फास्फोरस के चयापचय में असमानताएँ उत्पन्न हो जाती हैं तब मांसपेशीय मरोड़ रोग हो जाता है।
3. दाँतों का सड़ना–विटामिन 'D' की कमी के कारण बच्चों में समय पर दाँत नहीं उगते हैं। दाँतों के एनामेल तथा डेन्टीन भाग में कैल्सियम फास्फेट का जमाव नहीं हो पाता है तथा स्वस्थ्य दाँत का निर्माण नहीं हो पाता है।
4. अस्थि मृदुलता (ऑस्टोमलेशिया)–इसे प्रौढ़ रिकेट्स भी कहते हैं। इस रोग में विटामिन 'D' अथवा कैल्सियम की कमी से अस्थियों में कैल्सिफिकेशन की क्रिया ठीक तरह नहीं हो पाती है। यह रोग विशेष रूप से गर्भवती तथा दुग्धपान कराने वाली स्त्रियों को हो जाता है जो मुख्यत: वनस्पति आहार लेती है तथा घर के अन्दर पर्दे में

रहती है। इस रोग में भी अस्थियाँ कोमल हो जाती हैं व झुक जाती है। अस्थि टूटने की बहुत ज्यादा सम्भावना रहती है।

5. ऑस्टोपोरोसिस–यह रोग मुख्यत: वृद्धों में होता है, अस्थियाँ नि:शक्त, कमजोर एवं भुरभुरी हो जाती हैं तथा जरा-सी चोट लगने अथवा गिर जाने पर टूट जाती हैं।

तालिका सं. 14.2 : **विटामिन 'D' की कमी**

रिकेट्स

बालकों में (6माह से 2-1/2 वर्ष)

लक्षण

खोपड़ी का अग्रभाग देरी से भरना
खोपड़ी की हड्डियाँ कोमल होना
लम्बी अस्थि का सिरा बढ़ना
पसली की अस्थियों में मोती जैसा उभार
जोड़ों में दर्द
पाचन क्रिया गड़बड़ाना
थकान
चिड़चिड़ापन

टिटैनी

लक्षण

हाथ-पैरों में तीव्र दर्द
पीड़ा एवं ऐंठन

दाँतों का सड़ना

(विशेषकर बालकों में)
दाँतों का सड़ना
अस्वस्थ दाँत
विकृत दाँत
दाँतों में खोढ़र
दाँतों का देरी से निकलना

ऑस्टोमलेशिया अथवा ऑस्टोपोरोसिस

(वयस्कों में)
अस्थियाँ कमजोर होना
कमर एवं जाँघों में दर्द
रीढ़ की हड्डियों का झुकना
माँसपेशियों का कमजोर होना
श्रोणि गुहा का ठीक से विकास न होना
अस्थियों का कमजोर होना

विटामिन 'D' की अधिकता के प्रभाव

विटामिन 'D' की अधिकता से भूख कम हो जाती है, जी मिचलाने लगता है, उल्टिया होने लगती हैं, प्यास बढ़ जाती है तथा बहुमूत्र भी हो जाता है। बच्चा बहुत सुस्त व कमजोर हो जाता है तथा मांसपेशियों का क्षय होने लगता है। विटामिन 'D' की अधिकता होने पर कैल्सियम धमनियों, गुर्दों तथा फेफड़ों में जमा होने लगता है, जिससे मृत्यु भी हो सकती है।

विटामिन 'D' की प्राप्ति के स्त्रोत

मुख्यत: विटामिन 'D' 'सूर्य की रोशनी' से प्राप्त होता है परन्तु विटामिन 'D' की उपस्थिति कुछ जन्तु भोज्य पदार्थों में भी होती है तथा प्रमुख साधन मछलियों के यकृत का तेल, मोटी वसा युक्त मछलियाँ, अण्डा, मक्खन, पनीर, वसा युक्त दूध आदि है।

विटामिन 'E'

1922 में ईवान्स तथा विशप ने चूहों पर प्रयोग करके बताया कि वसा में घुलनशील एक विशेष तत्त्व चूहों में प्रजनन क्रिया के लिए आवश्यक होता है। इस तत्त्व को विटामिन 'E' नाम दिया गया है जो सन्तानोत्पत्ति में विशेष रूप से सहायक होता है। इसलिए इसे बाँझपन विरोध विटामिन भी कहते हैं। रासायनिक संरचना के अनुरूप इसका नाम बीटा (b) टोकोफेरॉल रखा गया।

विटामिन 'E' के प्रकार– यह विटामिन मुख्यत: दो रूपों में पाया जाता है–

(1) टोकोफेरॉल (2) टोकीट्रीनॉल

दोनों प्रकारों में से टोकोफेरॉल अत्यधिक क्रियाशील होता है। यह भी तीन प्रकार का होता है–एल्का (α), बीटा (β), गामा (δ)

विटामिन 'E' के कार्य

1. विटामिन 'A' तथा कैरोटीन को ऑक्सीकृत होने से रोकना–विटामिन 'E' में ऑक्सी-प्रतिरोधक गुण होता है। इन विशेषताओं के कारण विटामिन 'E' आँतों में कैरोटीन तथा विटामिन 'A' के ऑक्सीकरण को रोकता है। इस प्रकार यह विटामिन 'A' तथा कैरोटीन को नष्ट होने से बचाता है।
2. लाल रक्त कणिकाओं के निर्माण में–विटामिन 'E' लाल रक्त कणिकाओं के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह लाल रक्त कणिकाओं को ऑक्सीकारक पदार्थों द्वारा टूटने-फूटने से बचाता है। इस तरह यह लाल रक्त कणिकाओं की जीवन अवधि को बढ़ाता है।
3. कोशिकाओं की रचनात्मक एकता को बनाये रखना–विटामिन 'E' कोशिकाओं के आवरण की रचनात्मक एकता को बनाये रखने में अमूल्य योगदान देता है। इसके अभाव में कोषों की रचनात्मक एकता बिगड़ जाती है।
4. प्रजनन में सहायक–विटामिन 'E' सामान्य प्रजनन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
5. न्यूक्लिक अम्ल तथा प्रोटीन चयापचय में–विटामिन 'E' का न्यूक्लिक अम्ल तथा प्रोटीन के चयापचय में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह हीम प्रोटीन के संश्लेषण में सहायक होता है।

6. विटामिन 'E' यकृत को विभिन्न विषैले पदार्थों से सुरक्षा प्रदान करता है। विभिन्न लैंगिक हार्मोन, कोलेस्ट्रोल तथा विटामिन 'डी' इसकी उपस्थिति से प्रभावित होते हैं।

विटामिन 'E' की कमी के प्रभाव

1. प्रजनन क्षमता में कमी–विटामिन 'E' की कमी से प्रजनन अंग ठीक तरह कार्य नहीं करते हैं। यौन हार्मोनों के स्रावण में असंतुलन एवं गड़बड़ियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। स्त्रियों के शरीर में भ्रूण गर्भावस्था में ही मर जाता है तथा पुरुषों में शुक्राणु उत्पन्न करने वाली कोशिकाओं का नाश होने लगता है।
2. यकृत का नेक्रोसिस–यह विटामिन यकृत की विभिन्न विषैले तथा हानिकारक पदार्थों से सुरक्षा करता है। जब शरीर में विटामिन 'E' की कमी उत्पन्न हो जाती है तब यकृत में विषैले तत्त्वों का जमाव होने लगता है। इस कारण यकृत की कोशिकाएँ धीरे-धीरे नष्ट होने लगती हैं।
3. इरिथ्रोसाइट हीमोलाइसिस–विटामिन 'E' की हीनता से लाल रक्त कणिकाएँ जल्दी-जल्दी टूटती रहती हैं। अस्थिमज्जा लाल रक्त कणिकाओं का निर्माण भी शीघ्रता से नहीं कर पाता है फलस्वरूप रक्तहीनता हो जाती है।
4. मांसपेशीय ऐंठन–विटामिन 'E' की कमी से शरीर की पेशियों में कमजोरी हो जाती है तथा अनावश्यक संकुचन होने लगता है।

विटामिन 'E' के प्राप्ति स्रोत–विभिन्न अनाजों के भ्रूण के तेल विटामिन 'E' के प्रमुख साधन हैं। वनस्पति तेलों तथा वसा में भी विटामिन 'E' प्रचुर मात्रा में मिलता है।

विटामिन 'K'

विटामिन 'K' की उपस्थिति की खोज सबसे पहले डॉ. डैम ने की। उन्होंने 1934 में मुर्गी के बच्चों पर किये गये प्रयोगों से ज्ञात किया कि विटामिन 'K' उनमें रक्त के बहाव को रोक कर थक्का जमाने में सहायक है। इस प्रकार इस विटामिन को रक्तस्राव प्रतिरोधी विटामिन भी कहते हैं।

विटामिन 'K' के प्रकार

विटामिन 'K' मुख्यत: दो प्रकार का होता है–

1. विटामिन 'K_1'–यह हरी पत्तेदार सब्जियों में रहता है। इसे फाइलोक्वीनोन भी कहते हैं।
2. विटामिन 'K_2' – यह सड़ी-गली मछलियों से प्राप्त होता है। इसे फ्रैन्क्वीनोन भी कहते हैं।

विटामिन 'K' के कार्य

1. रक्त का थक्का जमाने में–विटामिन 'K' का मुख्य कार्य रक्त का थक्का जमाना है। यह रक्त के एक तत्त्व प्रोथ्रौम्बिन के निर्माण में सहायक होता है। प्रोथ्रौम्बिन थ्रौम्बिन में परिवर्तित होकर फाइब्रिन में परिवर्तित हो जाता है, जिसके कारण रक्त जम जाता है।

रक्त में उपस्थित बिम्बाणु (Platelets) तथा कुछ रक्त कारक क्षतिग्रस्त ऊतकों से मिलकर थ्रौम्बोप्लास्टिन बनाते हैं। ये रक्त फैक्टर कैल्सियम आयन तथा रक्त प्लाज्मा से मिलकर क्रिया करते हैं तथा प्रोथ्रौम्बिन को सक्रिय बनाते है। सक्रिय प्रोथ्रौम्बिन कुछ रक्त कारकों के साथ मिलकर रासायनिक क्रिया करता है तो एक नवीन पदार्थ का निर्माण होता है जिसे थ्रौम्बिन कहते हैं। रक्त प्लाज्मा में फाइब्रिनोजन नामक एक घुलनशील प्रोटीन होता है, जो थ्रौम्बिन से मिलकर रासायनिक क्रिया करता है और फाइब्रिनोजन को एक अघुलनशील प्रोटीन फाइब्रिन में बदल देता है। इसमें ही रक्त कणिकाएँ फँस जाती हैं तथा रक्त जम जाता है। परन्तु विटामिन 'K' के अभाव में प्रोथ्रौम्बिन का निर्माण नहीं होता है। अत: रक्त का थक्का बनने की क्रिया सम्पन्न नहीं हो पाती है।

विटामिन 'K' की कमी के प्रभाव

रक्त में प्रोथ्रौम्बिन की मात्रा कम होना–विटामिन 'K' की कमी से रक्त में प्रोथ्रौम्बिन की मात्रा कम हो जाती है, जिससे रक्त का थक्का बनने का समय बढ़ जाता है। इस कारण से रक्त स्राव बहुत अधिक होने लगता है। बाहरी या आन्तरिक चोट लगने पर रक्त का थक्का नहीं बन पाता है, जिसके कारण रक्त अवरुद्ध नहीं हो पाता। यही स्थिति हेमेज कहलाती है।

विटामिन 'K' की अधिकता के परिणाम

विटामिन 'K' की अधिकता से लाल रक्त कणिकाएँ टूटने लगती हैं, जिसके कारण हीमोलाइटिक रक्ताल्पता हो जाती है। इसके कारण से जी मिचलाना, उल्टी होना, चक्कर आना, त्वचा का पीला हो जाना आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

विटामिन 'K' के प्राप्ति स्रोत

विटामिन 'K' विभिन्न वनस्पति भोज्य पदार्थों में उपस्थित रहता है। हमारी आँतों में कुछ बैक्टीरिया भी विटामिन 'K' का निर्माण करते हैं। वनस्पति भोज्य पदार्थों में हरी पत्तियों वाली सब्जियाँ विशेष रूप से मुख्य साधन है। अनाजों, दालों, अंडा, दूध, मांस तथा मछली में भी यह प्रचुर मात्रा में मिलता है।

जल विलेय विटामिन

विटामिन 'C' (एस्कार्बिक अम्ल)

विटामिन 'C' को एस्कार्बिक अम्ल भी कहते हैं। इसकी खोज स्कर्वी रोग का उपचार व कारण ढूँढ़ते हुए हुई। यह सफेद रवे के आकार का, पानी में अति घुलनशील विटामिन है। यह अतिशीघ्र ही ऑक्सीकृत हो जाता है, विशेष रूप से क्षार-ताप, प्रकाश व ताँबा धातु की उपस्थिति में।

विटामिन 'C' के कार्य

1. कोलेजन एवं अन्त:कोशिकीय पदार्थ के निर्माण में–विटामिन 'C' अन्त:कोशिका पदार्थ का निर्माण करता है जो विभिन्न कोशिकाओं को ऊतकों, जैसे–कोशिकाएँ, अस्थि, दाँत तथा बन्धक ऊतकों को जोड़ने के काम आता है।

2. लौह तत्त्व के अवशोषण में सहायक–विटामिन 'C' फेरिक लवण को फेरस लवण में परिवर्तित करता है जिससे वह पाचन नली द्वारा अवशोषित होता है।
3. को-एन्जाइम के रूप में–विटामिन 'C' शरीर में कई चयापचयी क्रियाओं को सम्पन्न करने में को-एन्जाइम की भाँति कार्य करता है।
4. अस्थियों के निर्माण में–विटामिन 'C' अस्थियों की स्वस्थ वृद्धि, विकास एवं निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। इस विटामिन की हीनता से अस्थियों में परिवर्तन आ जाता है, क्योंकि अस्थि मैट्रिक्स तथा संयोजक पदार्थों का निर्माण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है।
5. एन्टीऑक्सीडेन्ट के रूप में–विटामिन 'C' एक महत्त्वपूर्ण एन्टीऑक्सीडेन्ट के रूप में कार्य करता है। यह श्वेत रक्त कणिकाओं की क्रियाशीलता को बनाये रखने में मदद करता है तथा शरीर को रोगों के संक्रमण से बचाता है।
6. रक्तवाहिनियों के स्वास्थ्य में–विटामिन 'C' रक्तवाहिनियों को स्वस्थ रखता है तथा उसकी दीवारों को मजबूती एवं दृढ़ता प्रदान करता है।
7. घाव भरने में–विटामिन 'C' द्वारा कोलेजन का निर्माण होता है जो घावों को जल्दी भरने में मदद करता है।
8. रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में–विटामिन 'C' संक्रमण की अवस्था में जैसे तपेदिक, निमोनिया में शारीरिक कोशिकाओं को नष्ट होने से बचाये रखता है। यह शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

विटामिन 'C' की कमी के प्रभाव

विटामिन 'C' की शरीर में अधिक समय तक कमी रहने से स्कर्वी रोग हो जाता है (चित्र 14.5)।

स्कर्वी रोग मुख्यत: दो प्रकार का होता है–

(1) वयस्कों में स्कर्वी–वयस्कों में स्कर्वी लम्बे समय तक विटामिन 'C' रहित आहार लेने से होता है।

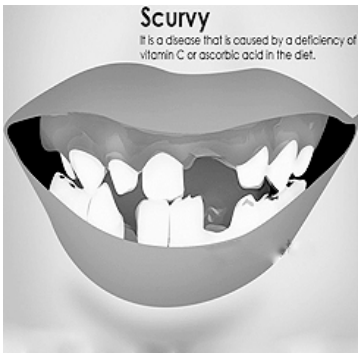

चित्र 14.5 : **स्कर्वी**

लक्षण :

(i) कमजोरी, वजन में कमी।

(ii) सुस्ती, थकान एवं निठल्लापन।

(iii) इस विटामिन की कमी से लौह तत्त्व का अवशोषण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है, जिससे 'रक्ताल्पता' रोग हो जाता है।

(iv) त्वचा सूखी, खुरदरी, पीली, चमकहीन हो जाती है।

(v) मसूड़े सूख जाते हैं तथा दाँत कमजोर होकर गिरने लगते हैं।

(vi) शरीर की मांसपेशियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं।

(2) बच्चों में स्कर्वी–शिशुओं में विटामिन 'C' की कमी से यह रोग होता है। यह रोग छ: माह से कम उम्र के शिशुओं में नहीं होता है। यह 6–12 माह के शिशुओं में अधिक होता है। बच्चों में स्कर्वी रोग अत्यन्त ही खतरनाक होता है।

लक्षण :

(i) बच्चे चिड़चिड़े, आलसी एवं सुस्त हो जाते हैं।

(ii) पैरों में सूजन आ जाती है तथा दर्द रहने लगता है।

(iii) रक्त वाहिनियों की दीवारें फट जाती हैं।

(iv) घाव जल्दी नहीं भरते हैं।

(v) मसूड़े सूज जाते हैं, मुँह से बदबू आने लगती है।

(vi) छाती के सामने की हड्डी अन्दर की ओर धँस जाती है।

(vii) साँस लेने में कठिनाई होने लगती है, शरीर नीला पड़ जाता है। शरीर में ऐंठन होने लगती है तथा बच्चे की मृत्यु हो जाती है।

विटामिन 'C' प्राप्ति के स्त्रोत

आँवला एवं अमरूद विटामिन 'C' प्राप्ति के उत्कृष्ट साधन हैं। सभी खट्टे-रसीले फल जैसे नीबू, संतरा, अन्नानास, आम, पपीता तथा सब्जियाँ जैसे टमाटर, चौलाई, बंदगोभी, धनिया पत्ता, सहजन की पत्तियाँ, मूली का पत्ता आदि भोज्य पदार्थों में इसकी प्रचुरता रहती है। अंकुरित अनाजों एवं दालों में इसकी मात्रा बढ़ जाती है। (चित्र 14.6)

चित्र 14.6 : **विटामिन 'सी' प्राप्ति के स्त्रोत**

विटामिन B_1 (थायमिन)

थायमिन विटामिन की खोज बेरी-बेरी रोग का उपचार करते हुए हुई। अधिकांशत: यह रोग उन प्रदेशवासियों में होता है, जहाँ पॉलिश किये गये चावलों का मुख्य रूप से सेवन किया जाता है।

थायमिन पानी में तेजी से घुल जाता है। अम्लीय माध्यम से यह स्थिर रहता है। क्षारीय माध्यम में यह कमरे के तापक्रम पर ही नष्ट हो जाता है। भोजन में खाने का सोडा प्रयोग करने पर थायमिन नष्ट हो जाता है।

थायमिन के कार्य :

1. कार्बोज के चयापचय में सहायक-शरीर में थायमिन, फास्फेट के साथ मिलकर थायमिन पाइरोफॉस्फेट बनाता है। जो कार्बोहाइड्रेट के चयापचय में सहायता करता है।
2. पाचन क्रिया में सहायता करना-थायमिन पाचन संस्थान की मांसपेशियों की गति को सामान्य रखता है।
3. नाड़ियों की सामान्य स्थिति बनाये रखने में सहायक-थायमिन पाइरोफॉस्फेट कार्बोज के लिए अति आवश्यक है। इस विटामिन की कमी से कार्बोज का चयापचय ठीक प्रकार से नहीं हो पाता जिसके कारण से नाड़ी पेशियों एवं ऊतकों तक नहीं पहुँच पाता है। जिससे इनमें विकृति उत्पन्न हो जाती है।
4. डी.एन.ए. एवं आर.एन.ए. के निर्माण में सहायक- थायमिन डी.एन.ए. एवं आर.एन.ए. के निर्माण में भी सहायता प्रदान करता है।
5. श्वेत रक्त कणिकाओं की रोगाणु-भक्षण क्षमता में वृद्धि करता है।
6. शरीर के भीतरी अंगों को स्वस्थ एवं क्रियाशील बनाये रखने में थायमिन महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

थायमिन की कमी के प्रभाव

मद्यपान करने वाले व्यक्तियों में थायमिन की अक्सर कमी हो जाती है। उन लोगों में भी थायमिन की कमी पाई गयी है जो अत्यधिक मात्रा में तो कार्बोज का सेवन करते हैं परन्तु दाल, हरी पत्तेदार सब्जियों आदि का प्रयोग बिलकुल भी नहीं करते हैं।

थायमिन की कमी से बेरी-बेरी रोग हो जाता है। इसे तीन प्रमुख प्रकारों में बाँटा गया है।

(1) शुष्क बेरी-बेरी वयस्कों में

(2) आर्द्र बेरी-बेरी

(3) बाल बेरी-बेरी – बच्चों में

1. शुष्क बेरी-बेरी-शुष्क बेरी-बेरी वयस्कों में होता है। इसे शुष्क बेरी-बेरी इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इस रोग में मांसपेशियाँ क्षीण होकर नष्ट हो जाती हैं। फलत: शरीर कंकाल की तरह दिखने लगता है।

   लक्षण-नाड़ी संस्थान प्रभावित होता है। पैर सुन्न हो जाते हैं। चलने-फिरने में अत्यधिक कठिनाई होने लगती है। चिड़चिड़ापन, भुलक्कड़पन, आत्महत्या का विचार आना नाड़ी-संस्थान में विकृति आ जाने के कारण होता है (चित्र 14.7)।

2. आर्द्र बेरी-बेरी-शरीर में सूजन के कारण इस बेरी-बेरी को आर्द्र बेरी-बेरी कहा जाता है। सूजन प्रारम्भ में पैरों में होती है जो धीरे-धीरे बढ़कर हाथों, चेहरे एवं गर्दन में भी आ जाती है।

   लक्षण- हृदय कमजोर, निर्बल एवं दुर्बल हो जाता है। हृदयगति में अस्वाभाविक परिवर्तन आ जाते हैं। साँस लेने में कठिनाई होती है।

   यदि समय रहते इलाज न किया जाए तो हृदय गति के अवरुद्ध होने के कारण व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

3. बाल बेरी-बेरी-यह बेरी-बेरी रोग शिशुओं में होता है। दूध पिलाती माता के आहार में जब पर्याप्त मात्रा में विटामिन B_1 नहीं होता या अत्यधिक मात्रा में पॉलिश किये गये चावलों का प्रयोग आहार के रूप में करती है जिसके कारण दूध में इस विटामिन की कमी हो जाती है। जिससे स्तनपान करने वाले शिशुओं में भी इस विटामिन की कमी हो जाती है। शिशुओं में यह रोग तब भी पाया जाता है जब उन्हें थायमिन रहित आहार दिया जाता है।

   लक्षण- शरीर की माँसपेशियाँ नष्ट हो जाती है। शरीर में पानी भर जाता है। हृदय व यकृत का आकार बड़ा हो जाता है। भूख में कमी हो जाती है। पाचन शक्ति क्षीण हो जाती है। उलटी, दस्त होने लगते हैं।

4. वर्निक्स कॉरसाकॉफ्स सिन्ड्रोम-थायमिन की अत्यधिक कमी से यह रोग हो जाता है। विशेषकर उन व्यक्तियों में अधिक होता है, जो अत्यधिक मात्रा में प्रतिदिन मद्यपान करते हैं।

   लक्षण- आँखों की पेशियाँ कमजोर, क्षीण, निर्बल एवं नाजुक हो जाती हैं नेत्रक गोलक के घूमने की गति में असाधारण रूप से वृद्धि हो जाती है। चाल विकृत हो जाती है।

चित्र 14.7 : **बेरी-बेरी**

थायमिन की प्राप्ति के स्रोत-विभिन्न साबुत अनाज थायमिन के प्रमुख साधन है। तेल बीज, हरी सब्जियाँ, हरा मटर, चना, यकृत आदि में थायमिन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहता है।

विटामिन बी-2 (राइबोफ्लेविन)

राइबोफ्लेविन में 'राइबोज' नामक पेन्टोज शर्करा एवं एक आइसोएलोजैजिक केन्द्रक उपस्थित होता है। यह पानी में तीव्रता से घुलनशील है, सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों तथा प्रकाश से नष्ट हो जाता है।

राइबोफ्लेविन के कार्य :

1. हार्मोन को नियमित एवं नियंत्रित करने में–राइबोफ्लेविन कार्बोहाइड्रेट, वसा व प्रोटीन के चयापचय में सहायक एन्जाइम के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन्सुलिन हार्मोन की सक्रियता के लिए नितान्त जरूरी है।
2. त्वचा को स्वस्थ बनाये रखने में–त्वचा को सुन्दर, कांतिमय, आकर्षक, सजल एवं चमकदार बनाये रखने में राइबोफ्लेविन अमूल्य योगदान देता है।
3. आँखों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए–राइबोफ्लेविन आँखों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके अभाव से नेत्रों की रक्त कोशिकाओं में घाव हो जाता है।
4. शारीरिक वृद्धि में सहायक–राइबोफ्लेविन शरीर के कोषों का भरण-पोषण करता है। यह कोषों के भीतर शक्ति की विमुक्ति के लिए भी आवश्यक होता है।

राइबोफ्लेविन की कमी के प्रभाव

1. त्वचा पर घाव होना–इस विटामिन की कमी से चेहरे की त्वचा, आँखों एवं नाड़ी-संस्थान पर प्रभाव पड़ता है। त्वचा लाल हो जाती है तथा घाव हो जाते हैं। होंठों के किनारों में घाव हो जाते हैं, जिनसे रक्त निकलने लगता है। इसे 'एन्यूलर स्टोमैटाइटिस' कहते हैं। होंठों के किनारे फटने लगते हैं इसे 'चिलोसिस' कहा जाता है। जीभ पर छाले पड़ जाते हैं। जीभ का रंग स्वाभाविक न रहकर कुछ बैंगनी सा हो जाता है, इसे 'ग्लोसिट्स' कहते (चित्र 14.8) हैं।

चित्र 14.8 : **अराइबोफ्लेविनोसिस**

2. आँखों पर प्रभाव पड़ना–राइबोफ्लैविन की हीनता से आँखें प्रभावित होती है। आँखों की रोशनी सह पाने की क्षमता क्षीण हो जाती है। आँखों से चिपचिपा पदार्थ निकलने लगता है। समय पर उपचार नहीं होने पर आँखों की रोशनी सदा के लिए जा सकती है।
3. शारीरिक वृद्धि रुक जाती है। भूख नहीं लगती। पाचन शक्ति क्षीण हो जाती है।
4. राइबोफ्लेविन की हीनता से पुरुषों के अंडकोष पर घाव हो जाते हैं।

राइबोफ्लेविन के प्राप्ति स्त्रोत :

राइबोफ्लेविन की मात्रा भोजन में बहुत कम होती है। इसके प्रमुख साधन यकृत, सूखा खमीर, दूध, अण्डा, मांस, मछली, साबुत अनाज, दालें तथा हरी पत्ती वाली सब्जियाँ हैं।

विटामिन बी$_3$ (नियासिन)

नियासिन तत्त्व की खोज पैलाग्रा रोग से हुई। नियासिन को 'पैलाग्रा विरोधक विटामिन' भी कहते हैं। पैलाग्रा इटेलिक शब्द है जो दो शब्दों 'पैले' तथा 'आगरा' के मिलने से बना है। इटली भाषा में पैले शब्द का अर्थ होता है, भद्दा या खुरदरा तथा आगरा का अर्थ है–त्वचा (चित्र 14.9)।

चित्र 14.9 : **पैलेग्रा**

नियासिन के कार्य :

1. कार्बोज, वसा एवं प्रोटीन के चयापचय में–नियासिन कार्बोज, वसा एवं प्रोटीन के चयापचय में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।
2. नाड़ी-संस्थान को स्वस्थ रखने में–नियासिन नाड़ी-संस्थान को स्वस्थ रखने में सहायक होता है।
3. शारीरिक वृद्धि में सहायक–शारीरिक वृद्धि की गति को बढ़ाने में नियासिन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
4. आँखों को स्वस्थ रखने में–नियासिन विटामिन 'ए' को रेटीनॉल में परिवर्तित करने में भी सहायक होता है। इस प्रकार नियासिन

आँखों को स्वस्थ रखने एवं आँखों की ज्योति बरकरार रखने में भी सहायक होता है।

5. त्वचा को स्वस्थ एवं कान्तिमय बनाये रखने के लिए नियासिन आवश्यक है।

नियासिन की कमी के प्रभाव

भोजन में नियासिन की कमी कई महीनों तक रहने के पश्चात् पैलाग्रा के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। पैलाग्रा को 3D's रोग भी कहते हैं। क्योंकि इसमें तीन लक्षण पाये जाते हैं, जिनका प्रथम अक्षर 'D' होता है।

1. **अतिसार (Diarrhoea)–** अतिसार पाचन संस्थान में विकार उत्पन्न होने से होता है। पाचन अंगों में गड़बड़ियाँ उत्पन्न हो जाती है। होंठों की श्लेष्मिक कला क्षीण होकर नष्ट हो जाती है जिसके कारण मुँह पूरी तरह से नहीं खुल पाता है, फिर जीभ, गला व मुँह प्रभावित होते हैं। जीभ व होंठ गहरे लाल रंग के हो जाते हैं। किसी भी भोजन को खाने व निगलने में बहुत परेशानी होती है।
2. **त्वचा का रोग (Dermatitis)–** नियासिन के अभाव से त्वचा का रोग हो जाता है। शरीर के वे भाग जो खुले रहते हैं तथा जिनका सीधा सम्पर्क सूर्य प्रकाश से होता है अधिक प्रभावित होते हैं। फिर त्वचा खुरदरी लाल हो जाती है, पपड़ी पड़ने लगती है, छोटे-छोटे दाने आ जाते हैं। इन पर घाव हो जाते हैं।
3. **पागलपन (Dementia)–** मानसिक विक्षिप्तता पैलाग्रा रोग का सबसे गम्भीर लक्षण है। यदि पैलाग्रा रोग गम्भीर रूप धारण कर लेता है तो पागलपन जैसे लक्षण दृष्टिगोचर हो जाते हैं। इस स्थिति में नाड़ी-संस्थान में विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। रोगी हमेशा तनावग्रस्त रहता है। स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है। बेहोशी के दौरे पड़ने लगते हैं। रोगी द्वारा अनैच्छिक मल-मूत्र का विसर्जन होने लगता है।

नियासिन के प्राप्ति स्त्रोत

नियासिन का प्रमुख प्राप्ति स्त्रोत सूखा खमीर है, इसके अतिरिक्त यह यकृत, मूंगफली, साबुत अनाज, दालें, मांस, मछली, दूध, अण्डा तथा अन्य सब्जियों में भी पाया जाता है।

विटामिन 'B_{12}'

विटामिन 'B_{12}' B समूह का एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विटामिन है। इस विटामिन में कोबाल्ट जो एक महत्त्वपूर्ण खनिज लवण है, पाया जाता है। कोबाल्ट की उपस्थिति के कारण ही इस विटामिन को सामूहिक रूप से साएनोकोबैलेमिन भी कहते हैं।

विटामिन 'B_{12}' के कार्य :

1. विटामिन 'B_{12}' को-एन्जाइम की तरह कार्य करता है।
2. विटामिन 'B_{12}' लाल रक्त कणिकाओं (RBC) की परिपक्वता के लिए आवश्यक है।
3. यह विटामिन, कार्बोज, वसा एवं प्रोटीन के चयापचय में सक्रिय भूमिका निभाता है।
4. विटामिन 'B_{12}' भूख को बढ़ाता है तथा यकृत में वसा को संग्रहित होने से बचाता है।
5. फोलिक अम्ल तथा नाड़ी ऊतकों में होने वाले चयापचय में सहायक होता है।

विटामिन 'B_{12}' की कमी के प्रभाव

विटामिन 'B_{12}' की कमी से विशेष प्रकार का रक्ताल्पता रोग हो जाता है जिसे 'पर्निसियस रक्ताल्पता' कहते हैं। जब आमाशयिक रस में पर्याप्त मात्रा में अन्त:कारक तत्त्व उपस्थित नहीं होता है तब विटामिन 'B_{12}' का अवशोषण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। फलत: शरीर में इस विटामिन की कमी हो जाती है।

पर्निसियस रक्ताल्पता के लक्षण–

1. मुँह में छाले पड़ जाते हैं।
2. आमाशय की वे कोशिकाएँ जिनसे आमाशयिक रस तथा एन्जाइम्स निष्कासित होते हैं, वे क्षीण होकर नष्ट होने लगते हैं।
3. अस्थिमज्जा के बाह्य स्वरूप में परिवर्तन आ जाते हैं।
4. रक्त में लाल कणिकाओं की संख्या अत्यन्त कम हो जाती है।
5. रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा बहुत कम हो जाती है।
6. त्वचा पीली हो जाती है।
7. नाड़ियों में विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

विटामिन 'B_{12}' के प्राप्ति स्त्रोत

विटामिन 'B_{12}' केवल प्राणिज भोज्य पदार्थों में ही पाया जाता है। वनस्पतिज भोज्य पदार्थों में यह बिलकुल भी नहीं होता है। भेड़, बकरी, सूअर, बैल आदि के यकृत इस विटामिन प्राप्ति के उत्कृष्ट साधन हैं। मांस, मछली, अंडा, वृक्क आदि में भी इसकी प्रचुरता रहती है। दूध में भी यह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

फोलिक अम्ल

फोलिक अम्ल मनुष्यों, जानवरों एवं पक्षियों में पोषणहीनता से उत्पन्न होने वाले रक्ताल्पता को ठीक करता है। यह सूक्ष्म जीवाणुओं में वृद्धि कारक की तरह काम करता है।

फोलिक अम्ल के कार्य

1. फोलिक अम्ल विटामिन 'B_{12}' के साथ मिलकर अस्थिमज्जा में लाल रक्त कणिकाओं के निर्माण तथा परिपक्वता के लिए अत्यावश्यक है।
2. फोलिक अम्ल प्यूरीन्स तथा पाइरीमिडिन के निर्माण में को-एन्जाइम की तरह कार्य करता है।
3. फोलिक अम्ल हिस्टीडिन, टाइरोसिन तथा ट्रिप्टोफैन अमीनो अम्ल के चयापचय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. फोलिक अम्ल शरीर में विभिन्न जैविक तथा रासायनिक प्रक्रियाओं को सम्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

फोलिक अम्ल की कमी के प्रभाव

फोलिक अम्ल की कमी से लाल रक्त कणिकाओं का निर्माण कम होने लगता है जिससे रक्त में लाल रक्त कणिकाओं की कमी हो जाती है। इसे 'मैगालोब्लास्टिक रक्ताल्पता' कहते हैं। मैगलोब्लास्टिक रक्ताल्पता की स्थिति में रक्त में हीमोग्लोबिन की प्रतिशत मात्रा अत्यन्त कम हो जाती है तथा लाल रक्त कणिकाओं की संख्या घटकर बहुत कम हो जाती है।

अविकसित तथा विकासशील देशों के शिशुओं एवं बालकों में रक्ताल्पता अधिक देखने को मिलती है।

अधिकता के प्रभाव

फोलिक अम्ल जल में अंशत: घुलनशील होता है। फोलिक अम्ल के अधिक सेवन से इसका निष्कासन मूत्र द्वारा नहीं हो पाता है। जिसके फलस्वरूप वृक्क नलिकाओं में रवे के रूप में इकट्ठा हो जाता है। वृक्क में पथरी जम जाती है।

फोलिक अम्ल प्राप्ति के स्त्रोत

फोलिक एसिड भी प्रमुख रूप से सूखे खमीर, यकृत, गेहूँ का भ्रूण, चावल की ऊपरी परत, साबुत अनाज, दाल व हरे पत्तों वाली सब्जियों में पाया जाता है।

खनिज लवण

कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन व विटामिन के अतिरिक्त एक और तत्त्व शरीर में उपस्थिति रहता है, जिसे खनिज तत्त्व कहते हैं। यह तत्त्व शरीर में वृद्धि व निर्माण में सहायक होता है। वनस्पति अथवा जन्तु ऊतकों को जलाने पर जो भस्म अवशेष रहती है, वह वास्तव में खनिज ही है। हमारे शरीर के भार का 4 प्रतिशत भाग खनिज तत्त्व से ही बना होता है। ये खनिज तत्त्व अकार्बनिक होते हैं अर्थात् इनमें कार्बन की उपस्थिति नहीं होती है।

शरीर में विद्यमान खनिज लवणों की मात्रा के आधार पर इन्हें दो भागों में विभाजित किया गया है (तालिका सं. 14.3)–

1. मुख्य खनिज/वृहत खनिज तत्त्व–वे खनिज तत्त्व जिनकी शरीर में मात्रा अधिक रहती है। इन्हें भोज्य पदार्थों के माध्यम से लेना आवश्यक होता है।
2. गौण खनिज/सूक्ष्म खनिज तत्त्व–ये खनिज तत्त्व शरीर में अत्यन्त ही न्यून मात्रा में विद्यमान रहते हैं। ये खनिज तत्त्व शारीरिक क्रियाओं के नियंत्रण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

तालिका सं. 14.3 : **खनिज तत्त्वों का वर्गीकरण**

मुख्य खनिज तत्त्व	गौण खनिज तत्त्व
कैल्सियम	लोहा
फास्फोरस	ताँबा
पोटेशियम	कोबाल्ट
सल्फर	ऐल्यूमीनियम
सोडियम	सेलेनियम
क्लोरीन	जिंक
मैग्नीशियम	फ्लोरीन
	ब्रोमीन
	आयोडीन
	क्रोमियम
	कैडमियम
	मोलिब्डेनम
	सिलिकन
	निकेल
	वेनेडियम

कैल्सियम

शरीर में अन्य खनिज लवणों की अपेक्षा कैल्सियम की मात्रा सबसे अधिक रहती है। खनिज तत्त्वों में कैल्सियम की मात्रा सबसे अधिक होती है। कुल खनिज तत्त्वों की आधी मात्रा अथवा शरीर के भार का 2 प्रतिशत भाग कैल्सियम का बना होता है। शरीर में कुल जमा कैल्सियम का 99 प्रतिशत भाग अस्थियों एवं दाँतों में उपस्थित रहता है तथा शेष 1 प्रतिशत कैल्सियम अन्य कोमल तन्तुओं, रक्त के सीरम तथा अन्य तरल पदार्थों में पाया जाता है।

कैल्सियम के कार्य

1. अस्थियों एवं दाँतों का निर्माण करना–भ्रूण के विकास के दौरान ही भ्रूण में एक मजबूत परन्तु लचीला प्रोटीन मैट्रिक्स हड्डियों के निर्माण के लिए बनना शुरू हो जाता है। उम्र बढ़ने के साथ ही उपास्थि में कैल्सियम का जमाव होने लगता है और अधिकांश उपास्थि अस्थि में बदल जाती है। क्योंकि उम्र बढ़ने के साथ ही प्रोटीन मैट्रिक्स कड़े होने लगते हैं और इसमें कैल्सियम, फास्फोरस तथा अन्य खनिज लवण आकर जमने लगते हैं। फलत: अस्थियाँ कठोर होने लगती हैं। अस्थियों की ही भाँति दाँतों में भी कैल्सियम की अत्यधिक मात्रा विद्यमान रहती है।
2. शारीरिक वृद्धि एवं विकास–कैल्सियम की कमी का प्रभाव प्रोटीन पर पड़ता है। प्रोटीन शारीरिक वृद्धि एवं विकास के लिए नितान्त आवश्यक है।
3 रक्त को जमाने में सहायक–कैल्सियम रक्त जमने की प्रक्रिया में सहायक है।

रक्त बिम्बाणु $\xrightarrow{Ca^{++}}$ थ्रौम्बोप्लास्टिन

थ्रौम्बोप्लास्टिन + कैल्सियम + विटामिन 'K' + ट्रिप्टेन एन्जाइम = प्रोथ्रौम्बिन

प्रोथ्रौम्बिन + Ca^{++} + विटामिन 'K' + रक्त फैक्टर V&VIII = थ्रौम्बिन

थ्रौम्बिन + फाइब्रिनोजन = फाइब्रिन

फाइब्रिन + रक्त कणिकाएँ = रक्त का थक्का

4. मांसपेशियों के संकुचन पर नियन्त्रण–कैल्सियम मांसपेशियों के फैलने एवं सिकुड़ने की क्रिया को नियंत्रित कर उन्हें क्रियाशील बनाये रखने में सहयोग देता है।
5. हृदय की गति को सन्तुलित बनाये रखना–हृदय की मांसपेशियों के लिए इन्हें आवृत किये तन्तुओं के तरल पदार्थों में पर्याप्त मात्रा में कैल्सियम का रहना आवश्यक होता है।
6. एन्जाइम्स को सक्रिय बनाने में कैल्सियम सहायक है।
7. कैल्सियम कोशिका भित्तियों में से द्रव्यों के आने-जाने को नियन्त्रित करता है।

कैल्सियम की कमी के प्रभाव

1. कैल्सियम की कमी से वृद्धि रुक जाती है। इसकी कमी से अस्थियों में 'कैल्सिफिकेशन' की क्रिया नहीं हो पाती है। अस्थियों का कमजोर एवं दुर्बल होना तथा उनमें विकृति आना 'रिकेट्स' रोग कहलाता है।
2. प्रौढ़ावस्था में कैल्सियम की कमी से 'ऑस्टोमलेशिया' नामक रोग हो जाता है। इस रोग में शरीर की अस्थियों से कैल्सियम का विसर्जन अधिक होने लगता है। इससे ग्रस्त रोगी को हलकी-सी चोट भी लग जाए तो अस्थियाँ टूट जाती हैं।
3. गर्भावस्था में कैल्सियम की कमी होने से गर्भ में पल रहा गर्भस्थ शिशु माता के शरीर से ही कैल्सियम का अवशोषण करने लगता है। अत: गर्भवती स्त्री की श्रोणि-मेखला संकुचित हो जाती है।
4. वृद्धावस्था में कैल्सियम की कमी से हड्डियाँ कमजोर होकर टूटने लगती हैं जिससे ऑस्टोपोरोसिस नामक रोग हो जाता है।

कैल्सियम की अधिकता के प्रभाव

शरीर में कैल्सियम की अधिकता 'हाइपरकैल्सिमिया' कहलाती है। कैल्सियम की अधिकता बच्चों व प्रौढ़ व्यक्तियों, दोनों में हो सकती है। इस स्थिति में भूख कम हो जाती है। वमन होती है, मांसपेशियाँ ढीली हो जाती हैं। रक्त में कैल्सियम की मात्रा बढ़ जाती है, साथ ही रक्त में यूरिया, प्लाज्मा, कोलेस्ट्राल भी बढ़ जाते हैं।

कैल्सियम की प्राप्ति के साधन

सभी प्रकार के दूध (ताजा मक्खन, पाउडर या सूखा दूध, छाछ आदि) कैल्सियम प्राप्ति के साधन है। कैल्सियम की प्राप्ति के अन्य साधन विभिन्न हरे पत्ते वाली सब्जियाँ, पत्तागोभी, फूलगोभी, शलजम, हरी

चित्र 14.10 : **फ्लोरोसिस**

सरसों, दाल व सूखे मेवे आदि है।

फास्फोरस

कैल्सियम के बाद खनिज तत्त्वों में फास्फोरस की मात्रा अधिकतम होती है। हमारे कुल शरीर भार का 1 प्रतिशत भाग फास्फोरस का बना होता है। कुल फास्फोरस का 80 प्रतिशत भाग कैल्सियम के साथ मिलकर कैल्सियम फास्फेट बनाता है जिससे अस्थियाँ एवं दाँतों का निर्माण होता है।

फास्फोरस के कार्य :

1. हड्डियों एवं दाँतों के निर्माण में–यह कैल्सियम के साथ मिलकर कैल्सियम फास्फेट बनाता है जो कि एक अघुलनशील लवण होता है, जो अस्थियों एवं दाँतों के निर्माण में अहम भूमिका निभाता है।
2. फास्फोरस न्यूक्लियोप्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्ल के निर्माण के लिए एक अति आवश्यक एवं नितांत महत्त्वपूर्ण खनिज लवण है।
3. कार्बोज के चयापचय में फास्फोरस की अहम भूमिका होती है।
4. फास्फोरस में अधिक हाइड्रोजन आयन से संयुक्त होने की क्षमता होने के कारण एक बफर की तरह कार्य करता है।
5. फास्फोरस ऊर्जा उत्पादन क्रिया में भी सहायक होता है।
6. यह कोशिकाओं के विकास एवं निर्माण में सहायता प्रदान करता है।
7. फास्फोरस शरीर में कैल्सियम के शोषण को बढ़ाता है।

फास्फोरस की कमी का प्रभाव

फास्फोरस अधिकतम खाद्य पदार्थों में उन्मुक्त रूप से पाया जाता है, अत: इसकी कमी के प्रभाव नहीं पाये जाते। परन्तु जो व्यक्ति अम्ल का अधिक प्रयोग करते हैं, उनके शरीर में फास्फोरस की कमी हो जाती है। इसकी कमी से उत्पन्न लक्षण थकान, भूख न लगना, हड्डियों का खनिज लवण विहीनीकरण होने लगता है।

फास्फोरस की प्राप्ति के साधन

वह आहार, जिसमें अच्छी मात्रा में कैल्सियम व प्रोटीन की

उपस्थिति होगी, उसमें फास्फोरस भी उपस्थित होगा। दूध, अण्डा, मांस, मछली, मुर्गी, आटा, तिल, जई का आटा आदि इसके उत्कृष्ट साधन हैं। अनाज, दालें, सूखे मेवे, मटर, चना, चुकन्दर, बादाम आदि भी इसके अच्छे साधन हैं।

लोहा

लोहे की उपस्थिति हमारे शरीर में बहुत कम होती है, पर यह हमारे शरीर के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। एक सामान्य व्यक्ति के शरीर में 4 से 5 ग्राम लोहा उपस्थित रहता है। यह शरीर को स्वस्थ रखने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण खनिज लवण है।

लोहे के कार्य

1. लोहा हीमोग्लोबिन के निर्माण के लिए अत्यन्त ही आवश्यक खनिज लवण है। हीमोग्लोबिन में हीम लोहा तथा ग्लोबिन प्रोटीन होता है। हीम (लोहा) के अभाव में हीमोग्लोबिन का निर्माण नहीं होता।
2. पेशियों में लोहा मायोग्लोबिन के रूप में उपस्थित होता है जो कि संकुचन क्रिया के लिए अति आवश्यक है।
3. श्वसन क्रिया में भाग लेने वाले एन्जाइम्स का निर्माण लोहे से ही होता है।
4. शरीर में प्रतिरक्षी कोशिकाओं का निर्माण करता है।

लोहे की कमी के प्रभाव

लोहे की कमी से 'रक्ताल्पता' रोग हो जाता है। रक्ताल्पता रक्त में हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य से कम होने पर उत्पन्न स्थिति है। यह रोग अधिकतर गर्भवती माँ एवं 1 वर्ष के शिशु जिन्हें माता का दूध छुड़ा दिया जाता है, को अधिक होता है। इस रोग की वजह से शिशु की त्वचा का रंग पीला पड़ जाता है। बच्चों की वृद्धि एवं विकास धीमा हो जाता है। गर्भावस्था में भ्रूण के रक्त के निर्माण के लिए अधिक लोहे की आवश्यकता पड़ती है। आवश्यकता पूरी न होने पर अधिक रुकावट, साँस लेने में परेशानी, चक्कर आना तथा पीली त्वचा आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

लौह प्राप्ति के साधन

अण्डा, मांस, यकृत तथा सूखे फल जैसे–खुमानी, आलू बुखारा, किशमिश लोहे की प्राप्ति के प्रमुख साधन हैं। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, दालें, बाजरा, रागी, गुड़, तिल, बथुआ, पुदीना आदि लौह की प्राप्ति के उत्तम साधन है।

अन्य मुख्य खनिज तत्व :-

प्रकार	खनिज लवण	कार्य	कमी का प्रभाव	प्राप्ति के साधन
मुख्य खनिज तत्त्व	पोटेशियम	— अम्ल-क्षार सन्तुलन को नियमित करना — शरीर के तरल पदार्थों के सन्तुलन में — मांसपेशियों के संकुचन में सहायक — ग्लाइकोजन के संश्लेषण में — शरीर की वृद्धि एवं विकास में सहायक	— पेशियों में पीड़ादायक संकुचन — चिड़चिड़ापन एवं क्रोध — आलस्य — हृदय के धड़कने की गति में असंतुलन — मांसपेशियाँ कमजोर होना	दाल, तेलबीज, दूध, दही, पनीर, अण्डा, मांस, मछली, मुर्गी, फल एवं सब्जियाँ।
	सोडियम	— हृदय के धड़कने की गति को नियमित रखना — जल सन्तुलन में सहायक — नाड़ियों के उद्दीपन में सहायक — अमीनो अम्ल एवं कार्बोज के अवशोषण में सहायक — मांसपेशियों के संकुचन में सहायक	— जी मिचलाना — कमजोरी, थकावट — मांसपेशियों में तीव्र पीड़ादायक संकुचन — ऐंठन होना	दूध, मांस, मछली, अण्डा, दही, दाल, सूखे मेवे, हरी सब्जियाँ।
	सल्फर	— नाखून एवं बालों की वृद्धि में सहायक — त्वचा को स्वस्थ एवं कांतिमय बनाना — पाचक रसों, एन्जाइम्स, हार्मोन्स, विटामिन आदि के निर्माण में सहायक — प्रोटीन के पाचन, शोषण एवं उपायचय में सहायक	— बालकों की शारीरिक वृद्धि रुक जाती है — त्वचा रूखी एवं कांतिहीन दिखती है — नाखूनों एवं बालों की बढ़वार रुक जाती है	मुर्गी, मछली, अण्डा, दूध एवं दूध से बने व्यंजन, पनीर, मूंगफली, मसूर की दाल।

प्रकार	खनिज लवण	कार्य	कमी का प्रभाव	प्राप्ति के साधन
	मैग्नीशियम	— कैल्सियम तथा फास्फोरस के चयापचय में सहायक — एन्जाइम्स को सक्रिय बनाने में सहायक — नाड़ी संस्थान की संवेदना शक्ति को सन्तुलित बनाने में	— मांसपेशिय थकान — संज्ञाहीनता — हाथ-पैरों की पेशियों में पीड़ादायक संकुचन — निराशा अनुभव करना	सभी भोज्य पदार्थ अनाज, दाल, तेलबीज, सूखे मेवे आदि में प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहता है।
	आयोडीन	— शारीरिक वृद्धि एवं विकास — शिशु के मानसिक विकास में — कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को कम करने में — धात्री माता के दुग्ध निर्माण में — आधारीय चयापचय को नियमित व नियंत्रित करना	— घेंघा या गलगण्ड रोग — क्रेटिनिज्म रोग — मिक्सीडीमा	समुद्री नमक, समुद्री मछलियां, समुद्री-घास मुर्गी का अण्डा।
	फ्लोरीन	— अस्थियों के सामान्य खनिजीकरण के लिए आवश्यक है — अस्थियों के तन्तुओं के उत्तम स्वास्थ्य के लिए — दाँतों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए	— डेंटल फ्लोरोसिस — कंकाल फ्लोरोसिस	दूध, पनीर, अण्डा, आलू, समुद्री मछली, मांस।
	ताँबा	— लोहे के अवशोषण एवं चयापचय में — लाल रक्त कणिकाओं के निर्माण में सहायक — अस्थियों के सामान्य विकास में — एन्जाइम्स के निर्माण में — मेलानिन के निर्माण में	— शारीरिक विकास में कमी — रक्ताल्पता रोग — संयोजी ऊतकों का निर्माण नहीं होना	यकृत, मांस, वृक्क, दालें, अनाज, अण्डा। जड़ वाली सब्जियाँ, सूखे मेवे।
	जस्ता	— घाव भरने में — अस्थियों के विकास में — मस्तिष्क के विकास में — सामान्य वृद्धि में सहायक — प्रजनन अंगों के विकास में	— घाव देरी से भरना — सामान्य वृद्धि एवं विकास बाधित होता है — बाल झड़ने लगते हैं — त्वचा में घाव हो जाता है	हेरिंग्स तथा ओएस्टर मछली, मांस, अण्डा, गेहूँ की भूसी, जई का आटा, दाल, सूखे मेवे।
	मैंगनीज	— शारीरिक वृद्धि एवं विकास में — प्रजनन कार्यों में — हार्मोन के स्रावण में — चयापचय में सहायक — यकृत के उत्तम स्वास्थ्य के लिए सहायक	— जानवरों के प्रजनन अंगों का विकास नहीं हो पाता — यकृत में वसा का जमाव हो जाता है। — जानवरों का विकास नहीं हो पाता	गेहूँ की भूसी, मक्का की चोकर, मूंगफली के छिलके, सूखे मटर, जामुन, चाय, काफी, सूखे मेवे।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. विटामिन शब्द कैशमियर फंक द्वारा 1912 में दिया गया।
2. विटामिन 'ए' मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं–रेटीनॉल, एल्डीहाइड, रेटीनॉइक अम्ल तथा विटामिन 'ए-2'।
3. विटामिन 'ए' शारीरिक विकास एवं वृद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
4. विटामिन 'ए' मुख्य रूप से चौलाई की पत्तियाँ, गाजर, पुदीना, पालक आदि में पाया जाता है।
5. शरीर में विटामिन 'डी' के अभाव के कारण रक्त में एल्केलाइन फास्फेटेज की मात्रा बढ़ जाती है।
6. विटामिन 'के' का मुख्य कार्य रक्त का थक्का जमाना है।
7. विटामिन 'सी' की कमी से स्कर्वी रोग हो जाता है।
8. राइबोफ्लेविन हार्मोन को नियंत्रित एवं नियमित करने में सहायक है।
9. कैल्सियम की कमी से अस्थियाँ कमजोर तथा वृद्धि रुक जाती है।
10. एक सामान्य व्यक्ति के शरीर में 4-5 ग्राम लोहा उपस्थित होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें :

(i) आयोडिन की कमी से कौनसा रोग होता है–

(अ) गलगण्ड (ब) रिकेट्स

(स) रतौंधी (द) फ्लोरोसिस

(ii) एक सामान्य व्यक्ति के शरीर में लोहे की मात्रा होती है–

(अ) 5-6ग्राम (ब) 4-5 ग्राम

(स) 3-4 ग्राम (द) 6-7 ग्राम

(iii) पेलाग्रा रोग का सबसे गंभीर लक्षण है–

(अ) त्वचा का रोग (ब) अतिसार

(स) पागलपन (द) इनमें से कोई नहीं

(iv) थायमिन की कमी से होने वाला रोग है–

(अ) बेरी-बेरी (ब) रतौंधी

(स) रक्ताल्पता (द) पेलाग्रा

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(i) विटामिन 'के'.....के लिये आवश्यक है।

(ii) कैरेटोमलेशिया.....की कमी से होता है।

(iii) अस्थि मृदुलता को.....भी कहते हैं।

(iv) फ्लोरीन की अधिकता से.....रोग हो जाता है।

3. विटामिन कितने प्रकार के होते हैं? समझाइए।
4. भोजन में फोलिक अम्ल का क्या महत्त्व है?
5. विटामिन 'ए' के कार्यों को समझाइए।
6. शरीर पर थायमिन की कमी के प्रभाव बताइए।
7. लोहे के कार्य व कमी के प्रभाव समझाइए।
8. नियासिन की कमी के क्या प्रभाव है?

उत्तरमाला

1. (i) अ (ii) ब (iii) स (iv) अ
2. (i) रक्त का थक्का जमाने में (ii) विटामिन-ए (iii) रिकेट्स (iv) फ्लोरोसिस

अध्याय 15

सन्तुलित आहार एवं भोज्य समूह

मानव शरीर को पोषक तत्त्वों की निरन्तर आवश्यकता होती है और ये पोषक तत्त्व ही हमारी सेहत को बनाये रखते हैं। इसीलिए इन्हें रोजाना अपने आहार में सम्मिलित करना आवश्यक होता है। और यह तब ही सम्भव है जब हम सन्तुलित आहार ग्रहण करें।

सन्तुलित आहार–वह आहार जिसमें पर्याप्त मात्रा में सभी पोषक तत्त्व (जैसे–कार्बोज, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण एवं विटामिन) व्यक्ति की उम्र व लिंग के अनुसार विद्यमान हो जो व्यक्ति की शारीरिक वृद्धि एवं विकास के लिए पर्याप्त हो, सन्तुलित आहार कहलाता है।

तालिका 15.1 दर्शाती है कि इन भोज्य पदार्थों को अपने एक दिन के आहार में सम्मिलित करना चाहिये (वयस्क पुरुष एवं महिला)।

तालिका संख्या 15.1

	वयस्क पुरुष (ग्रा.)	वयस्क महिला (ग्रा.)
अनाज	400	300
दाल	70	60
हरी पत्तेदार सब्जी	100	125
अन्य सब्जी	75	75
जड़ वाली सब्जी	75	50
फल	30	30
दूध	200	200
वसा	35	30
चीनी एवं गुड़	30	30

सन्दर्भ : NIN (1985)

ऊपर दी गई तालिका में सभी भोज्य पदार्थ कच्ची अवस्था में है। पोषक तत्त्व विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों में उपस्थित होते हैं। किसी एक खाद्य में सभी पौष्टिक तत्त्व उपस्थित नहीं होते हैं। अत: हमें अपने आहार में विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ सम्मिलित करने चाहिये।

भोज्य समूह– भोजन को उसके पोषक तत्त्वों के आधार पर मुख्य तौर पर ग्यारह भागों में बाँटा गया है जैसे (i) अनाज और मिलट (Millet), (ii) दालें, (iii) मेवे एवं तिलहन, (iv) सब्जियाँ, (v) फल, (vi) दूध व दूध के पदार्थ, (vii) अण्डा, (viii) मांस एवं मछली, (ix) तेल एवं घी, (x) शर्करा एवं कार्बोज, (xi) मसाले।

सन्तुलित आहार प्राप्त करने के लिए इन सभी ग्यारह खाद्य समूहों में से खाद्य पदार्थ का उपयोग जरूरी माना गया, लेकिन इसको प्रयोग में लाने पर कुछ समस्याएँ सामने आई, जैसे ग्यारह समूहों को व्यक्ति के लिए याद रखना कठिन था तथा शाकाहारी लोगों के लिए सभी भोज्य समूह का उपयोग संभव नहीं था। अत: भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् (Indian council of medical research ICMR, 1989) की पोषण विशेषज्ञों की समिति ने ग्यारह भोज्य समूह को उनमें उपस्थित पौष्टिक तत्त्वों के आधार पर पाँच समूहों में सम्मिलित कर लिया (तालिका 15.2)।

भोजन मार्गदर्शिका के आधार पर पाँच भोज्य समूह–

तालिका संख्या 15.2

ग्यारह	पाँच
1. दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थ	1. दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थ
2. मांस, मछली, मुर्गी आदि	
3. अण्डे	2. प्रोटीन देने वाले भोज्य
4. दालें, फलियां एवं तिलहन	पदार्थ
5. अनाज	3. अनाज
6. आलू, शकरकंद, व कंदमूल	
7. खट्टे फल	
8. हरी पत्तेदार सब्जियाँ	4. फल एवं सब्जियाँ
पीली सब्जियाँ व फल	
9. अन्य सब्जियाँ व फल	
10. घी, तेल, मक्खन	5. वसा एवं शर्करा
11. गुड़, शक्कर आदि	

विभिन्न भोज्य समूहों में सम्मिलित भोज्य पदार्थ, तत्त्व एवं उनके कार्य संक्षेप में तालिका संख्या 15.3 में दिए गये हैं। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए हर भोज्य समूह कुछ पोषक तत्त्व ही प्रदान करता है, अत: सभी

तालिका संख्या 15.3 : **पाँच आधारभूत भोज्य समूह**

भोज्य समूह	भोज्य पदार्थ	प्राप्त होने वाले मुख्य तत्त्व	शारीरिक कार्य
1. शारीरिक निर्माण करने वाला समूह अ) दूध एवं दूध पदार्थ	दूध, दही, छाछ, पनीर, चीज, छेना खोया, दूध पाउडर कुल्फी, आदि	यह समूह कैल्सियम, फॉस्फोरस, राइबोफ्लेविन, विटामिन डी, विटामिन 'ए', वसा, प्रोटीन आदि का अच्छा स्रोत है, इसीलिए बच्चों के लिए ये पूर्ण पोषण कहलाता है	शरीर की वृद्धि व विकास करना, हड्डियों एवं दाँतों का निर्माण करना, शारीरिक क्रियाओं का नियमन करना
ब) मांस, मछली एवं अण्डा	बकरे, मुर्गे आदि का मांस, मछली एवं अण्डा	प्रोटीन, लौह तत्त्व, वसा, वसा में घुलनशील विटामिन एवं अन्य सूक्ष्म खनिज लवण प्राप्त होते हैं	शरीर की वृद्धि एवं विकास, हीमोग्लोबिन का निर्माण, ऊर्जा प्रदान करना
स) दालें, मेवे एवं तिलहन	मूँग, मसूर, चना, तुअर, अन्य फलियां, मेवे जैसे बादाम, अखरोट, काजू, नारियल, पिस्ता आदि। तिलहन जैसे- तिल, मूंगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी सरसों का तेल आदि	प्रोटीन, वसा, रेशे, आवश्यक वसीय अम्ल, विटामिन 'बी' समूह, खनिज लवण आदि के स्रोत हैं	शरीर की वृद्धि एवं विकास, ऊर्जा प्रदान करना, शारीरिक क्रियाओं का नियमन करना
2. सुरक्षात्मक भोज्य समूह फल एवं सब्जियां			
अ) पीले फल एवं सब्जियाँ, हरी पत्तेदार सब्जियाँ	पीले फल एवं सब्जियाँ, हरी पत्तेदार सब्जियाँ	बीटा-कैरोटीन, विभिन्न खनिज लवण, जल एवं रेशे	शारीरिक क्रियाओं का नियमन करना तथा विभिन्न रोगों से रक्षा करना जैसे रतौंधी, एनीमिया आदि
ब) खट्टे फल का समूह	सभी खट्टे फल जैसे-आँवला, संतरा, नीबू, मौसम्मी, अमरूद, टमाटर आदि	मुख्य तौर पर विटामिन 'सी' का स्रोत एवं अन्य खनिज लवण	दाँतों, हड्डियों एवं मसूड़े के स्वास्थ्य के लिए एवं अन्य शारीरिक क्रियाओं के नियमन हेतु
3. अन्य सब्जियाँ, फल एवं कंद-मूल	आलू, चुकंदर, बैंगन, प्याज, शकरकंद आदि, फल-केला, अंगूर, सेव, तरबूज आदि	खनिज लवण का मुख्य स्रोत, जल एवं रेशा।	ऊर्जा प्रदान करना
4. अनाज एवं मिलट	गेहूँ, मक्का, बाजरा, जौ, चावल,	कार्बोज, प्रोटीन, विटामिन 'बी' समूह,	ऊर्जा प्रदान करना, शारीरिक

भोज्य समूह को उचित मात्रा में दैनिक भोजन में सम्मिलित करना चाहिए।

यह सभी भोज्य समूह कौन-कौन से पोषक तत्त्व प्रदान करते हैं, देखते हैं।

1. शारीरिक निर्माण वाले भोज्य समूह (दालें, दुग्ध, मांस, मछली)।

इस समूह के भोज्य मुख्यत: प्रोटीन प्रदान करने वाले हैं। प्रोटीन शरीर में होने वाली टूट-फूट की मरम्मत का कार्य करता है। यह भोजन विटामिन 'बी' जैसे थायमिन, राइबोफ्लेविन और नियासिन भी प्रदान करता है। अण्डा, दुग्ध एवं यकृत लौह तत्त्व एवं कैल्सियम का अच्छा स्रोत है। इस भोज्य समूह की एक सर्विंग 5-6ग्राम प्रोटीन प्रदान करती है।

इस भोज्य समूह से भोजन का चयन करते समय निम्न बिन्दुओं को ध्यान रखना चाहिए-

(i) दाल समूह में सभी दालों एवं फलियों को सम्मिलित किया गया है जैसे-मूँग, मसूर, चना, उड़द, तुअर, मटर, साबुत दालें आदि। इनसे प्राप्त होने वाली प्रोटीन आंशिक रूप से पूर्ण होती है, जिनका अनाज या दुग्ध पदार्थों के साथ सेवन करने से पूर्ण बन जाती है।

उदाहरण के लिए दाल व चावल मिलाकर खिचड़ी, दही बड़ा इत्यादि। सोयाबीन में सर्वाधिक 42 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है।

(ii) तैलीय बीजों से प्रोटीन के अतिरिक्त वसा भी प्राप्त होती है जो आवश्यक वसीय अम्लों व ऊर्जा के अच्छे साधन हैं।

(iii) दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थ–यह समूह मुख्यत: दुग्ध एवं उससे बने पदार्थ में पाया जाता है। जैसे–छाछ, दही, पनीर, खोया, सूखा दूध आदि। इस वर्ग के भोज्य पदार्थों से मुख्यत: कैल्सियम, फॉस्फोरस, विटामिन 'बी' (राइबोफ्लेविन) व प्रोटीन प्राप्त होते हैं। दूध से प्राप्त होने वाला प्रोटीन पूर्ण या उत्तम प्रकार का होता है, क्योंकि इसमें सभी आवश्यक अमीनो अम्ल पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। यही कारण है कि शिशुओं के लिए पूर्ण आहार माना जाता है। इसी प्रकार दही जो कि लाभकारी जीवाणुओं द्वारा जमाकर बनाया जाता है और दूध से ज्यादा सुपाच्य होता है। पनीर व छेना दूध को फाड़कर या दुग्ध प्रोटीन के स्कन्दन से बनता है, जो मुख्यत: प्रोटीन व वसा प्रदान करता है। एक सामान्य व्यक्ति को प्रतिदिन 500 मि.ली. दूध या इसके बराबर दुग्ध पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

(iv) अण्डा, मांस, मछली, मुर्गी, यकृत आदि प्राणिज भोज्य पदार्थ हैं, इससे प्राप्त होने वाला प्रोटीन पूर्ण प्रोटीन या उत्तम प्रोटीन होता है। यह विशेषकर विटामिन बी-12 का मुख्य स्रोत है जो कि वानस्पतिक भोज्य पदार्थों में नहीं पाया जाता है।

2. सुरक्षात्मक भोज्य समूह (फल एवं सब्जियाँ)–इस समूह को चार भागों में बाँटा गया है–

(i) हरी पत्तेदार सब्जियाँ (पालक, मेथी, बथुआ, सरसों), पीले फल (आम व पपीता) तथा पीली सब्जियाँ (कद्दू, गाजर) इस समूह की सब्जियों में बीटा कैरोटिन बहुतायत में पाया जाता है जो शरीर में जाने के बाद विटामिन ए में परिवर्तित हो जाती है। ये सब्जियाँ कैल्सियम, लौह तत्त्व, राइबोफ्लेविन, फोलिक अम्ल तथा रेशे की भी अच्छी स्रोत है।

(ii) खट्टे फल–आँवला, नीबू, संतरा, अमरूद, सेहजन, टमाटर पत्तागोभी आदि सम्मिलित हैं। खट्टे फल विटामिन 'सी' का मुख्य स्रोत हैं।

(iii) कंद व मूल–इस समूह में आलू, शकरकंद, अरबी, जमीकंद व अन्य कंद-मूल आते हैं। यह समूह कार्बोहाइड्रेट का अच्छा स्रोत है एवं ऊर्जा प्रदान करता है।

(iv) अन्य फल एवं सब्जियाँ–यह वह समूह है जिसमें वह सारी फल एवं सब्जियाँ आती हैं जो उक्त तीनों वर्गों में सम्मिलित नहीं की गई हैं। जैसे–बैंगन, भिंडी, लौकी, तुरई, केला, सेव, नाशपत्ती आदि। इस समूह से 'बी' समूह के विटामिन, खनिज लवण व जल प्राप्त होते हैं।

उपरोक्त सभी फल एवं सब्जियाँ विटामिन, खनिज लवण एवं जल के अच्छे स्रोत हैं तथा शारीरिक क्रियाओं के नियंत्रण व नियमन एवं रोगों से रक्षा का कार्य करते हैं। मौसमी फल एवं सब्जियों को प्रतिदिन हमारे भोजन में सम्मिलित करना चाहिये। लगभग 300-400 ग्राम फल व सब्जियों का प्रतिदिन सेवन करना चाहिये।

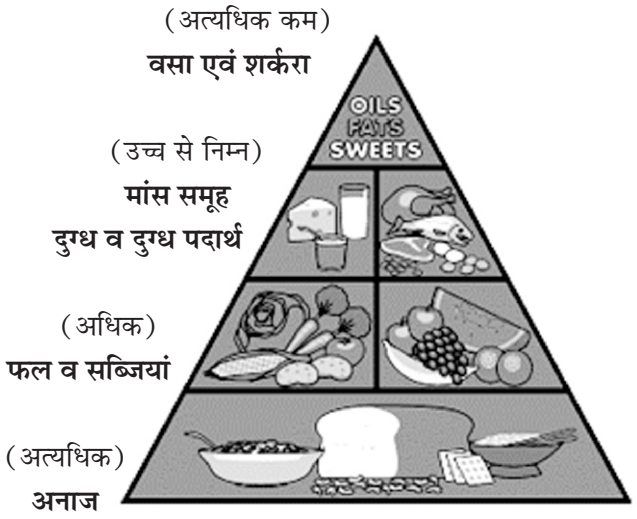

चित्र 15.1 : **आधारभूत पांच खाद्य समूह**

अनाज– इस समूह के भोज्य पदार्थ कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं ऊर्जा प्रदान करते हैं। अनाज जैसे गेहूँ, चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि सम्मिलित हैं। कार्बोहाइड्रेट के अतिरिक्त ये भोज्य पदार्थ विटामिन 'बी' समूह, कुछ खनिज लवण जैसे–केल्शियम, फॉस्फोरस व लौह तत्त्व तथा रेशा के भी अच्छे स्रोत हैं। अनाज में प्रोटीन का प्रतिशत (6-12 प्रतिशत) होता है। एक साधारण व्यक्ति को प्रतिदिन 300-400 ग्राम अनाज का सेवन करना चाहिये। इस समूह में कुछ अमीनो अम्ल की कमी होती है, इसी वजह से यह पूर्ण प्रोटीन नहीं कहलाता और यही कारण है कि अनाज के साथ दाल, दूध आदि मिलाकर सेवन करने से वो पूर्ण हो जाता है। इसमें वसा की मात्रा भी कम होती है, परन्तु शरीर के लिए वह आवश्यक होती है। क्योंकि उसमें वसीय अम्ल होते हैं, जो शरीर के लिए आवश्यक होते हैं। अनाज ऊर्जा के अतिरिक्त शरीर की वृद्धि एवं विकास तथा शारीरिक क्रियाओं का नियमन व नियंत्रण भी करता है।

वसा व शर्करा–यह वर्ग मुख्यत: ऊर्जा देता है। इसीलिए इसे 'ईंधन समूह' भी कहते है। चीनी एवं गुड़ खाने के तुरन्त बाद ऊर्जा देते हैं जबकि वसा एवं तेल संतृप्त अवस्था में होते हैं और हमारे शरीर में जमा रहते हैं। चीनी एवं गुड़ ज्यादातर मिठास लाने के लिए काम में आता है और लगभग 25 ग्राम प्रतिदिन प्रयोग में लेना चाहिये।

घी, तेल व मक्खन आदि से शुद्ध वसा व कार्बोहाइड्रेट प्राप्त होते हैं जो शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं। एक सामान्य वयस्क को अपने भोजन में प्रतिदिन 20 ग्राम वसा प्रयोग में लेनी चाहिये। अधिक वसा हमारे शरीर में जमा हो जाती है, जिससे मोटापा बढ़ जाता है और अन्य बीमारियों को न्योता देता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. भोज्य पदार्थों में उपस्थित पोषक तत्त्वों के आधार पर इन्हें पाँच भागों में बाँटा गया है।
2. दूध व दूध से बने पदार्थ मुख्यत: हड्डियों एवं दाँतों का निर्माण तथा शारीरिक वृद्धि व विकास का कार्य करते हैं।
3. प्रोटीन का मुख्य कार्य शरीर की वृद्धि व विकास करना तथा शरीर में होने वाली टूट-फूट की मरम्मत करना है।
4. सब्जियों व फलों का मुख्य कार्य शारीरिक क्रियाओं का नियंत्रण व नियमन करना तथा रोगों से रक्षा करना है।
5. गेहूँ, चावल, मक्का, जौ, बाजरा आदि अनाज समूह के सदस्य हैं, तथा मुख्यत: ऊर्जा प्रदान करने का कार्य करते हैं।
6. घी, तेल, मक्खन तथा शक्कर, गुड़, शहद आदि वसा व शर्करा समूह के सदस्य हैं एवं शरीर को केवल ऊर्जा प्रदान करते हैं।
7. एक साधारण व्यक्ति को प्रतिदिन 300-400 ग्राम अनाज व मौसमी फल एवं सब्जियां प्रतिदिन 300-400 ग्राम लेनी चाहिए।
8. खट्टे-फल एवं सब्जियों में विटामिन-सी बहुतायत मात्रा में पाया जाता है।
9. दुग्ध से प्राप्त होने वाला प्रोटीन पूर्ण व उत्तम प्रकार का होता है।
10. प्रस्तावित आहारीय मात्राएँ पोषक तत्त्वों की आहार द्वारा प्राप्त वह निरूपित मात्रा है जो समुदाय विशेष के सभी व्यक्तियों की पौषणिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) वसा एवं शर्करा मुख्य रूप से प्रदान करते हैं?

(अ) प्रोटीन (ब) ऊर्जा

(स) विटामिन (द) खनिज लवण

(ii) सुरक्षात्मक भोज्य समूह है?

(अ) फल एवं सब्जियाँ (ब) अनाज

(स) दालें (द) उपरोक्त सभी

(iii) दुग्ध व दुग्ध पदार्थ में मुख्यत: पाया जाता है?

(अ) विटामिन-सी (ब) थायमिन

(स) कैल्सियम (द) लौह तत्त्व

(iv) प्रतिदिन एक वयस्क पुरुष व महिला को दालों की मात्रा (ग्राम में) लेनी चाहिए?

(अ) 50-60 (ब) 60-70

(स) 70-80 (द) 40-50

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(i) बीटा कैरोटीन शरीर में जाने के बाद.....में परिवर्तित हो जाता है?

(ii) एक साधारण व्यक्ति को प्रतिदिन.....अनाज का सेवन करना चाहिए?

(iii) खट्टे फल एवं सब्जियों में मुख्यत:.....पाया जाता है?

(iv) प्राणिज भोज्य पदार्थ.....के उच्च स्रोत हैं?

(v) .....वसा व.....शर्करा का प्रतिदिन सेवन करना चाहिए?

3. संतुलित आहार किसे कहते हैं? पोषक तत्त्वों के आधार पर भोज्य समूह को कितने भागों में बाँटा गया है?
4. पाँच आधारभूत भोज्य समूहों की तालिका बनाकर वर्गीकरण कीजिए?
5. शारीरिक निर्माण वाले भोज्य समूहों को समझाइये?
6. सुरक्षात्मक भोज्य समूह को कितने भागों में बाँटा गया है समझाइये?

उत्तरमाला :

1. (i) ब (ii) अ (iii) स (iv) ब
2. (i) विटामिन-ए (ii) 300-400 ग्राम (iii) विटामिन-सी (iv) प्रोटीन (v) 25 ग्राम, 30 ग्राम

अध्याय 16

पाक क्रिया एवं भोजन की पौष्टिकता बढ़ाना

भोजन पकाना तो आदिमानव के समय से ही चला आ रहा है, फिर भी आधुनिक युग में भी भोजन पकाने की विधियों में निरंतर परिवर्तन और सुधार हो रहा है। भोजन पकाने की तो अनेकों विधियाँ हैं परन्तु वर्तमान समय में इस बात पर अधिक ध्यान दिया जाता है कि उन विधियों का प्रयोग किया जाये जिनसे भोजन के सभी पौष्टिक तत्त्व भी सुरक्षित रहे और भोजन स्वादिष्ट एवं आकर्षक भी बन सके।

पाक क्रिया के लाभ

1. खाद्य पदार्थ जो कड़े व दृढ़ होते हैं, पकाने से नरम होकर सुपाच्य हो जाते हैं। आसानी से चबाए एवं खाये जा सकते हैं जिससे पाचक रस सरलता से अपना प्रभाव डाल सकते हैं तथा वे भोजन को सुपाच्य बना देते हैं।
2. भोज्य पदार्थों को पकाने पर स्वाद व सुगंध में वृद्धि होती है। पकाने पर स्वाभाविक सुगंध पूर्णत: छोड़ देते हैं। जैसे मछली पकाने पर उसकी अरुचिकर गंध दूर हो जाती है तथा वह खाने योग्य हो जाती है। दूसरे, विपरीत अच्छे चावल की सुगंध पकाने पर दुगुनी हो जाती है।
3. पकाने से भोज्य पदार्थ के अनेक रूप हो जाते हैं। जैसे–गेहूं से आटे की रोटी, मैदा से नान, बिस्किट, ब्रेड, मठरी आदि अनेक पकवान बनाये जा सकते हैं।
4. भोजन को पकाने के दौरान ताप द्वारा उनमें उपस्थित हानिकारक जीवाणु और उसके अंडाणु नष्ट हो जाते हैं और ऐसा भोजन उपयोग हेतु सुरक्षित रहता है। शरीर को किसी प्रकार की हानि पहुंचने की आशंका नहीं रहती है।

भोजन पकाने की विधियां :

भोजन को विभिन्न प्रकार की विधियों से पकाया जाता है जैसे–रोटी को सेका जाता है, पूरी को गर्म तेल में तला जाता है एवं बिस्किट को बेक किया जाता है। इन सभी विधियों में किसी-न-किसी रूप में ताप का प्रयोग अवश्य होता है। पकाने के माध्यम के आधार पर भोजन पकाने की विधियां निम्न प्रकार से है–

भोजन पकाने की विधियां :

नमी द्वारा– उबालना, खदकाना, स्ट्यूइंग, भाप द्वारा पकाना, दाब द्वारा पकाना।

गर्म वायु द्वारा–भूनना या सेकना, बेकिंग

चिकनाई द्वारा–उथला तलने की विधि, गहरा तलने की विधि, सॉटिंग।

नमी द्वारा

1. **उबालना (Boiling)**– यह भोजन पकाने की सबसे प्रचलित सरल विधि है। इस विधि में जल की इतनी मात्रा ली जाती है कि भोज्य पदार्थ जल में पूर्ण रूप से डूब जाये। तत्पश्चात् ईंधन द्वारा प्राप्त ताप से पानी गर्म होता है तथा धीरे-धीरे वह अपने क्वथनांक 100 डिग्री पर आकर उबलने लगता है। इस तापमान पर जल के ऊपरी स्तर में जल के बुलबुले पूर्ण रूप में उठने और फूटने की क्रिया होती है। इस विधि से दाल, चावल, आलू व अन्य कई सब्जियां पकाई जाती हैं।
2. **खदकाना (Simmering)**– यह विधि उबालने की विधि के समान ही है। अंतर केवल तापमान के स्तर में रहता है। इसमें पानी का तापमान 85 डिग्री के लगभग रहता है तथा पानी में उठने वाले बुलबुले पानी की सतह पर आने से पहले ही फूट जाते हैं। तापमान कम होने के कारण यह विधि समय अधिक लेती है। इस विधि से कढ़ी, खीर आदि बनाये जाते हैं।
3. **स्ट्यूइंग (Stewing)**– इस विधि में भोज्य पदार्थ को बहुत कम पानी के साथ ढक्कनदार बर्तन में धीमी आंच पर पकाया जाता है। इस विधि में समय अधिक लगता है परंतु भोज्य पदार्थ नरम, सुपाच्य एवं स्वादिष्ट बनता है। उदाहरण के लिए मांस, साग, सब्जियों का स्ट्यू।

भाप द्वारा पकाना (Steaming)

पानी को उबालने पर यह वाष्प में परिवर्तित हो जाता है तथा भोज्य पदार्थ इसी वाष्प के ताप द्वारा पकता है। भाप द्वारा भोज्य पदार्थ दो विधियों से पकाया जाता है।

(अ) प्रत्यक्ष विधि– इस विधि में एक भगोने में पानी गर्म करते हैं। जब पानी उबलने लगता है तब एक जालीदार पात्र में भोज्य पदार्थ को रखकर उसे पानी की सतह से ऊंचाई पर रखकर भगोने को ढक दिया जाता है। इस विधि से ढोकला, इडली आदि बनाये जाते हैं।

(ब) अप्रत्यक्ष विधि– इस विधि में भोज्य पदार्थ सीधे आग के संपर्क में नहीं रहता है। इसमें भोज्य सामग्री को चारों ओर से बंद बर्तन में रखकर भगोने में उबलते हुए जल में रख देते हैं, ध्यान रहे कि बर्तन पानी की सतह से ऊपर रहे। भगोने को ढक्कन से ढक देते हैं जिससे भोज्य पदार्थ भाप या पानी के सम्पर्क में नहीं आये तथा भाप अंदर ही रहे। इस विधि द्वारा खमन एवं पुडिंग बनाये जाते हैं।

4. **दाब द्वारा पकाना (Pressure Cooking)–** इस विधि में भोज्य पदार्थ को सामान्य वायुमंडलीय दाब से अधिक दाब पर पकाया जाता है। इस विधि में पानी 100 डिग्री सें. से अधिक ताप पर उबलता है तथा वाष्प बाहर नहीं निकलने के कारण भोजन शीघ्र पक जाता है। इस विधि द्वारा आलू 10-12 मिनट में, चावल 6-8मिनट में तथा काबली चना लगभग 30 मिनट में पक जाते हैं।

2. गर्म वायु द्वारा

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित विधियां हैं–

1. **प्रत्यक्ष भूनना/सेकना–** इस विधि से भोज्य पदार्थ को सीधे ही आग के संपर्क में पकाया जाता है। भूनते समय भोज्य पदार्थ को चारों ओर घुमाया जाता है ताकि समान रूप से पक सके। जैसे–आलू, शकरकंद, भुट्टा, मांस भूनना आदि।
2. **अप्रत्यक्ष भूनना–** इस विधि में भोज्य पदार्थ आंच के सीधे सम्पर्क में नहीं आता है। जैसे–तवे पर रोटी सेकना, गर्म रेत में चने, मूंगफली सेकना आदि।
3. **बेकिंग (Baking)–**इस विधि से भोज्य पदार्थ पकाने हेतु तंदूर या ओवन काम में लिया जाता है। ये ढक्कनदार बंद पात्र होते हैं, जिस कारण ताप तंदूर या ओवन की हवा को गर्म करता है तथा ये गर्म हवा भोजन को पकाने का कार्य करती है।

जैसे–बाटी, नान, केक, बिस्किट आदि।

3. चिकनाई द्वारा

भोजन को चिकनाई के माध्यम से पकाने की विधि सबसे अधिक लोकप्रिय है क्योंकि चिकनाई के संपर्क से भोज्य पदार्थों के स्वाद में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है और भोजन शीघ्रता से भी पकता है। प्रयोग में लाये जाने वाले तेल या घी की मात्रा के आधार पर निम्न विधियां हैं–

1. **उथला तलने की विधि (Shallow fat frying)–** इस विधि में भोज्य पदार्थों को कम गहरे बर्तन जैसे–तवा, फ्राइंग पैन आदि में कम तेल में धीमी आंच पर पकाते हैं। घी या तेल इतना काम में लेते हैं ताकि पकाया जाने वाला भोज्य पदार्थ बर्तन में चिपके नहीं। इस विधि से परांठा, चीला, डोसा, कटलेट्स आदि बनाये जाते हैं।
2. **गहरा तलने की विधि (Deep fat Frying)–** इस विधि को फ्रेंच विधि भी कहते हैं। इस विधि में कड़ाही में घी या तेल पर्याप्त मात्रा में डाला जाता है ताकि तली जाने वाली वस्तु उसमें डूब सके। इस विधि से पूड़ी, कचौड़ी, समोसा, पकोड़ी आदि बनाये जाते हैं।
3. **सॉटिंग (Sauting)–** इस विधि में भोज्य पदार्थों को बहुत ही कम घी या तेल में धीमी आंच पर पकाया जाता है। इसमें भोज्य पदार्थ को कम ताप पर उलट पलट कर तब तक पकाते हैं जब तक सारा घी या तेल अवशोषित न हो जाए तथा भोज्य पदार्थ पूर्ण ना पक जाये।

भोज्य पदार्थ कड़ा लगे तो थोड़ी मात्रा में घी का प्रयोग कर सकते हैं। इस विधि से सभी प्रकार की सब्जियां बनाई जाती हैं।

भोजन की पौष्टिकता बढ़ाना

भोजन की पौष्टिकता उसमें उपस्थित पौष्टिक तत्त्वों पर निर्भर करती है, जैसे–अनाज कार्बोहाइड्रेट के, दालें प्रोटीन की, फल एवं सब्जियां विटामिन तथा खनिज-लवण के अच्छे स्त्रोत हैं। लेकिन पकाते समय एवं पकाने से पूर्व की तैयारी के दौरान भोज्य पदार्थ में उपस्थिति पौष्टिक तत्त्वों की गुणवत्ता, मात्रा व उपलब्धता में परिवर्तन हो जाता है। अत: भोजन पकाते समय ये ध्यान रखना चाहिए कि पौष्टिक तत्त्व कम-से-कम नष्ट हों। इस हेतु निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. फल तथा सब्जियों को ताजा ही प्रयोग में लेना चाहिए। जो खाद्य पदार्थ कच्चे रूप में प्रयोग में लाये जा सकें उन्हें कच्चा ही खायें ताकि विटामिन-लवण अधिक मात्रा में उपलब्ध हो सकें, जैसे–टमाटर, गाजर, मूली, खीरा, प्याज आदि।
2. सब्जियों के छिलके कम-से-कम व पतले छीलें ताकि छिलकों के नीचे उपस्थित विटामिन व खनिज-लवण कम-से-कम नष्ट हो।
3. सब्जियों को काटते समय बड़े-बड़े टुकड़ों में काटें। छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने से अनावृत क्षेत्र (Exposed area) बढ़ जाता है और पोषक तत्त्व अधिक मात्रा में नष्ट हो जाते हैं।
4. सब्जियों को कम-से-कम पानी में सदैव ढककर पकावें। जिससे भाप द्वारा उनके पोषक तत्त्व नष्ट नहीं हों। सब्जी उबालने के लिए यदि पानी अधिक हो गया हो, तो उसे फेंके नहीं वरन् दाल के लिए रसा बनाने, आटा गूंधने के काम में लें या सूप बनाकर पी लें।
5. दाल-चावल आदि को रगड़-रगड़ कर ना धोयें क्योंकि इससे उनमें उपस्थित जल विलेय विटामिन नष्ट हो जाते हैं।
6. चावल का मांड फेंकें नहीं, इसमें कई पोषक तत्त्व होते हैं।
7. भोजन में ज्यादा-से-ज्यादा साबुत अनाज व छिलके वाली दालों का प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि इनमें बी समूह के विटामिन, खनिज-लवण व रेशे बहुत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।
8. भोजन को पकाते समय उसे ज्यादा चलाना नहीं चाहिये। ऐसा करने से भोजन का अधिक-से-अधिक भाग हवा के सम्पर्क में आता है, जिससे विटामिन 'सी' आक्सीकृत होकर नष्ट हो जाता है।
9. प्रोटीनयुक्त खाद्य पदार्थ जैसे–अण्डा, मांस, मछली आदि को धीमी आंच पर पकायें। तेज आंच पर उनमें उपस्थित प्रोटीन सख्त हो जाता है व आसानी से नहीं पचता।
10. प्रेशर कूकर में खाना बनाने से पोषक तत्त्व अधिक मात्रा में सुरक्षित

रहते हैं और समय व ईंधन की भी बचत होती है।

11. भोज्य पदार्थों में उपस्थित पोषक तत्त्वों की मात्रा व उपलब्धि बढ़ाने के कई तरीके हैं जिनसे खाद्य पदार्थों को अधिक-से-अधिक पौष्टिक बनाया जा सकता है। जैसे-भोज्य पदार्थों का मिश्रित उपयोग, अंकुरीकरण, खमीरीकरण एवं फॉर्टिफिकेशन।

1. खाद्य पदार्थों का मिश्रित उपयोग

सभी भोज्य पदार्थों में सभी पोषक तत्त्व समान मात्रा में नहीं पाये जाते हैं। कुछ भोज्य पदार्थों में कुछ पोषक तत्त्व कम तो कुछ पोषक तत्त्व अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। ऐसी स्थिति में यदि हम लंबे समय तक एक ही भोज्य पदार्थ का सेवन करते हैं तो सीमित मात्रा में पाये जाने वाले पोषक तत्त्वों की शरीर में कमी हो जायेगी और इसके प्रभाव दिखाई देने लगेंगे, जैसे-मिल के साफ कुटे चावल लंबे समय तक खाने से बेरी-बेरी रोग के लक्षण देखे गये हैं। अत: इन बीमारियों से बचने के लिए आवश्यक है कि हम विभिन्न भोज्य पदार्थों को अदल-बदल कर एवं मिश्रित उपयोग करके खायें।

ऐसे दो भोज्य पदार्थों जिनमें से एक भोज्य पदार्थ जैसे-अनाज में कोई एक पोषक तत्त्व अधिक हो, कार्बोज एवं दूसरा पोषक तत्त्व कम हो तथा दूसरे भोज्य पदार्थ जैसे दाल में पहला पोषक तत्त्व कम हो व दूसरा पोषक तत्त्व प्रोटीन अधिक हो, तो फिर मिलाकर खाने से दोनों भोज्य पदार्थ एक-दूसरे के पोषक तत्त्वों की गुणवत्ता एवं उपलब्धता को भी बढ़ाते हैं। यदि हम केवल अनाज का ही सेवन करें या केवल दाल का ही सेवन करें तो हमें इनसे आंशिक पूर्ण प्रोटीन ही प्राप्त होगी लेकिन इन्हें मिश्रित रूप से उपयोग में लाने पर पूर्ण प्रोटीन प्राप्त होगी। इसी प्रकार हम अनाज के साथ दूध या दूध से बने पदार्थों या सब्जियों के साथ सेवन कर पोषक तत्त्वों की मात्रा, गुणवत्ता एवं उपलब्धता को बढ़ा सकते हैं।

2. अंकुरीकरण (Germination)

अंकुरीकरण के द्वारा साबुत अनाज व दालों की पौष्टिकता को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। इसके लिए साबुत अनाज व दालों को धोकर रातभर भिगोकर रखें, तत्पश्चात् इन्हें गीले कपड़े में बांध कर अंकुरित होने के लिए रख दें। गर्मियों के एक दिन में व सर्दी में लगभग तीन दिन में बीजों से लम्बे-लम्बे अंकुर निकल आते हैं। इस अंकुरण प्रक्रिया में बीजों में विटामिन सी एवं बी समूह के कुछ विटामिनों का संश्लेषण होता है। इसके अतिरिक्त इनमें उपस्थित पोषक निरोधक तत्त्व (Anti nutritional faster) भी नष्ट हो जाते हैं और इन खाद्य पदार्थों से प्रोटीन व लौह तत्त्व की उपलब्धता बढ़ जाती है।

3. खमीरीकरण (Fermentation)

खमीरीकरण हेतु आवश्यक खमीर अणु जीव केवल शर्करायुक्त भोज्य पदार्थों में पाये जाते हैं। इस प्रक्रिया में ये सूक्ष्म जीव ऊष्मा तथा आर्द्रता की उपस्थिति में भोज्य पदार्थों में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट का खण्डन कर एल्कोहल एवं कार्बन डायॉक्साइड उत्पन्न करते हैं जिससे तैयार भोज्य पदार्थ में स्पंजनुमा जाली बनती है।

$$(C_6H_{12}O_6) \xrightarrow{\text{अवायवीय}} C_2H_5OH + Co_2\uparrow$$

(स्टार्च (कार्बोहाइड्रेट)) ईथाइल एल्कोहल कार्बन डायॉक्साइड

खमीरीकरण से खाद्य पदार्थों में बी समूह के विटामिन काफी मात्रा में संश्लेषित हो जाते हैं। भोज्य पदार्थों में उपस्थित पोषक निरोधक तत्त्व नष्ट होने के कारण लौह तत्त्व व प्रोटीन की उपलब्धता बढ़ जाती है। खाद्य पदार्थ हल्का व सुपाच्य हो जाता है। खमीरीकरण प्रक्रिया द्वारा इडली, डोसा, खमण, नान, डबल रोटी, जलेबी, इमरती, ढोकला आदि व्यंजन बनाये जाते हैं।

4. फॉर्टिफिकेशन (Fortification)

फॉर्टिफिकेशन की प्रक्रिया में खाद्य पदार्थों में ऐसे पोषक तत्त्वों को सम्मिश्रित करना है जो उनमें या तो सीमित मात्रा में हों या फिर बिल्कुल अनुपस्थित हों या प्रसंस्करण के दौरान कम या नष्ट हो गये हों। समाज को पोषक तत्त्वों की कमी के बुरे प्रभावों से बचाने एवं सुरक्षित रखने हेतु फॉर्टिफिकेशन की प्रक्रिया की जाती है। जैसे-जल व जमीन में आयोडीन की कमी होने के कारण होने वाली समस्या के समाधान हेतु राजस्थान सरकार ने आयोडीन युक्त नमक बेचना आवश्यक कर दिया है, जिससे आयोडीन की कमी से प्रभावित क्षेत्रों में आयोडीन प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध हो सके। इसी प्रकार वनस्पति घी में विटामिन ए एवं डी का सम्मिश्रण कर इन विटामिनों की कमी से होने वाले रोगों से बचा जा सकता है। फॉर्टिफिकेशन विधि द्वारा भोज्य पदार्थों की पौष्टिकता घरेलू स्तर पर नहीं बढ़ाई जा सकती है।

5. पारबॉयलिंग (Parboiling)

इस विधि के द्वारा चावलों की पौष्टिकता को बढ़ाया जाता है। इस विधि में धान को (छिलके समेत चावल) पानी में 6-12 घंटे तक भिगोकर उबाला जाता है या कहीं-कहीं टोकरियों में रखकर भाप दी जाती है, तत्पश्चात् इन्हें सुखाकर कूट लिया जाता है। इस दौरान चावल के स्टार्च के दाने के साथ जुड़ा ढीला-ढाला प्रोटीन भाग स्टार्च से जुड़ जाता है तथा चावल की भूसी में उपस्थित बी समूह के विटामिन निकलकर स्टार्च के साथ मिल जाते हैं। इस प्रकार पारबॉयलिंग विधि से प्राप्त चावलों में प्रोटीन व बी समूह के विटामिनों की उपलब्धता बढ़ जाती है तथा ये मिल के कुटे चावलों की अपेक्षा अधिक पौष्टिक होते हैं।

ऐसे चावलों को उसना चावल, सेला चावल या तेलिया चावल भी कहते हैं। इस प्रकार हम विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा भोजन की पौष्टिकता एवं गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु :

1. भोज्य पदार्थों को पकाने से नरम व सुपाच्य हो जाते एवं आसानी से

चबाये जा सकते हैं।

2. भोज्य पदार्थों को पकाने से भोजन के स्वाद व सुगंध में वृद्धि होती हैं एवं भोजन में विविधता आती है।
3. भोजन की पौष्टिकता भोज्य पदार्थों में उपस्थित पोषक तत्त्वों पर निर्भर रहती है।
4. भोज्य पदार्थों को पकाने की तैयारी करते समय एवं पकाते समय सावधानी बरतनी चाहिए ताकि इससे कम पोषक तत्त्व नष्ट हो।
5. दाल व सब्जियों को कम-से-कम पानी में ढककर तथा आवश्यकतानुसार ही पकाना चाहिये। प्रेशर कूकर में भोजन कम समय व श्रम में बनता है तथा उसकी पौष्टिकता भी बनी रहती है।
6. भोजन की पौष्टिकता खाद्य पदार्थों के मिश्रित उपयोग, अंकुरीकरण, खमीरीकरण, पारबॉयलिंग व फॉर्टिफिकेशन आदि विधियों से बढ़ाई जा सकती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) नमी द्वारा भोजन पकाने की विधि नहीं है–

(अ) उबालना (ब) खदकाना

(स) तलना (द) भाप द्वारा पकाना

(ii) खदकाने की विधि में पानी का तापमान होता है–

(अ) 50°C (ब) 30°C

(स) 100°C (द) 85°C

(iii) अंकुरीकरण द्वारा पदार्थ में निम्न में से कौनसा पौष्टिक तत्त्व बढ़ता है–

(अ) प्रोटीन (ब) विटामिन सी

(स) कैल्सियम (द) लौह तत्त्व

(iv) खमीरीकरण के दौरान कौनसी गैस उत्पन्न होती है–

(अ) कार्बन डाई ऑक्साइड (ब) ऑक्सीजन

(स) नाइट्रोजन (द) मीथेन

2. भोजन को क्यों पकाते हैं?
3. फॉर्टिफिकेशन एवं पारबॉयलिंग से आप क्या समझते हैं?
4. सॉटिंग किसे कहते हैं?
5. भोजन की पौष्टिकता बढ़ाने के विभिन्न उपायों का विस्तार से वर्णन कीजिये।
6. भोजन पकाने की विभिन्न विधियों को उदाहरण देकर समझाइये।

उत्तरमाला

(i) स (ii) द (iii) ब (iv) अ

अध्याय 17

भोजन परिरक्षण

एक ओर देश में खाद्य पदार्थों की कमी हैं, देशवासियों को अपर्याप्त पोषण तो दूसरी ओर खाद्य-सामग्री का अपव्यय हो तो यह भौतिक, नैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से अक्षम्य अपराध बनता है। भोजन हमारी मूलभूत आवश्यकता है। मानव शरीर को स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट बनाए रखने के लिए हमें संतुलित भोजन का सेवन करना चाहिए। संरक्षित भोजन से तात्पर्य भोजन के जीवाणुओं, विषाणुओं से रहित होने के साथ-साथ मानव शरीर को ऊर्जा, शक्ति एवं ताकत प्रदान करने वाला होना चाहिए, जिससे व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में होने वाली विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को सम्पन्न कर सके। इसीलिए भोजन को संरक्षित करना अति आवश्यक है।

कभी-कभी भोजन तो सन्तुलित होता है, परन्तु भोजन के चुनाव में, पकाने एवं संग्रहीकरण के दौरान सावधानी नहीं बरती जाए तो भोजन विभिन्न जीवाणुओं, कीटाणुओं द्वारा संक्रमित हो जाता है, जिनके सेवन से मनुष्य अनेक बीमारियों से ग्रसित हो जाता है और पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह नहीं कर पाता है। सभी भोज्य पदार्थ सभी मौसम में नहीं उगाए जाते हैं। जैसे-रबी के मौसम में सभी प्रकार की दालें, तिलहन, गेहूँ आदि। खरीफ के मौसम में धान उगाए जाते हैं। अत: इन भोज्य पदार्थों का संरक्षण करके रखना चाहिए ताकि वर्षभर इनका उपयोग अपने दैनिक जीवन में करते रहें।

भोजन परिरक्षण- भोजन को उपचारित करने एवं सम्भालने की ऐसी प्रक्रिया जो भोजन को सड़ने/गलने से बचाने के साथ-साथ उसकी गुणवत्ता एवं पौष्टिक मूल्यों को बनाए रखती है। कुछ जीवाणुओं द्वारा भोज्य पदार्थ की गुणवत्ता व पौष्टिकता में कमी आती है, परंतु कुछ तरीकों में सौम्य बैक्टीरिया जैसे-खमीर या कवक का उपयोग भोजन के विशेष गुण बढ़ाने एवं खाद्य पदार्थों को संरक्षित करने में करते हैं उदाहरण-पनीर।

भोजन की संरचना, पौष्टिक मूल्य एवं स्वाद बढ़ाने हेतु परिरक्षण करना अति आवश्यक है।

भोजन परिरक्षण से तात्पर्य-खाद्य पदार्थों को सूक्ष्म जीवों, फफूँद, विषाणुओं, कीड़े-मकोड़े से बचाकर एवं भोजन की पौष्टिकता को बनाए रखकर, लम्बे समय तक सुरक्षित रूप से संरक्षित कर रखना, भोजन परिरक्षण कहलाता है।

भोज्य पदार्थों को समय के आधार पर तीन भागों में बाँटा गया हैं-

1. **विकारी भोज्य पदार्थ (Perishable Food)-** विकारी भोज्य पदार्थ जैसे दूध, दही, मांस, मछली, हरी पत्तेदार सब्जियाँ (पालक, मेथी, धनियाँ) आदि सामान्य ताप पर अथवा बहुत जल्दी खराब हो जाते हैं। क्योंकि इनमें पानी की मात्रा बहुत अधिक होती है। अत: दूध को उबालकर ठण्डा कर रैफ्रिजरेटर में रखने से उनको लम्बे अंतराल तक रख सकते हैं।
2. **अर्द्धविकारी (Semi Perishable Food)-** अर्द्धविकारी भोज्य पदार्थों से तात्पर्य जिनमें पानी का अंश विकारी भोज्य पदार्थों से कम हो (जैसे-आलू, गोभी, प्याज, अरबी आदि) जो जल्दी खराब ना होकर 7-15 दिनों तक संरक्षित रह सके।
3. **अविकारी भोज्य पदार्थ (Non Perishable Food)-** वे भोज्य पदार्थ जिनमें पानी का अंश बहुत कम हो और उनका जीवनकाल 1-2 साल तक हो, अविकारी भोज्य पदार्थ कहलाते हैं। उदाहरण-गेहूँ, चावल, बाजरा, मक्का, दालें आदि।

भोज्य पदार्थ को खराब करने वाले कारक

1. **भोजन का स्वत: ही खराब हो जाना-** भोज्य पदार्थों में उपस्थित एंजाइम के कारण कई बार भोज्य पदार्थ स्वत: ही खराब हो जाते हैं। जैसे-फलों एवं सब्जियों में उपस्थित एंजाइम फल व सब्जियों को सड़ा देते हैं। जब फल पक जाते हैं तो भी एन्जाइम की सक्रियता बनी रहती है। परिणामत: अधिक पके हुए फल भी अंत में सड़ जाते हैं।
2. **जैव रासायनिक परिवर्तन-** भोज्य पदार्थों जैसे ताजे फल व सब्जियों में सामान्य ताप पर भी समय के साथ कई परिवर्तन होते रहते हैं एवं इन परिवर्तनों के लिए भोज्य पदार्थों में उपस्थित जैव उत्प्रेरक ही उत्तरदायी होते हैं। जैसे-भोज्य पदार्थ यानी फल एवं सब्जियाँ अधिक पक जाती हैं, तो उनमें अरुचिकर गंध आने लगती है और कई फल एवं सब्जियों को काटकर रख देने पर उनके स्वाद एवं रंग में परिवर्तन आ जाता है। यह जैव रासायनिक परिवर्तन द्वारा होता है। उदाहरण-कटे हुए सेब का भूरा होना, बैंगन, आलू व केले का काला होना।
3. **भोजन का कीड़े-मकोड़े एवं पक्षियों द्वारा नष्ट करना-**कीड़े-मकोड़े एवं पक्षियों, कीट-पतंगों द्वारा भोजन को हानि पहुँचती है। ये कीट ज्यादातर सूखे मेवे, तिल, बीजों, अनाजों में लगते हैं, पक्षी

जितना भोजन खाते हैं, उससे कहीं ज्यादा खराब कर देते हैं, साथ ही अपने अण्डों, अवशेषों, जैसे मल-मूत्र, बाल आदि द्वारा बचे भोज्य पदार्थ को विषाक्त कर देते हैं।

4. **सूक्ष्म जीवों द्वारा**–भोज्य पदार्थ को विषाक्त बनाने वाले सूक्ष्म-जीव विभिन्न प्रकार के होते हैं–

1) फफूँदी (Fungus/Molds)
2) जीवाणु (Bacteria)
3) विषाणु (Virus)
4) खमीर (Yeast)

ये सूक्ष्म जीव भोजन में प्रवेश करने के बाद तीव्र गति से वृद्धि करते हैं और अपनी वृद्धि हेतु भोज्य पदार्थों में उपस्थित पोषक तत्त्वों का उपयोग करते हैं। सूक्ष्मजीव बहुत छोटे-छोटे एककोशिकीय या बहुकोशिकीय जीव हैं, जिन्हें हम सब देख नहीं सकते, परन्तु किसी विशेष सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा उन सूक्ष्मजीवों की पहचान कर सकते हैं, ये सूक्ष्मजीव भोजन में अपना जहर छोड़ देते हैं, और इस भोजन का सेवन व्यक्ति द्वारा किया जाता है, जिससे उसकी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति कमजोर हो जाती है, और वह बीमार पड़ जाता है।

अनाजों को बर्बाद करने वाले सभी सूक्ष्मजीवों में फफूँद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। फफूँद से भोज्य पदार्थों का तापमान बढ़ जाता है, एवं उनमें बदबू आने लगती है। भोजन की पौष्टिकता एवं स्वादिष्टता कम हो जाती है। सूक्ष्मजीवों को वायु की आवश्यकता के अनुसार वायवीय, अवायवीय एवं विकल्पी अवायवीय जीवों में बाँटा जाता है। इसी प्रकार ऊष्मा प्रतिरोधक शक्ति के आधार पर इन्हें शीतरागी, मध्यतापरागी एवं तापरागी श्रेणियों में बाँटा गया है। विभिन्न भोज्य पदार्थ जो विषाक्त/खराब हो जाते हैं, उनकी पहचान के मुख्य बिन्दु निम्न प्रकार हैं–

1) भोज्य पदार्थों के स्वाद, रंग में परिवर्तन आना।
2) भोज्य पदार्थों की महक एवं पौष्टिकता कम हो जाना।
3) भोज्य पदार्थों जैसे–ब्रेड, अचार पर सफेद रुई के फाहे जैसी अभिवृद्धि हो जाना आदि।

अत: विषाक्त एवं दूषित भोज्य पदार्थ की पहचान कर, भोज्य पदार्थों को ग्रहण करने से बचना चाहिए, ताकि हमारा शरीर किसी प्रकार की बीमारी से ग्रसित ना हो, और हृष्ट-पुष्ट व स्वस्थ शरीर द्वारा हम अपना कार्य पूर्ण कर सकें।

भोजन परिरक्षण के सिद्धांत (Principles of Food Preservation)

1. **भोज्य पदार्थों को स्वत: होने वाली क्षति से रोकना**– कभी-कभी भोज्य पदार्थ में उपस्थित जैव उत्प्रेरकों की प्रक्रिया से एवं खाद्य तेल उपस्थित मुक्त वसीय अम्ल के ऑक्सीकरण से खराब हो जाते हैं। इन्हें दो तरीकों द्वारा रोक सकते हैं।

क) जैव उत्प्रेरकों के विनाश या निष्क्रिय द्वारा।

ख) विशुद्ध रासायनिक क्रियाओं के बचाव या स्थगन द्वारा।

2. भोज्य पदार्थों में होने वाली सूक्ष्मजीवों की वृद्धि या क्रिया को रोककर।

(क) परिरक्षकों द्वारा (ख) उच्च/निम्न ताप द्वारा।

3. भोज्य पदार्थों में होने वाली यांत्रिक एवं भौतिक क्षति को रोककर।
4. खाद्य पदार्थों को खराब करने वाले कीड़े-मकोड़ों, कीट-पतंगों, पक्षियों एवं चूहों से बचाव करके।

संरक्षण की विधियाँ

भोज्य पदार्थों में सूक्ष्मजीव पहुँचकर उनके स्वाद, रंग, महक एवं पौष्टिक गुणों में परिवर्तन अथवा कमी कर देते हैं जिससे भोज्य पदार्थ अधिक गुणकारी नहीं रहता है और हानिकारक एवं विषाक्त हो जाता है। शुद्ध एवं पौष्टिक भोज्य पदार्थ को लम्बे अंतराल तक रखने के लिए भोजन संरक्षण की विधियाँ उपयोग में ली जाती हैं, जो भोजन का जीवनकाल बढ़ाने में मदद करती हैं, साथ ही बेमौसम भोज्य पदार्थ का स्वाद ले सकते हैं।

संरक्षण प्रक्रिया द्वारा भोजन में बैक्टीरिया, कवक और अन्य जीवाणु की गति को रोकना अथवा उसकी वृद्धि को कम कर दिया जाता है। साथ ही सड़ी-गली सब्जियों जो दुर्गन्ध पैदा करती हैं, वसा की ऑक्सीकरण की गति को धीमा करने में सहायक है। भोजन संरक्षण की विधियाँ निम्न प्रकार हैं–

1. उच्च जलस्थैतिक दबाव, वनस्पति बैक्टीरिया, यीस्ट व मोल्ड की दबाव निष्क्रियता द्वारा।
2. सूक्ष्मजीवों को मारकर या तत्त्व विकिरण के लिए गर्म करना (उबालना)।

भोज्य पदार्थों को संरक्षित रखने के लिए उन्हें अति उच्च ताप पर पानी में (100° C) डालकर 1-2 मिनट रखकर उबाला जाता है, जिससे भोज्य पदार्थों में उपस्थित सभी जीवाणुओं, कीटाणुओं, लार्वा का नाश हो जाता है। जीवाणु के बीजाणु भी नष्ट हो जाते हैं और भोज्य पदार्थों का जीवनकाल काफी बढ़ जाता है।

फलों एवं सब्जियों को संरक्षित करने से पूर्व इसी तापक्रम पर 1-3 मिनट तक उबाला जाता है, तत्पश्चात् तुरन्त ही ठण्डा कर दिया जाता है, जिसे 'ब्लान्चिंग' (Blanching) कहते हैं।

3. **निर्जलीकरण (सुखाना)**– यह खाद्य पदार्थों को संरक्षित करने की सबसे पुरानी विधि है, जिसमें पानी की गतिविधि पर्याप्त मात्रा में कम हो जाती है तथा बैक्टीरिया का बनना बंद हो जाता है अथवा धीमी गति से होता है।

निर्जलीकरण की दो मुख्य विधियाँ हैं–

अ) प्राकृतिक विधि – (धूप से सुखाकर, व्यापारिक स्तर पर

निर्जलीकरण)

ब) कृत्रिम विधि – (सोलर ड्रायर में सुखाना)

4. **कम तापमान निष्क्रियता (प्रशीतन)–** प्रशीतन, व्यावसायिक व घरेलू रूप से सबसे अधिक प्रयोग ली जाने वाली प्रक्रिया है। भोजन में उपस्थित आर्द्रता एवं उष्णता, दोनों ही भोजन को सड़ाने का कार्य करते हैं, क्योंकि सूक्ष्मजीव उचित तापक्रम व नमी पाकर ही तेजी से वृद्धि करते हैं। यदि भोजन में उपस्थित नमी को हटा दिया जाए तो भोजन को लम्बे समय तक संरक्षित रखा जा सकता है। परन्तु कुछ भोज्य ऐसे भी होते हैं, जिनमें आर्द्रता बनाए रखना आवश्यक होता है। जैसे–दूध, दही, फल, अण्डा एवं सब्जी।

घरों में फल, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, मांस, मछली, अण्डा, दूध, दही, पनीर आदि भोज्य पदार्थों को संगृहीत करने हेतु घरेलू रेफ्रिजरेटर का उपयोग किया जाता है। व्यापारिक स्तर पर कोल्ड-स्टोरेज, चिल-स्टोरेज आदि का उपयोग किया जाता है। प्रशीतन विधि में तापक्रम 4° C–10° C तक रहता है।

5. **निर्वात पैकिंग–** खाद्य पदार्थों का संग्रहण एयर-टाइट बैग या बोतल में करना चाहिए। निर्वात पैकिंग (वातावरण) बैक्टीरिया के जीवित रहने के लिए आवश्यक ऑक्सीजन को कम कर देती है, जिससे बैक्टीरिया भोज्य पदार्थों में वृद्धि नहीं कर पाते और भोजन सुरक्षित रहता है। निर्वात पैकिंग का उपयोग आमतौर पर मेवों के भण्डारण में किया जाता है।

6. **नमक द्वारा–** नमक भोज्य पदार्थ में उपस्थित नमी को अपने अंदर बाँध लेता है। इस कारण मुक्त रूप से नमी उपस्थित नहीं रहती है, जिसमें कि सूक्ष्मजीव वृद्धि कर सकें। जीवाणुओं के कोषों में विद्यमान तरल पदार्थ की सांद्रता (भोजन) को बराबर बनाने के लिए जीवाणुओं के कोषों में उपस्थित तरल पदार्थ बाहर आ जाते हैं। यह प्रक्रिया 'रसाकर्षण' (Osmosis) कहलाती है।

7. **चीनी द्वारा–** चीनी-शक्कर का उपयोग फलों को संरक्षित करने में किया जाता है। यदि फल-सब्जियों में चीनी-शक्कर मिला दी जाए तो ये परासरण क्रिया के कारण सूक्ष्मजीवों, फफूँद आदि की सक्रियता को नष्ट कर देते हैं और भोजन लम्बे समय तक परिरक्षित रहता है। उदाहरण–जैम-जैली, मुरब्बा, चटनी आदि।

8. **अचार द्वारा–** अचार बनाना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें खाद्य पदार्थों को खाद्य तेल में सूक्ष्मजीव निवारक में संरक्षित किया जाता है जो सूक्ष्मजीवों एवं बैक्टीरिया को खाद्य पदार्थ में प्रवेश करने से रोकता है। रासायनिक रूप से अचार में डाले जाने वाले परिरक्षक एजेंट–काली मिर्च, सोडियम बेन्जोनेट आदि, जिससे भोज्य पदार्थों के जीवनकाल (Shelf life) को बढ़ाया जा सके।

9. **पोटिंग–** मांस को संरक्षित करने का एक तरीका यह भी है मांस को एक पॉट में रखकर उसे वसा की परत से सील बंद कर दिया जाता है।

10. **जगिंग (जग में परिरक्षण)–** मांस को जगिंग अर्थात् मिट्टी के किसी बर्तन, जग या कैसरोल में रखकर स्ट्रइंग की प्रक्रिया की जाती है और इसे परिरक्षित किया जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. भोज्य पदार्थों की विकृति में लगे समय के आधार पर विकारी भोज्य पदार्थ, अर्द्धविकारी भोज्य पदार्थ एवं अविकारी भोज्य पदार्थों में विभक्त किया गया है।
2. भोज्य पदार्थ के रंग, स्वाद, महक, संरचना एवं पौष्टिक गुणों में अंतर आने अथवा पौष्टिकता कम होने पर, संदूषित भोजन की श्रेणी में आ जाएगा।
3. खाद्य पदार्थों को सूक्ष्मजीवों, फफूँद, विषाणुओं से बचाकर, लम्बे अंतराल तक सुरक्षित, संरक्षित करने को परिरक्षण कहा गया है।
4. भोज्य पदार्थों का परिरक्षण कर हम आवश्यकता से अधिक भोज्य पदार्थों को बचा सकते हैं, तथा पूरे वर्ष बेमौसम भी भोज्य पदार्थ का उपयोग कर सकते हैं।
5. भोज्य पदार्थों को विभिन्न घरेलू परिरक्षक जैसे–चीनी/शक्कर, नमक, सिरका व रसायन द्वारा परिरक्षित कर सकते हैं।
6. भोज्य पदार्थ को धूप द्वारा अथवा सोलर ड्रायर द्वारा सुखाकर भी परिरक्षित कर सकते हैं।
7. भोज्य पदार्थों का परिरक्षण विभिन्न विधियों जैसे निर्जलीकरण, प्रशीतन, उबालकर, निर्वात पैकिंग द्वारा किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) निम्न में से अर्द्धविकारी भोज्य पदार्थ है–

(अ) दूध (ब) अनाज

(स) आलू (द) दालें

(ii) भोज्य पदार्थों के परिरक्षण में, प्रशीतन विधि का उचित तापक्रम होता है–

(अ) 4°–10° C (ब) 15°–20° C

(स) 20°–25° C (द) 1°–4° C

(iii) भोज्य पदार्थों को विषाक्त बनाने वाले सूक्ष्मजीव हैं–

(अ) जीवाणु (ब) विषाणु

(स) खमीर (द) उपरोक्त सभी

(iv) भोज्य पदार्थों को अति उच्च-ताप से संरक्षित करने के लिए उचित तापक्रम है–

(अ) 100° C (ब) 100°–150° C

(स) 100°–170° C (द) 200° C

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(i) निर्जलीकरण की मुख्य विधियां.....एवं.....हैं।

(ii) कटे हुए सेब का भूरा रंग.....परिवर्तन द्वारा होता है।

(iii) भोज्य पदार्थों के रंग, आकार, गंध में अवांछनीय परिवर्तनों को.....कहते हैं।

(iv) खाद्य पदार्थों का संग्रहण एयर-टाइट बैग में करना..... कहलाता है।

(v) मांस को वसा की परत से सील बंद करने की प्रक्रिया..... कहलाती है।

3. ब्लांचिग को परिभाषित कीजिए।

4. भोजन परिरक्षण को समझाइए।

5. रसाकर्षण (Osmosis) प्रक्रिया को समझाइए।

6. भोजन परिरक्षण के सिद्धांतों का संक्षिप्त में वर्णन करें।

7. भोजन परिरक्षण की विभिन्न विधियों का विस्तार में वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला :

1. (i) स (ii) अ (iii) द (iv) अ

2. (i) कृत्रिम, प्राकृतिक (ii) जैव रासायनिक
(iii) भोजन संदूषण (iv) निर्वात पैकिंग
(v) पोटिंग

अध्याय 18

शीतल पेय, सुविधाजनक व तुरन्ता भोजन

शीतल पेय पदार्थ वे होते हैं जो प्यास बुझाने, शरीर में तरल पदार्थ समावेशित करने, शरीर का पोषण करने तथा व्यक्ति को स्फूर्ति व आनन्द प्रदान करने के उद्देश्य से प्रयुक्त किये जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में शीतल पेय का सेवन सर्वाधिक किया जाता है। दिनभर बार-बार शर्बत, नीबू की शिकंजी, फलों के रस, छाछ, लस्सी, शेक आदि पीने की इच्छा होती रहती है। ये शीतल पेय हमें गर्मी से राहत तो प्रदान करते ही हैं बल्कि शरीर में ताजगी एवं तरावट भी उत्पन्न करते हैं।

परंतु आधुनिक समाज में विशेषकर किशोर एवं बालकों को कार्बोनेटेड शीतल पेय व डिब्बाबंद रस अधिक प्रिय हैं। ये शीतल पेय बर्फ के समान ठंडे, आकर्षक रंगों में तथा विभिन्न प्रकार के स्वाद जैसे-नीबू, संतरा, आम आदि से युक्त होते हैं। तीव्र गर्मी में इनका सेवन करने से गला तर हो जाता है और थके हुए शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है। इस प्रकार के कार्बोनेटेड शीतल पेय का विशिष्ट प्रभाव कुछ क्षणों तक ही रहता है (चित्र 18.1)।

चित्र 18.1 शीतल पेय

कार्बोनेटेड शीतल पेय से स्वास्थ्य पर होने वाले दुष्प्रभाव

1. इनमें पौष्टिक तत्त्व केवल सरल शर्करा ही होती है जो कि ऊर्जा प्रदान करती है, अन्य पोषक तत्त्व जैसे-प्रोटीन, वसा, खनिज-लवण एवं विटामिन नहीं के बराबर होते हैं।
2. इन पेय पदार्थों के अत्यधिक सेवन से शरीर में कैल्सियम एवं फास्फोरस का अनुपात गड़बड़ा जाता है, जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।
3. डिब्बाबंद फलों के रस में भी स्वाद व सुगंध वृद्धि के लिए कृत्रिम रंग व सुगंध मिलाये जाते हैं जिनका पौष्टिक मूल्य नहीं के बराबर होता है।
4. डिब्बाबंद फलों के रस में भी स्वाद व सुगंध वृद्धि के लिए कृत्रिम रंग व सुगंध मिलाये जाते हैं जिनका पौष्टिक मूल्य नहीं के बराबर होता है।

बाजार में उपलब्ध ये शीतल पेय ताजगी व तरावट के नाम पर हमारे स्वास्थ्य से खिलवाड़ कर रहे हैं। जिसका खुलासा पिछले वर्ष हुआ, जब इनकी कितनी ही ब्राण्ड्स में कीटनाशकों की अवांछनीय मात्रा पायी गई और इन्हें बाजार से हटाया गया। इनके निर्माण के समय प्रयुक्त जल की स्वच्छता, शुद्धता व पेकिंग हेतु उपयोग में ली जाने वाली बोतलें, परिरक्षकों की मात्रा, स्वाद-सुगंध के लिए मिलाये गये कृत्रिम रसायनों की मात्रा तथा निर्माण प्रक्रिया के दौरान अपनाये गये स्वच्छता के मानदण्ड आदि सभी शंका के घेरे में हैं। अत: हमें चाहिये कि इनके मुकाबले घर में बनाये गये शर्बत, फलों के रस, शिकंजी, छाछ, लस्सी, ठंडाई आदि का प्रयोग करें जो कि पौष्टिक, सुरक्षित होने के साथ-साथ सस्ते भी होते हैं।

आजकल बदलते सामाजिक परिवेश के कारण किशोर-किशोरियों में अवांछनीय नशीले पेय पदार्थ जैसे-बीयर, शराब आदि का प्रचलन भी बढ़ रहा है। इन नशीले पेय पदार्थों में एल्कोहल होता है जिसके नियमित सेवन से मोटापा बढ़ता है एवं यकृत प्रभावित होने से पाचन व उपापचयन संबंधी कार्य बाधित होते हैं। व्यक्ति रोगाक्रांत हो जाता है और धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर हो जाता है।

सुविधाजनक एवं तुरन्ता भोजन

सुविधाजनक भोज्य पदार्थ वे भोज्य पदार्थ होते हैं जिनका उत्पादक अधिक-से-अधिक रूप में प्रसंस्करण कर बाजार में उतारता है ताकि उपभोक्ता इन्हें उपयोग में लाकर आसानी तथा शीघ्रता से भोजन तैयार कर सके।

जैसे-छिली-कटी हुई सब्जियां, डिब्बाबंद फल व सब्जियां, इडली-डोसा, खमण आदि का मिश्रण, ठंडाई मिश्रण, हिमकृत मटर, चिप्स आदि।

इस प्रकार के भोज्य पदार्थों का उपयोग करने से गृहिणी को समय

व शक्ति की बचत होती है। जैसे–पुलाव बनाने के लिए पुलाव मिश्रण का उपयोग करने से चावल धोने, भिगोने, सब्जियां धोने, छीलने, काटने व पकाने आदि में लगने वाले समय की बचत हो जाती है। पुलाव मिश्रण को खौलते पानी में डालकर तुरंत तैयार किया जा सकता है। सुविधाजनक भोज्य पदार्थों का उपयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है जिसके निम्न कारण हैं–

1. महिलाओं का अधिक संख्या में नौकरी–पेशा होना।
2. एकल परिवार की संख्या में वृद्धि।
3. पाककला की जानकारी न होना।
4. शारीरिक असमर्थता।
5. वृद्धावस्था।
6. समयाभाव।
7. क्रय क्षमता में वृद्धि आदि।

सुविधाजनक भोज्य पदार्थों का वर्गीकरण:-

1. **आधारभूत उत्पाद–** इन भोज्य पदार्थों में पकाने से पूर्व एक या उससे अधिक प्रक्रियाएं उद्यमी द्वारा करके फिर बाजार में बेचा जाता है। जैसे–छिली हुई लहसुन, छिली–कटी सब्जियां आदि।
2. **पकाने के लिए तैयार–** ऐसे भोज्य पदार्थ पकाने के लिए तैयार (Ready to cook) होते हैं यानी कि पकाने के पूर्व की सभी प्रक्रियाएं उद्यमी द्वारा कर ली जाती हैं। उदाहरण के लिये इडली, डोसा, गुलाब जामुन आदि का मिश्रण।
3. **पहले से पकाये हुए भोज्य पदार्थ–** इस वर्ग के भोज्य पदार्थों में ऊपर वर्णित दो प्रक्रियाओं के साथ–साथ भोजन पकाने की प्रक्रिया भी की हुई होती है। इन्हें खाने से पहले या तो गर्म करना होता है या फिर गर्म पानी में डालकर तैयार किया जाता है। जैसे–सूप मिश्रण, ठंडाई मिश्रण, शरबत, सिंकीं सेंवइयां, शिशु आहार (Baby food) आदि।

तैयार उत्पाद

पूर्णतया प्रसंस्करण यानी कि खाने के लिए तैयार पदार्थ जैसे–बिस्कुट, नमकीन, कार्बोनेटेड शीतल पेय, डिब्बाबंद फलों का रस आदि।

सुविधाजनक भोज्य पदार्थों के लाभ:-

1. आसानी एवं शीघ्रता से तैयार होना।
2. समय व श्रम की बचत।
3. ताजा भोज्य पदार्थों की अपेक्षा ज्यादा सुरक्षित।
4. भोज्य पदार्थों को नष्ट होने से बचाना।
5. पौष्टिक तत्त्वों का समावेश कर गुणवता बढ़ाना।
6. सुविधानुसार खरीदकर आवश्यकतानुसार प्रयोग में ले सकते हैं।

सुविधाजनक भोज्य पदार्थों की कुछ सीमाएं व हानियां भी होती है जैसे कि प्रसंस्करण के दौरान पौष्टिक तत्त्वों का नष्ट होना, स्वादिष्ट बनाने के लिए नमक, शक्कर, घी व तेल का अधिक उपयोग, आकर्षक बनाने के लिए रासायनिक पदार्थों, रंग, खुशबू व परिरक्षक का उपयोग आदि। इसके अलावा ये भोज्य पदार्थ महंगे होने के कारण जेब पर भी भारी पड़ते हैं।

तुरंता भोजन (Fast Food)

कुछ सुविधाजनक भोज्य पदार्थ फास्ट फूड यानी कि तुरंता भोज्य पदार्थों की श्रेणी में आते हैं। इन्हें फास्ट फूड इसलिए कहते हैं क्योंकि ये तुरंत ही शीघ्रता से बनाये जाते हैं। जैसे–पिज्जा, बर्गर, चाउमीन, सैंडविच, केक, पेस्ट्री आदि।

पाश्चात्य संस्कृति पर आधारित ये व्यंजन आजकल के बालकों, किशोरों एवं युवाओं की विशेष पसंद हैं तथा दैनिक आहार का हिस्सा बनते जा रहे हैं।

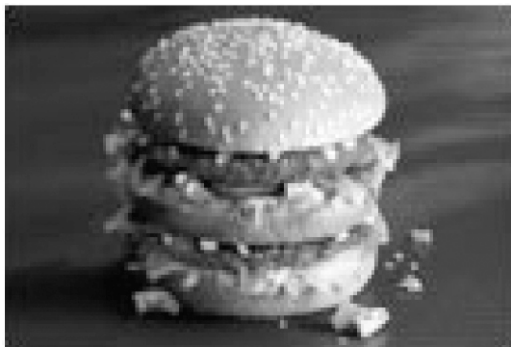

चित्र 18.2

फास्ट फूड को जंक फूड (Junk Food) भी कहा जाता है। जंक का शाब्दिक अर्थ है–कूड़ा–करकट या कचरा। ये भोज्य पदार्थ मैदा यानी स्टार्च से बने होने के कारण इसमें अन्य पौष्टिक तत्त्व व रेशे बहुत ही कम होते हैं जो कि आहारनाल के स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है। इन व्यंजनों में कैलोरी या ऊर्जा की मात्रा अत्यधिक होती है विशेषत: केक, पेस्ट्री व वेफर्स में, जिससे रक्त में कॉलेस्ट्रोल की मात्रा बढ़ जाती हैं और हृदय से संबंधित बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है। इन व्यंजनों में मिलाये जाने वाले टमाटर सॉस, चिली सॉस, सोया सॉस, सिरका आदि में रसायन मिले होते हैं। जिससे किशोरावस्था में मोटापा होने के कारण उच्च रक्तचाप, कोलेस्ट्रोल बढ़ना और उसके परिणामस्वरूप युवावस्था में ही हार्ट अटैक का खतरा, मधुमेह की शिकायत हो सकती है।

ऑस्ट्रेलिया में हाल ही एक अध्ययन के बाद शोधकर्ताओं ने बताया कि जंक फूड सिर्फ शरीर को ही नुकसान नहीं पहुंचाता बल्कि दिमाग के लिए भी हानिकारक होता है जिसके कारण निर्णय लेने की क्षमता कमजोर हो जाती है। तनाव व डिप्रेशन जैसी परेशानियां भी हो सकती हैं।

इस प्रकार आपने देखा कि ये शीतल पेय, तुरंता भोजन आदि न केवल आपके स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं बल्कि महंगे होने के

कारण बजट को भी प्रभावित करते हैं। अत: समय रहते ही हमें इनसे बचना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. शीतल पेय जैसे–शर्बत, नीबू की शिकंजी, छाछ, फलों के रस आदि न केवल गर्मी से राहत प्रदान करते हैं बल्कि शरीर को पोषण, चुस्ती, फुरती, तरावट व ताजगी भी देते हैं।
2. कार्बोनेटेड शीतल पेय में पौष्टिकता न के बराबर होती है।
3. सुविधाजनक भोज्य पदार्थों को तैयार करने या पकाने से पूर्व कई प्रक्रियाएं उद्यमी द्वारा कर ली जाती हैं।
4. मुख्य सुविधाजनक भोज्य पदार्थ फास्ट फूड यानी कि तुरन्ता भोज्य पदार्थों की श्रेणी में आते हैं।
5. आहार में प्रतिदिन फास्ट फूड के उपयोग से मोटापा बढ़ता है जिससे हृदय सम्बन्धी बीमारियां हो जाती हैं।
6. पिज्जा, बर्गर, चाउमीन, वेफर्स, केक आदि फास्ट/जंक फूड कहलाते हैं। क्योंकि ये तुरंत बन जाते हैं लेकिन इनमें ऊर्जा के अलावा अन्य पौष्टिक तत्त्व नहीं के बराबर होते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें :

(i) कार्बोनेटेड पेय होते हैं।

(अ) पौष्टिक (ब) सस्ते

(स) महंगे (द) स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद

(ii) निम्न में से जंक फूड नहीं हैं।

(अ) सैंडाविच (ब) चाउमीन

(स) पिज्जा (द) दाल-रोटी

(iii) पकाने के लिए तैयार उत्पाद है।

(अ) इडली मिश्रण (ब) अंकुरित अनाज

(स) कुरकुरे (द) मेगी

(iv) ताजा फलों का रस डिब्बाबंद फलों के रस की तुलना में होता है।

(अ) पौष्टिक (ब) तरावटी

(स) सस्ता (द) उपरोक्त सभी

2. फास्ट/जंक फूड किसे कहते हैं?
3. सुविधाजनक भोज्य पदार्थ कौनसे होते हैं?
4. ताजा पेय एवं कार्बोनेटेड पेय पदार्थों में अंतर बताइये।
5. फास्ट फूड एवं कार्बोनेटेड पेय हमारे स्वास्थ्य को किस प्रकार प्रभावित करते हैं? समझाइये।

उत्तरमाला :

(i) स (ii) द (iii) अ (iv) द

इकाई-IV : वस्त्र एवं परिधान

अध्याय 19

तंतु विज्ञान

मनुष्य के जीवन की तीन मूलभूत आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता है–कपड़ा। प्रत्येक मनुष्य चाहे वह किसी भी स्तर का हो, वस्त्रों का प्रयोग तो करता ही है। वस्त्र ही एक ऐसी चीज है जिसका सम्बन्ध हर वक्त हर व्यक्ति के साथ रहता है। प्राचीन काल में मनुष्य तन ढकने के लिए एवं शरीर को धूप, वर्षा, सर्दी आदि से बचाने के लिए जानवरों की खाल, पेड़ों के पत्ते आदि का उपयोग किया करते थे। लेकिन धीरे-धीरे मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ वस्त्र निर्माण कला का भी विकास हुआ। प्राचीन काल में पहने जाने वाले वस्त्र आधुनिक वस्त्रों से भिन्न होते थे। गर्मी में हम सूती वस्त्र पहनते हैं, सर्दियों में ऊनी वस्त्र तो बारिश से बचने के लिए विशेष प्रकार के वस्त्र पहनते हैं। हम घर पर प्रतिदिन अलग-अलग परिधान पहनते हैं तो विशेष अवसर जैसे–शादी या अन्य समारोह पर अलग परिधान पहनते हैं। इसी प्रकार अलग-अलग व्यवसाय से संबंधित जैसे–पुलिस, फायरमैन, डॉक्टर, नर्स, विद्यार्थी आदि विशेष परिधान पहनते हैं। एक कहावत है कि वस्त्र ही व्यक्ति को बनाते हैं (Cloth makes the man) जो कि बहुत हद तक सही है। वस्त्रों का मानव मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अवसर के अनुकूल उचित वस्त्र पहनने पर व्यक्ति में आत्मविश्वास उत्पन्न होता है तथा उचित वस्त्र व्यक्तित्व को निखारते हैं। वस्त्र हमारे तन की सुरक्षा करने के अलावा घरेलू कार्यों में भी विभिन्न वस्त्रों का उपयोग किया जाता है। जैसे–फर्श पर दरी, कालीन आदि बिछाये जाते हैं। सुंदर एवं आकर्षक डिजाइनों से बने सोफा सेट कवर, कुशन कवर, बैडशीट, तकिया व गिलाफ, परदा, ड्रेपरी आदि के प्रयोग से घर की सुन्दरता एवं आकर्षण में वृद्धि हो जाती है। साफ-सफाई एवं नहाने-धोने आदि कार्यों के लिए भी तौलिया, झाड़न आदि विभिन्न वस्त्रों का उपयोग किया जाता है। तात्पर्य यह है कि मानव जीवन के विभिन्न क्रिया-कलापों से वस्त्रों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्त्र हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के सूचक हैं।

वस्त्र निर्माण कला में उत्तरोत्तर विकास होता रहा है। प्रारम्भ में जिन रेशों की खोज की वे सभी प्रकृति प्रदत्त थे। प्राचीन समय में पेड़-पौधों तथा पशुओं के बालों से प्राप्त रेशे ही उस समय वस्त्र निर्माण में काम आते थे। सभ्यता व संस्कृति के विकास के साथ-साथ एक-से-एक सुंदर वस्त्रों का निर्माण होने लगा। वस्त्रों की प्रारम्भिक एवं सूक्ष्मतम इकाई रेशा है। इसके बिना वस्त्र निर्माण कार्य असम्भव है। रेशा या तंतु (Fibre) बाल सदृश व्यास की इकाई है जिसकी लम्बाई, उसकी चौड़ाई से कम-से-कम सौ गुना अधिक होती है।

रेशों को उनकी प्राप्ति के स्रोत एवं निर्माण प्रक्रिया के आधार पर निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है–

वस्त्रोपयोगी रेशों का वर्गीकरण

- **प्राकृतिक रेशे**–
  - **वानस्पतिक**–कपास, लिनन, कपोक, जूट हैम्प
  - **जान्तव**–ऊन, रेशम
  - **धात्विक**–एस्बेस्टम, जरी, सोने-चांदी, तांबे के तार आदि
- **कृत्रिम रेशे**–
  - **मानवीकृत**–रेयॉन
  - **रासायनिक**–नायलॉन, पौलियस्टर
- **विशिष्ट रेशे**– मिश्रित रेशे

I. प्राकृतिक रेशे

A. वानस्पतिक तन्तु– इस प्रकार के रेशे, पौधों की कोशिकाओं में प्राप्त सैल्यूलोज के बने होते हैं।

1. **कपास**– यह रेशा कपास के पौधे से प्राप्त होता है। यह सभी वानस्पतिक रेशों में सर्वश्रेष्ठ होता है। ग्रीष्म ऋतु में कपास का पौधा उगता है। कपास के पौधों में जब फूल निकलते हैं और पककर जब फूल झड़ जाते हैं तो उसमें से कोए (Pools) निकल आते हैं। कोए परिपक्व होकर फट जाते हैं तथा कपास के रेशे बीज के चारों तरफ चिपके दिखाई देने लगते हैं। इसी अवस्था में कोए को तोड़कर एकत्र कर लिया जाता है तथा उनसे रुई निकालकर सूत का निर्माण कर वस्त्र बनाये जाते हैं।

विशेषताएं एवं उपयोगिता :

भौतिक विशेषताएं– i. कपास के रेशे में 80-90 प्रतिशत तक सैल्यूलोज होता है।

ii. अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखने पर कपास का तंतु चपटा, बल खाये फीते के समान दिखाई देता है (चित्र 19.1)।

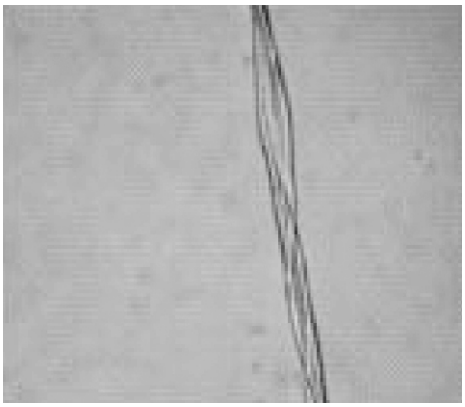

चित्र 19.1 : **कपास तन्तु**

iii. कपास के रेशे की लम्बाई अन्य रेशों से लगभग आधी से ढाई इंच कम होती है।

iv. कपास के रेशे की सतह खुरदरी होती है तथा इसमें चिकनाहट व चमक का अभाव रहता है।

v. कपास का रेशा अत्यधिक मजबूत होता है, तथा गीला होने पर इसकी मजबूती और भी बढ़ जाती है।

vi. कपास के रेशे में प्रत्यास्थता (Elasticity) नहीं होने के कारण इसे खींचकर बड़ा नहीं कर सकते एवं ये शीघ्र ही सिकुड़ जाता है।

vii. कपास का रेशा अधिक खींचने पर टूट जाता है।

viii. कपास का रेशा नमी को जल्दी सोखता है, इसी कारण गर्मी में इस तंतु से बने वस्त्र पसीने को सोखकर शीतलता प्रदान करते हैं। जैसे–तोलिये, अंत:वस्त्र आदि।

ix. कपास का तंतु मजबूत होने के कारण धुलाई के समय रगड़ने, पीटने से वस्त्र पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है।

रासायनिक विशेषताएं :

i. कपास का रेशा सान्द्र अम्ल से नष्ट हो जाता है।

ii. इस रेशे पर क्षार का प्रभाव नहीं पड़ता है अत: इसे साफ करने के लिए क्षारीय पदार्थ का उपयोग किया जाता है।

iii. कपास के रेशे पर ब्लीच का प्रभाव नहीं पड़ने के कारण सफेद सूती वस्त्रों पर विरंजक का प्रयोग कर सकते हैं।

iv. कपास के रेशे की ताप को सहन करने की क्षमता सर्वाधिक होती है परन्तु लगातार सूर्य के प्रकाश में रहने पर यह निर्बल पड़ने लगता है एवं पीलापन आ जाता है।

v. कपास के रेशे पर अन्य रंग शीघ्रता से नहीं चढ़ते हैं।

vi. नम, उष्ण तथा प्रकाशहीन स्थान पर अधिक समय तक रखे जाने से कपास के रेशों में फफूंद लग जाती है, चित्तीदार धब्बे–से बन जाते हैं तथा अन्तत: सड़–गल जाते हैं।

2. लिनन (Linen)

ये रेशे सन (Flax) के पौधे के तने और डंठल से प्राप्त होते हैं। पौधे के पकने पर इसे जड़ सहित उखाड़कर बण्डल बनाकर सुखा दिया जाता है। सूखने पर बीज व पत्ते अलग कर तने के बण्डलों को पानी में गलने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस क्रिया के दौरान खमीरीकरण होने से रेशों को जोड़ने वाले पदार्थ गोंद, पैक्ट्रिन, मोम आदि नष्ट हो जाते हैं और रेशे अलग हो जाते हैं। बण्डल के सूखने पर, मशीनों से कूट कर छाल पूरी तरह से हटा दी जाती है और रेशे अलग हो जाते हैं। इन रेशों की कंघी (Combing) कर कताई द्वारा धागा तैयार कर लिया जाता है जो कि कपड़ा बुनने के लिए तैयार होता (चित्र 19.2) है।

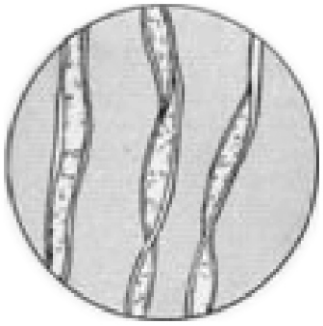

चित्र 19.2 : **लिनन तन्तु**

विशेषताएं एवं उपयोगिता

भौतिक विशेषताएं– i. लिनन में 70 प्रतिशत सैल्यूलोज और बकाया 30 प्रतिशत पैक्ट्रिन, पानी व अन्य अशुद्धियां होती हैं।

ii. अणुवीक्षण यंत्र से देखने पर ये तंतु बेलनाकार, गोल तथा चमकदार बांस के समान गांठे लिये होता है।

iii. लिनन का रेशा प्राकृतिक रेशों में रेशम के बाद सर्वाधिक लम्बा रेशा है।

iv. लिनन के रेशे में तनाव सामर्थ्य कम होती है, अत: यह खींचने पर शीघ्र ही टूट जाता है।

v. लिनन का रेशा कम लचीला होने से इससे बने वस्त्रों में सलवटे पड़ जाती है।

vi. लिनन ताप का सुचालक होने के कारण शरीर की गर्मी को बाहर निकाल देता है अत: गर्मी में ये शीतलता प्रदान करता है।

vii. यह नमी को शीघ्र सोखकर वस्त्र को सुखा देता है, इस कारण लिनन से बने तोलिये एवं रूमाल अच्छे रहते हैं।

viii. यह रेशा कोमल एवं चमकीला होने के कारण इस पर धूल व मिट्टी नहीं जमती तथा धब्बे भी सरलता से नहीं पड़ते हैं।

ix. यह रेशा गीला होने पर मजबूत हो जाता है अत: आसानी से धुलाई

कर सकते हैं।

x. लिनन पर कीटाणु एवं जीवाणु आसानी से नहीं पनपते हैं।

xi. लिनन के रेशे प्रकाश एवं धूप से भी जल्दी प्रभावित नहीं होते, लेकिन लम्बे समय तक प्रकाश में रखने पर धीरे-धीरे ये खराब होने लगते हैं। लिनन से तौलिये, चद्दर, पर्दे, मेजपोश आदि बनाये जाते हैं।

रासायनिक विशेषताएं :

i. लिनन का रेशा सान्द्र अम्ल से नष्ट हो जाता है।

ii. क्षार का कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन तीव्र क्षार युक्त साबुन का अधिक समय तक प्रयोग करने पर सफेद वस्त्र में पीलापन आ जाता है।

iii. लिनन की सतह कड़ी होने के कारण इसे सरलता से रंगा नहीं जा सकता और रंग आसानी से उतर भी जाते हैं।

iv. लिनन पर तीव्र ब्लीच से तन्तु खराब हो जाता है। इस पर केवल घरेलू विरंजक ही काम में लाये जा सकते हैं।

v. पसीने को अति शीघ्रता से सोख लेता है, लेकिन उसके बाद इसे जल्दी से धो लेना चाहिये क्योंकि पसीना अम्लीय होता है।

3. जूट

जूट के रेशे जूट के पौधे के तने से प्राप्त होते हैं। भारत में कपास के बाद इसका ही उपयोग अधिक होता है। जूट के पौधे के तने को काटकर गलने के लिए पानी में छोड़ दिया जाता है, जिससे इनकी ऊपरी छाल गल जाती है। इनके रेशे लिनन के रेशे के समान पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। स्पर्श में चिकने एवं रेशम के समान चमकदार होते हैं लेकिन कड़कीले (Brittle) होते हैं। अत: इनसे चमकदार परंतु कड़े एवं खुरदरे सूत का निर्माण होता है इसलिए इन रेशों से पहनने के वस्त्र नहीं बनाये जाते हैं। इसका उपयोग टाट, बोरी, डोरी, दरियां, गलीचे आदि बनाने के लिए किया जाता है। मुख्यत: इसका उपयोग बोरी बनाने में किया जाता है, पैकिंग में इसका उपयोग अधिक होता है क्योंकि इन के रेशों में प्राकृतिक रूप से कीड़े-मकोड़ों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विद्यमान होती है।

4. हेम्प (Hemp)

हेम्प का रेशा गहरे भूरे रंग का होता है। यह रेशा सीधा एवं चमकदार होता है, परन्तु रूक्ष, कड़ा एवं खुरदरा होता है। हेम्प का रेशा काफी मजबूत एवं टिकाऊ होता है। इसका उपयोग घरेलू चीजें जैसे-गलीचे, केनवास, कालीन, रस्से, डोरी, बेल्ट आदि में किया जाता है।

हेम्प के रेशे सान्द्र व गर्म क्षार से नष्ट हो जाते हैं।

5. कपोक

कपोक कपास के समान होता है। लेकिन कताई के लिए उपयुक्त नहीं होता है, क्योंकि इसके रेशों में ऐंठन के गुण का सर्वथा अभाव होता है, जिसके कारण इससे धागे नहीं बनाये जा सकते हैं। इस रेशे में नमी अवरोधक गुण होने के कारण इसका उपयोग वायुयानों में ध्वनि अवरोधक के रूप में किया जाता है इसके अलावा तकिया व गद्दे में भरने के काम आते हैं। इसके रेशे शीघ्रता से सूख जाते हैं।

B. जान्तव तन्तु (Animal Fibre)

जानवरों एवं कीड़ों से प्राप्त रेशे को जान्तव रेशे या प्राणिज रेशे कहते हैं। ये रेशे प्रोटीन से बने होने के कारण उन्हें प्रोटीन तन्तु भी कहा जाता है। रेशम के रेशे रेशम के कीड़े (Silkworm) से प्राप्त होते हैं जबकि ऊन के रेशे भेड़, बकरी, ऊँट आदि जानवरों के बालों से प्राप्त होते हैं।

1. रेशम (Silk)

इस तंतु से बने वस्त्र अलौकिक सुंदरता एवं उत्कृष्टता के कारण सभी वस्त्रों की रानी (Queen of all fabrics) कहलाती है। क्योंकि इसका रेशा सर्वाधिक चमक, कोमलता, सुंदरता एवं आकर्षण लिए होता है। रेशम के कीड़ों को शहतूत की पत्तियों पर पाला जाता है। कीड़े के मुख के पास अति महीन छिद्र उपस्थित होते हैं जिनसे होकर कीड़े लार (Saliva) जैसे पदार्थ को स्रावित करते हैं और इस पदार्थ को कीड़े अपने चारों ओर लपेटते जाते हैं। वायु के सम्पर्क में आकर लार सूखती जाती है, यह अवस्था कोकून कहलाती है। रेशे प्राप्त करने के लिए कोकून को खौलते हुए पानी में डालकर मार दिया जाता है व रेशे को रील पर लपेट लिया जाता है। सबसे पहले रेशम का उत्पादन चीन में हुआ था (चि

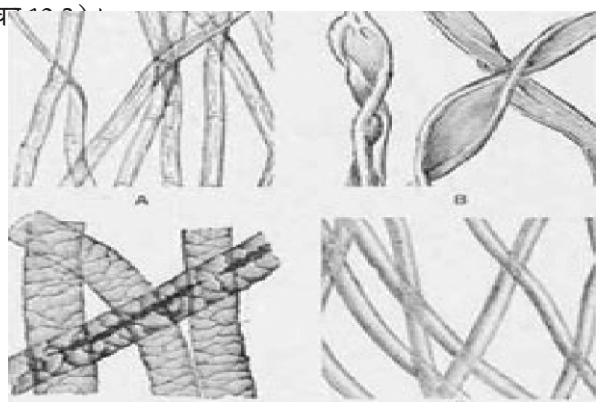

चित्र 19.3 : **रेशम तंतु**

विशेषताएं एवं उपयोगिता

भौतिक विशेषताएं

i. रेशम के रेशे का 95 प्रतिशत भाग प्राकृतिक गोंद सैरिसिन तथा फाइब्रिन प्रोटीन का बना होता है, शेष 5 प्रतिशत भाग मोम, वसा एवं लवण से बना होता है।

ii. सूक्ष्मदर्शी से देखने पर रेशम का रेशा बारीक, सीधा, चिकना, चमकदार, पारदर्शी, छड़ के समान दिखाई देता है।

iii. रेशों के बीच में कहीं-कहीं चिपकने वाले पदार्थ भी दिखाई देते हैं, ये सैरिसिन होते हैं।

iv. प्राकृतिक तंतुओं में सबसे अधिक लंबाई रेशम के रेशों की होती है। इन्हें फिलामेट कहते हैं।

v. लंबाई अधिक होने के कारण ये रेशा सर्वाधिक मजबूत होता है।

vi. सीधे व लंबे रेशे होने के कारण इनमें लचीलापन एवं पर्याप्त प्रत्यास्थता तथा प्रतिस्कंदता होती है। इसी कारण रेशमी वस्त्र सर्वाधिक कोमल होते हैं।

vii. ये रेशे साधारण खींचतान व दबाव से प्रभावित नहीं होते हैं।

viii. रेशे के तंतु गीला होने पर इसकी शक्ति 20 प्रतिशत तक कम हो जाती है, इसलिए इसे रगड़ व मसलकर नहीं धोना चाहिए। ड्राईक्लीनिंग इसके लिए उपयुक्त विधि है।

ix. रेशम नमी को जल्दी सोख लेता है व अच्छी अवशोषण क्षमता होने के कारण यह पहनने में आरामदायक वस्त्र है।

x. रेशम ताप का कुचालक होने के कारण शरीर की गर्मी को बाहर नहीं जाने देता, इसलिए सर्दियों के लिए उपयुक्त वस्त्र है।

xi. धूप में सुखाने से इसके रेशे कमजोर हो जाते हैं, इसी प्रकार इस्त्री भी कम तापमान पर करनी चाहिये।

रासायनिक विशेषताएँ

i. तीव्र अम्ल से रेशम के रेशे खराब हो जाते हैं जबकि कार्बनिक व तन्तु अम्ल रेशों की चमक बढ़ा देते हैं।

ii. उदासीन या हल्के क्षार से प्रभावित नहीं होते हैं।

iii. रेशम पर तीव्र ब्लीच का प्रयोग न करके, हाइड्रोजन परॉक्साइड जैसे हल्के ब्लीच काम में लेने चाहिए।

iv. रेशम का रेशा सामान्यतया जीवाणुरोधी है लेकिन गीला व बन्द रखने पर फफूंद लग सकती है।

v. रेशम के धागे को विभिन्न प्रकार के रंगों जैसे अम्लीय, क्षारीय इत्यादि से आसानी से रंगा जा सकता है।

2. ऊन (Wool)

यह जानवरों से प्राप्त प्राकृतिक प्रोटीनयुक्त तंतु है। अधिकतर ऊन भेड़ों के बालों से प्राप्त होती है, इसके अलावा ऊंट, खरगोश, हिरण, बकरी के बालों से भी तैयार की जाती है। ऊन तैयार करने के लिए पहले जानवरों को कीटाणुनाशक के घोल से नहलाया जाता है, इसके बाद शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में ऊन हाथों या मशीनों द्वारा काती जाती है। इस कती ऊन को फ्लीस (Fleece) ऊन कहते हैं। यह क्रिया बसन्त ऋतु में की जाती है। मरे हुए जानवर से ऊन निकालने के लिए उसके शरीर पर रासायनिक पदार्थ लगाया जाता है और खींच कर बाल निकाले जाते हैं, इस प्रकार की ऊन को खींची हुई ऊन (Pulled wool) कहते हैं।

जानवर के शरीर के अलग-अलग हिस्सों से काटे रेशे अलग-अलग किस्म में होते हैं, जिन्हें उनकी लम्बाई, रंग, आकार, लचीलापन और बारीकी के अनुसार छांट लिया जाता है। छांटी हुई ऊन की अशुद्धियां दूर करने हेतु उसे हल्के अम्ल के घोल में रखा जाता है जिससे पसीना, मोम आदि अशुद्धियां दूर हो जाती हैं। यदि इससे भी ऊन साफ नहीं हो तो इसे कार्बोनाइजिंग की क्रिया से साफ किया जाता है एवं सल्फ्यूरिक अम्ल या हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से धोकर नमी वाले वातावरण में सुखाते हैं। जिससे उसकी कोमलता व लचीलापन बना रहे। इसके बाद ऊन पर जैतून के तेल का छिड़काव कर कार्डिंग की प्रक्रिया द्वारा रेशों को समानान्तर रखकर मोटी पूनियां बना ली जाती है, जिनकी आवश्यकतानुसार रंगाई व कताई कर लेते हैं।

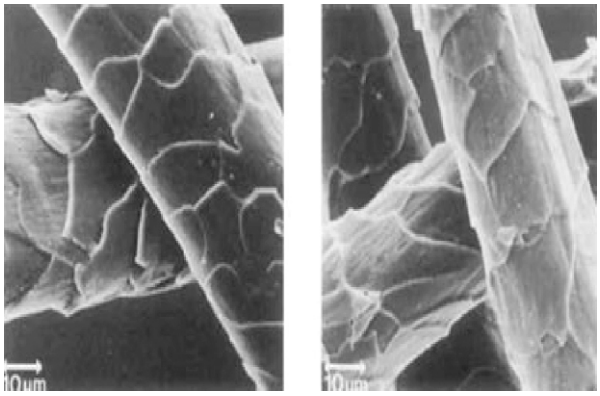

चित्र 19.4 : **ऊन के तन्तु**

विशेषताएँ एवं उपयोगिता

भौतिक विशेषताएं :

i. ऊन का रेशा प्रोटीन प्रधान रेशा है जो कि केरेटिन (Keratin) नामक प्रोटीन से बना होता है।

ii. ऊनी रेशे में गन्धक (Sulpher) पाया जाता है।

iii. सूक्ष्मदर्शी से देखने पर ऊनी रेशा बहु कोशिकीय, टेडा-मेढ़ा तथा दोनों किनारों पर नुकीला व मध्यम में कुछ गोलाकर दिखाई देता है (चित्र 19.4)।

iv. ऊनी रेशे की कोमलता, रंग व चमक जानवर की जाति तथा शारीरिक अंग जहां से ऊन निकाली गई इस पर निर्भर करती है।

v. ऊनी रेशा प्राकृतिक रेशों में सबसे कमजोर रेशा होता है। गीला होने पर इसकी मजबूती 25 प्रतिशत तक और कम हो जाती है, अत: रगड़ कर धुलाई नहीं करनी चाहिये।

vi. नमी, गर्मी एवं दबाव से ऊनी रेशे फूलकर फैल जाते हैं तथा सूखने पर आपस में जुड़ने लगते हैं।

vii. ऊनी रेशों में प्रत्यास्थता का गुण होने के कारण ये दबाने या खींचकर छोड़ देने पर पुन: अपने मौलिक स्वरूप में आ जाते हैं। इसी कारण इनमें सलवटें नहीं पड़ती हैं।

viii. ऊनी रेशा शुष्क ताप को सहन नहीं कर सकता। इसलिए ऊनी वस्त्र पर नरम-पतला कपड़ा डालकर इस्त्री करनी चाहिये।

ix. ऊनी वस्त्र पानी को जल्दी सोखता है।

x. ऊनी रेशा आसानी से आग नहीं पकड़ता है। इसी कारण ऊन द्वारा बने हुए कम्बल आग बुझाने के काम आते हैं।

xi. छोटे तंतुओं से ऊनी वस्त्र तथा लम्बे तन्तुओं से वर्स्टेड वस्त्र बनाए जाते हैं।

xii. ऊनी रेशे में परतदार तंतु होने के कारण रिक्त स्थानों में वायु ठहर कर वातावरण की वायु से गर्म हो जाती है और ऊनी वस्त्रों का गर्म रहने का गुण बढ़ जाता है।

रासायनिक विशेषताएँ

i. ऊनी रेशों पर तन्तु अम्ल के घोल से कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है।

ii. क्षार के उपयोग से ऊनी रेशा पीला एवं कड़ा हो जाता है।

iii. कम शक्तिशाली एवं गर्म क्षार से ऊनी वस्त्र गल जाते हैं अत: कम उदासीन तरल साबुन में ही धोना चाहिए।

iv. ऊनी रेशों पर अमोनियम कार्बोनेट और बोरेक्स जैसे तनुक्षार सुरक्षित रहते हैं।

v. ऊनी कपड़ों पर अम्लीय रंग आसानी से एवं पक्के चढ़ते हैं तथा रंग सब तरफ एक साथ चढ़ता है।

vi. ऊनी वस्त्रों पर ब्लीचिंग पाउडर का प्रयोग नहीं करना चाहिए। आवश्यक होने पर केवल हाइड्रोजन परॉक्साइड जैसे हल्के ब्लीच को काम में ले सकते हैं।

vii. ऊनी वस्त्रों को नमी वाले स्थान पर रखने से फफूंदी लग जाती है। कीड़े भी ऊन को नष्ट कर देते हैं। इसलिए इन्हें रखते समय इनमें नेथलीन की गोली, कपूर या नीम की सूखी पत्तियां रखकर बन्द कर देना चाहिए। अखबार में लपेट कर रखने पर भी कीड़ों से सुरक्षा हो जाती है।

C. खनिज (धात्विक) तन्तु

प्रकृति में मुख्य ऐसे भी खनिज पदार्थ एवं धातु पाये जाते है जिन्हें विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा गलाकर, खींचकर, बटकर व ऐंठन देकर रेशे तैयार किये जाते हैं, सोने, चाँदी, ताम्बे आदि धातु को गलाकर, खींचकर, ऐंठन देकर सूक्ष्म, कोमल व लचीले रेशे तैयार किये जाते हैं। सभी खनिज रेशों से बने वस्त्र भारी होते हैं। इन्हें धोना व स्वच्छ रखना भी एक समस्या हो जाती है। एस्बेस्टास का प्रयोग अग्नि अवरोधक वस्त्र बनाने के लिए किया जाता है।

II. कृत्रिम रेशे

कृत्रिम रेशे वे रेशे हैं जो प्रकृति से प्राप्त नहीं होते हैं। इन्हें बनाने के लिए विभिन्न रासायनिक पदार्थों को रासायनिक एवं यांत्रिक विधियों से रेशे का रूप दिया जाता है। कृत्रिम रेशे प्राकृतिक रेशों की तुलना में अधिक टिकाऊ, मजबूत व आसानी से धुलाई योग्य होते हैं।

A. मानवीकृत रेशा–रेयॉन (Rayon)

इस रेशे को कृत्रिम रेशम भी कहते हैं क्योंकि इसकी चमक रेशम के समान होती है। इसे मानवीकृत रेशा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसे बनाने में रासायनिक पदार्थ के साथ प्रकृति से प्राप्त बांस व लकड़ी की लुग्दी तथा कपास का प्रयोग होता है। इन सभी प्राकृतिक चीजों को रासायनिक पदार्थों में मिलाकर गाढ़ा घोल बनाकर अत्यंत सटीक व महीन छिद्रयुक्त नली जिन्हें स्पीनिरेट (Spinneret) कहते हैं, इसमें से निकालकर इच्छानुसार लंबाई तथा मोटाई के रेशे प्राप्त किये जाते हैं। रेयॉन का रेशा प्रयुक्त रसायन तथा निर्माण की विशिष्ट विधियों के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है जैसे-नाइट्रो सैल्यूलोज रेयॉन, विस्कॉस रेयॉन, क्यूप्रामोनियम रेयॉन एवं एसिटेट सैल्यूलोज रेयॉन आदि।

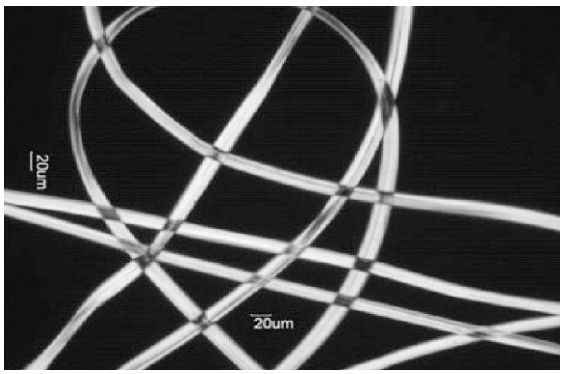

चित्र 19.5 : **रेयॉन तन्तु**

विशेषताएं व उपयोगिता

भौतिक विशेषताएं :

i. रेयॉन चाहे जिस भी विधि से निर्मित किया जाये, इसका मूल आधार पौधे में पाया जाने वाला सैल्यूलोज (Cellulose) ही रहता है।

ii. रेयॉन की सूक्ष्मदर्शीय रचना उसके निर्माण विधियों पर निर्भर करती है। जैसे-**विस्कॉस रेयॉन** छड़ जैसा दिखाई देता जिसमें पतली-पतली धागे के समान धारियां पूरी लम्बाई में दिखाई देती हैं। ये धारियां चमकदार दिखती हैं। **क्यूप्रामोनियम रेयॉन**-मेहन, चिकना, छड़नुमा व चमकदार रेशम के समान दिखाई देता है (चित्र 19.5)।

एसिटेट रेयॉन भी छड़ के समान दिखाई देता है। इसमें चमक कम होती रहती है।

iii. मानवीकृत रेशा होने के कारण इस रेशे की लम्बाई इच्छानुसार रखी जा सकती है। लंबे रेशे को फिलामेन्ट कहते हैं। इनसे अत्यंत

सुन्दर रेशम के समान चिकने सतह वाले व कोमल वस्त्रों का निर्माण होता है। छोटे रेशे जिन्हें स्टेपल कहते हैं, इनसे फुज्जीदार सतह वाले कपड़े बनाये जाते हैं।

iv. रेयॉन का रेशा ऊन की अपेक्षा अधिक मजबूत होता है परन्तु सिल्क के अपेक्षा एक तिहाई कम मजबूत होता है। सूखी अवस्था में अधिक मजबूत होता है, गीली अवस्था में इसकी मजबूती 40-70 प्रतिशत कम हो जाती है। इन वस्त्रों को रगड़-रगड़ कर नहीं धोना चाहिए।

v. एसिटेट रेयॉन से बने वस्त्र पानी देर से सोखते हैं तथा ऊपर से ही भीगते हैं। पानी इनमें भीतर तक प्रविष्ट नहीं होता अत: ये शीघ्रता से सूख भी जाते हैं। इस रेयॉन से पानी वाले स्थान के पर्दे, छाते, बरसाती आदि बनाये जाते हैं।

vi. क्यूप्रायोनियम रेयॉन ताप का सुचालक होने के कारण गर्मी में ठंडक देता है। इससे बने वस्त्र हल्के होते हैं।

vii. विस्कॉस रेयॉन भी गर्मी में पहना जा सकता है लेकिन इसके धागे मोटे होने के कारण वस्त्र भारी होते हैं।

viii. एसिटेट रेयॉन ताप का कुचालक होने के कारण गर्म वस्त्रों में अस्तर लगाने के काम आता है।

ix. अत्यधिक ताप से रेयॉन का रेशा पिघल जाता है। नमी, ताप व दाब के सम्मिलित प्रयोग से जैसे भाप वाली इस्त्री (Steam Press) से इसमें विशेष चमक आ जाती है।

रासायनिक विशेषताएँ

i. अम्ल का रेयॉन पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। गर्म, तनु एवं तीव्र अम्ल से रेशे नष्ट हो जाते हैं।

ii. क्षार को सहन कर लेता है, परन्तु तीव्र घोल से रेशे कमजोर हो जाते हैं और वस्त्र की चमक भी कम हो जाती है।

iii. रेयॉन पर रंग बहुत अच्छे चढ़ते हैं इसे किसी भी रंग से सुन्दर व आकर्षक डिजाइनों में रंगा जा सकता है।

iv. रेयॉन का रेशा ब्लीच से प्रभावित होता है। हाइड्रोजन परॉक्साइड इसके लिए अच्छा विरजक है।

v. रेयॉन के रेशे पर जीवाणु तथा कीटाणु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु नमी होने पर वस्त्रों पर फफूंद लग जाती है।

B. रासायनिक रेशा–1. नायलॉन (Nylon)

इन रेशों में ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन तथा कार्बन निश्चित अनुपात में तथा संरचना में पाये जाते हैं। नायलॉन बनाने कोलतार से प्राप्त दो रसायन एडिपिक एसिड और हेक्सामिथिलीन डाई अमीन, दोनों को मिलाकर ऑटोक्लेव (प्रैशर कूकर जैसा बर्तन होता है) में गर्म करते हैं, जिससे नायलॉन पॉलीमर तैयार होता है। उस पॉलीमर पर ठंडा पानी डालकर परत के रूप में जमा लिया जाता है। इन्हें फ्लेक्स (Flakes) कहते हैं। इन्हें फिर से पिघलाकर गाढ़ा घोल बनाकर स्पिनरैट के छिद्रों में से रेशों के रूप में निकाल लिया जाता है जो कि हवा के सम्पर्क में आते ही सूख जाते हैं।

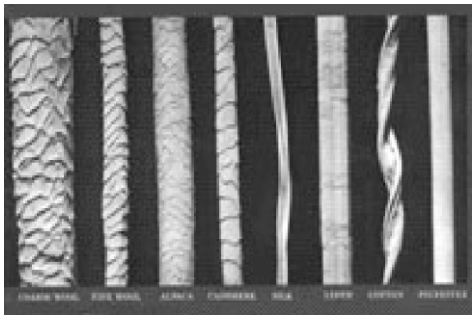

चित्र 19.6: **नायलॉन तन्तु**

विशेषताएं व उपयोगिता :

भौतिक विशेषताएं

i. नायलॉन, संश्लेषित कृत्रिम रेशा है। सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा देखने पर इसके तंतु गोलाकार, चिकने, चमकदार, सीधे व पारदर्शी होते हैं (चित्र 19.6)।

ii. नायलॉन का रेशा मजबूत होता है। ये रगड़ने, मोड़ने एवं ऐंठने पर भी टूटता नहीं है। इनसे बने वस्त्रों को काटने के लिए तेज धार वाली कैंची की आवश्यकता होती है।

iii. नायलॉन से बने वस्त्रों में नमी सोखने का अभाव रहता है अत: ये जल्दी सूख जाते हैं। ये वस्त्र गर्मी के मौसम में त्वचा के लिए आरामदायक नहीं होते हैं।

iv. ताप के कुचालक होने के कारण नायलॉन के वस्त्र सर्दी के लिए उपयुक्त होते हैं।

v. अधिक ताप पर ये रेशे पिघलकर दानों के रूप में जम जाते हैं।

vi. नायलॉन के रेशे में लचीलापन होने के कारण होजरी के वस्त्र बनाये जाते हैं।

vii. सामान्य ताप पर न तो ये फैलते हैं और ना ही सिकुड़ते हैं।

viii. नायलॉन के रेशे को एक निश्चित आकार एवं आकृति में हीट सेट कर दिये जाने पर वस्त्र सदैव अपना आकार, क्रीज, प्लीट आदि पर स्थिर रहते हैं।

ix. सभी नायलॉन के वस्त्रों की सतह चिकनी होती है अत: धूल नहीं जम जाती है इसे आसानी से धोया जा सकता है।

रासायनिक विशेषताएँ

i. इसके कई प्रकार हैं जैसे–नायलॉन, डेक्रोन, एक्रिलिक आदि।

ii. नायलॉन पर अम्ल का हानिकारक प्रभाव पड़ता है। जैसे–सल्फ्यूरिक अम्ल, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल इनसे ये रेशा नष्ट हो जाता है।

iii. नायलॉन का रेशा क्षार से अप्रभावित रहता है। इसलिए इसे किसी भी साबुन से धोया जा सकता है।

iv. नायलॉन के वस्त्रों को आसानी से नहीं रंगा जा सकता है। ये वस्त्र हल्के रंग में ही रंगे जा सकते हैं।

v. हल्के रंग के वस्त्रों पर धूप व प्रकाश का प्रभाव पड़ता है।

vi. नायलॉन के वस्त्रों पर फफूंदी व कीड़े नहीं लगते हैं।

vii. नायलॉन के वस्त्र पर्दे के परिधान हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं तथा दूसरे रेशों के साथ मिलाकर इनका बहुमुखी प्रयोग किया जा सकता है।

2. पॉलिस्टर (Polyester)

पॉलिस्टर का रेशा बनाने की विधि नायलॉन के समान ही होती है। इसके निर्माण हेतु डाई कार्बोक्सीलिक अम्ल व डाई हाइड्रिक एल्कोहल की क्रिया कराई जाती है, जिससे ये दोनों पदार्थ पॉलिमराइज्ड (Polymerized) होकर पॉलिमराइजिंग पात्र (Polymerizing vessel) द्वारा रिबन के आकार में निष्कासित होते हैं। रिबन को चिप्स के आकार में काट कर एक होपर (Hopper) में भेजा जाता है, जहां से ये मेल्टस्पिनिंगटैंक (Melt Spining Tank) में मिश्रित करने हेतु डाला जाता है। इस प्रकार प्राप्त गर्म घोल को हवा के संपर्क के साथ स्पिनरेट के छिद्रों द्वारा प्रवाहित किया जाता है। प्राप्त रेशों को गर्म अवस्था में ही खींचकर मजबूत व वांछित व्यास का धागा प्राप्त किया जाता है।

विशेषताएं व उपयोगिता

i. पॉलिस्टर से बने वस्त्रों में कणन सामर्थ्य (Breaking tenacity), प्रत्यास्थता (Elasticity), प्रतिस्कंदता (Resiliency) उच्च व श्रेष्ठ होती है।

ii. पॉलिस्टर के वस्त्र उच्च ताप पर सिकुड़ते हैं व पिघलने लगते हैं और एक काले अवशिष्ट में बदल जाते हैं।

iii. पॉलिस्टर के वस्त्र सलवट प्रतिरोधक होते हैं अत: इस्तरी करने की आवश्यकता नहीं होती है।

iv. पॉलिस्टर एक मजबूत रेशा होता है। इसे अन्य रेशों के साथ मिलाकर आरामदायक वस्त्र बनाये जाते हैं।

III. विशिष्ट रेशे

मिश्रित रेशे

अभी तक हमने विभिन्न रेशों की विशेषताओं और उनकी सीमाओं के बारे में पढ़ा। सभी रेशों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं किसी भी रेशे में सभी विशेषताएं नहीं होती हैं। जैसे-सूती रेशा ठण्डक प्रदान करता है, लेकिन इससे बने वस्त्रों में सलवटें जल्दी पड़ती हैं। नायलॉन के वस्त्र गर्म होते हैं, लेकिन उनमें सलवटें नहीं पड़ती। यदि सूती व नायलॉन के रेशों को मिलाकर वस्त्र बनाये जाते हैं तो ये ठण्डे भी रहेंगे व इनमें सलवटें भी नहीं पड़ेगी।

इस प्रकार दो या दो से अधिक प्रकार के रेशों को मिलाकर बनाये जाने वाले रेशे मिश्रित रेशे कहलाते हैं। इसी प्रकार दो प्रकार के रेशों की कताई एक साथ करके मिश्रित धागा या दो प्रकार के रेशों वाले अलग-अलग धागों को एक साथ बुनकर भी मिश्रित वस्त्र बनाते हैं। जैसे-टेरीकॉट, कॉट्स वूल, टेरी वूल, खादी सिल्क आदि। मिश्रित वस्त्रों की आसान देखभाल, कम कीमत एवं अधिक विशेषताएं होने के कारण ये आजकल अधिक प्रचलन में हैं।

सामान्यत: उपलब्ध होने वाले मिश्रित रेशे-

मिश्रित रेशे	संगठन
टेरीकॉट	टेरीलिन + कॉटन
कॉट्स वूल	कॉटन + वूल
टेरी वूल	टेरीलिन + वूल
टेरी सिल्क	टेरीलिन + सिल्क
कॉटन सिल्क	कॉटन + सिल्क

1. टेरीकॉट (Terry Cot)

इस मिश्रित वस्त्र में टेरीलिन व कॉटन, दोनों की विशेषताएं होती हैं। सूती रेशों के गुण जैसे-शीतलता, पसीना सोखना, आरामदायकता आदि पाये जाते हैं और टेरीलिन की वजह से ये वस्त्र टिकाऊ, सुन्दर, चमकदार, सिकुड़न अवरोधक होते हैं। ऐसे वस्त्र धोओ और पहनो (Wash & Wear) प्रकार के होते हैं, क्योंकि इन पर इस्तरी करने की आवश्यकता नहीं होती है।

2. टेरी सिल्क (Terry Silk)

ऐसे मिश्रित वस्त्रों में टेरीलिन की वजह से मजबूती, टिकाऊपन व सिकुड़न प्रतिरोधकता होती है तथा सिल्क की वजह से चमकदार व आकर्षक होते हैं।

3. टेरी वूल (Terry Wool)

ऐसे वस्त्रों में टेरीलिन के कारण सलवट अवरोधी, सिकुड़न प्रतिरोधकता, मजबूती, रगड़ व घर्षण रोधक होती है और ऊनी रेशे के कारण लचीला, सुन्दर, गर्म गुण लिए हुए होते हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता कपड़ा है।
2. रेशा वस्त्र की सूक्ष्मतम इकाई होता है।
3. रेशों का वर्गीकरण इनके प्राप्ति के स्रोत व निर्माण प्रक्रिया के आधार पर किया जाता है।
4. रेशे मुख्यतया 3 प्रकार के होते हैं-प्राकृतिक, कृत्रिम तथा खनिज रेशे।
5. कपास व लिनन वानस्पतिक रेशे हैं जो सेल्यूलोज से बने होते हैं।

6. रेशम व ऊन जान्तव तन्तु है और प्रोटीन प्रधान होते हैं।
7. कृत्रिम रेशे दो प्रकार के होते हैं–मानवीकृत एवं रासायनिक।
8. विभिन्न प्रकार के रेशों की भौतिक व रासायनिक विशेषताएं अलग-अलग होती हैं।
9. दो या दो से अधिक रेशों को मिलाकर मिली-जुली विशेषता वाले मिश्रित रेशे बनाये जाते हैं।
10. मिश्रित रेशों से बने वस्त्र अधिक उपयोगी होते हैं क्योंकि इनमें एक ही रेशे से बने वस्त्रों की अपेक्षा ज्यादा रेशों के गुण पाये जाते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) जान्तव रेशा है–

(अ) कपास (ब) ऊन

(स) लिनन (द) कपोक

(ii) सर्वाधिक लम्बा रेशा है–

(अ) रेशम (ब) कपास

(स) ऊन (द) लिनन

(iii) निम्न में रासायनिक रेशा है–

(अ) हेम्प (ब) लिनन

(स) नायलॉन (द) रेयोन

(iv) लिनन रेशा है

(अ) जान्तव (ब) वानस्पतिक

(स) खनिज (द) इनमें से कोई नहीं

2. मिश्रित रेशे किसे कहते हैं?
3. ऊनी वस्त्रों पर पानी का क्या प्रभाव पड़ता है?
4. कपास के रेशे में कितना प्रतिशत सैल्यूलोज होता है?
5. फ्लीस ऊन किसे कहते हैं?
6. रेशम पर अम्ल व क्षार का क्या प्रभाव पड़ता है।
7. जान्तव रेशे कौन-कौन से हैं?
8. रेयॉन को मानवीकृत रेशा क्यों कहा जाता है? यह रासायनिक रेशों से किस प्रकार भिन्न होता है?
9. जूट, हेम्प, कपोक के बारे में संक्षेप में लिखिए।
10. लिनन के रेशे वे संगठन, संरचना एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
11. वस्त्रोपयोगी रेशों का वर्गीकरण लिखिए।

उत्तरमाला :

(i) ब (ii) अ (iii) स (iv) ब

अध्याय 20

कताई एवं धागों का निर्माण

प्रारम्भिक काल से ही मनुष्य को अपने तन ढकने की आवश्यकता महसूस हुई। जैसे-जैसे सभ्यता एवं संस्कृति का विकास हुआ तब से वस्त्र निर्माण का अध्याय प्रारम्भ हुआ है।

वस्त्र निर्माण की प्रारम्भिक एवं मूलभूत इकाई को तन्तु (रेशे) कहा गया। इन तन्तुओं (Fiber) को समूह में पास-पास समानान्तर करते हुए सटाकर, खींचकर, ऐंठन एवं बल देकर बँटते हुए अविरल लम्बाई का धागा प्राप्त करते हैं जिसे सूत (Yarn) या धागा कहते हैं। इस प्रकार प्राप्त धागे को ताने एवं बाने से गूँथकर वस्त्र का निर्माण किया जाता है।

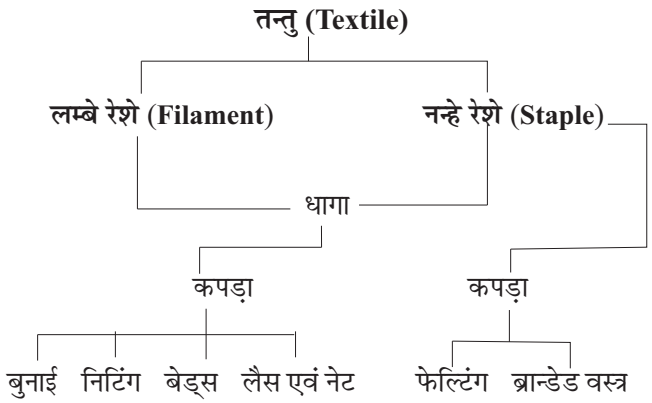

सूत या धागा लम्बे एवं छोटे आकार के तन्तुओं द्वारा बनाया जाता है। तन्तुओं से धागे का निर्माण कताई कहलाता है।

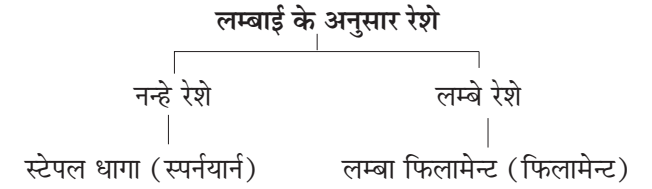

धागा निर्माण की अवस्थाएँ

धागे के निर्माण हेतु प्राकृतिक रेशे (छोटे-छोटे रेशे) बँटकर लम्बे धागे का निर्माण किया जाता है, कृत्रिम वर्ग के रेशे अर्थात् पॉलीमार के घोल को स्पीनेरेट के छिद्रों से निकालकर अविरल लम्बा धागा प्राप्त करते है। धागे के निर्माण प्रक्रिया इस प्रकार है (तालिका संख्या 20.1 , चित्र संख्या 20.1)-

तालिका संख्या 20.1 :

धागे की निर्माण विधि

धुनाई (Carding)	**कंघी करना** (Combing)	**खींचना** (Drawing out)	**घुमाव देना** (Roving)	**कताई** (Spinning)
(अशुद्धियां निकालना)	समानान्तर करना	छोटे-बड़े रेशे अलग करना	पानी में हल्की ऐंठन देना	धागा तैयार करना

1. **कार्डिंग**-प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त रेशे सामान्यत: उलझे एवं अशुद्धियों से युक्त होते हैं। कार्डिंग की क्रिया द्वारा इन अशुद्धियों को दूर कर रेशों को सीधा एवं समानान्तर करके पूनियाँ बनाई जाती हैं।
2. **कॉम्बिग**-कार्डिंग के पश्चात् बनी पूनियों को कंघी करके सुलझाया जाता है, इसमें छोटे तन्तु अलग हो जाते हैं व बड़े-बड़े तन्तु सीधे एवं समानान्तर हो जाते हैं। छोटे तन्तु से निम्न श्रेणी के वस्त्र बनाये जाते हैं।
3. **खींचकर निकालना**-बड़े व छोटे तन्तुओं को अलग करने की क्रिया ड्राइंग आउट है। इसके लिये पूनियों को बड़ी-बड़ी धिरियों पर खींचकर चढ़ा दिया जाता है जो तीव्र गति से घूम रही होती हैं। इससे लम्बे तन्तु छोटे तन्तु से अलग हो जाते हैं, इससे पूनियाँ वाँछित मोटाई या अपेक्षित व्यास की तैयार की जाती हैं।
4. **घुमाव देना**-खींचकर निकाले धागे पर कुछ घुमाव देकर हल्की-सी बँटाई की जाती है। समानान्तर एवं सीधे तन्तु इस क्रिया के द्वारा पास

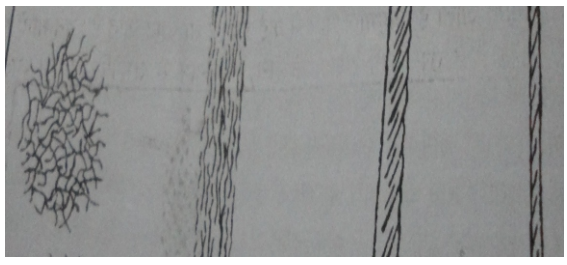

उलझे रेशे | समानान्तर जमे हुए रेशे (पूनी) | श्रोविंग प्रक्रिया तक बना धागा | धागा

चित्र संख्या 20.1 : **रेशे से धागे का निर्माण**

आकर संगठित हो जाते हैं, इस तरह तैयार धागा निर्बल होता है, इसे पक्का, मजबूत, सघन बनाने हेतु आगे कताई की जाती है।

5. **कताई**–यह धागा निर्माण की अन्तिम प्रक्रिया है। रोविंग से प्राप्त धागे की रोविंन को कताई मशीन पर चढ़ा लिया जाता है, इसमें कई रोलर लगे होते हैं। प्रत्येक रोलर की गति पहले वाले रोलर से अधिक होती है। धागे को इन रोलर्स से गुजारा जाता है। अन्तिम रोलर्स से निकलते-निकलते यह धागा अभीष्ट आकार एवं व्यास का बन जाता है।

कताई द्वारा धागा तैयार हो जाता है वस्त्र बनाने हेतु लम्बाई के आधार पर सूत दो प्रकार का होता है–

1. लघु आकारीय या स्टेपल धागा
2. लम्बा फिलामेन्ट

कताई के प्रकार (तालिका सं. 20.2)

आधुनिक युग में धागे का निर्माण दो प्रकार से होता हैं–

1. यान्त्रिक कताई,
2. रासायनिक कताई ।

1. **यांत्रिक कताई**–सामान्यत: प्राकृतिक रेशों से धागे बनाते समय इसी कताई का प्रयोग होता है। इसमें परम्परागत तरीके से कताई करते समय तकली एवं चरखा का उपयोग होता है। आधुनिक यान्त्रिक कताई में रिंग कताई, खुली अन्तिम कताई, घर्षण कताई, स्वयं ऐंठन वाली कताई, ऐंठन रहित कताई एवं इलैक्ट्रोस्टैटिक कताई की विधियों का प्रयोग होता है।
2. **रासायनिक कताई**–कृत्रिम रेशों से धागा बनाने हेतु रासायनिक कताई की जाती है। इसमें आर्द्र कताई, शुष्क कताई, पिघली कताई, बॉयोकम्पोनेन्ट रासायनिक कताई विधि का प्रयोग किया जाता है।

धागे का वर्गीकरण :

यांत्रिक एवं रासायनिक विधि द्वारा निर्मित धागे दो प्रकार के होते हैं (चित्र संख्या 20.2, 20.3)–

1. साधारण,
2. सम्मिश्रित एवं फैन्सी धागा।

1. साधारण–यह धागा एक ही वर्ग के तन्तुओं से बना होता है। यह इकहरे, दोहरे, बहुरेशीय डोरी आदि की तरह के होते हैं।
2. सम्मिश्रित एवं फैन्सी धागा–यह धागा जटिल संरचना वाला होता है, इसका निर्माण एक से अधिक वर्ग के तन्तुओं से होता है।

तालिका संख्या 20.2 : **कताई के प्रकार**

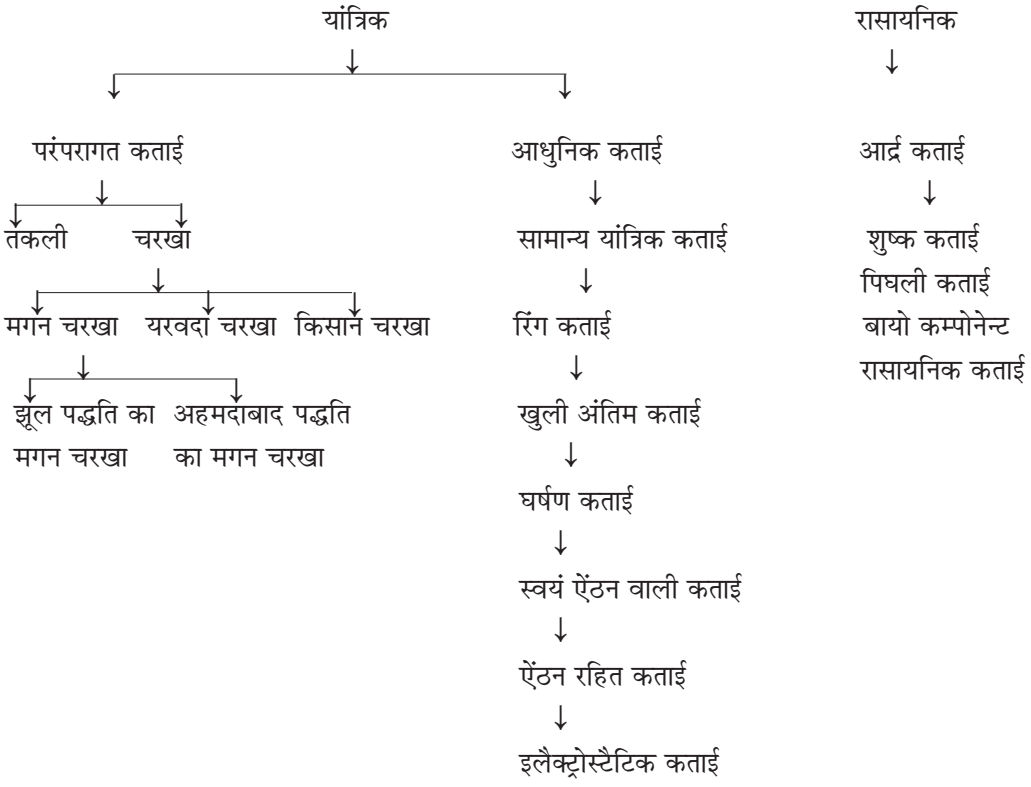

तालिका संख्या 20.3 : **सूत (धागा) के प्रकार**

साधारण

- एकहरा (एकरेशीय) — कमजोर एक लम्बा रेशा
- दोहरा — दो अलग-अलग एकरेशीय धागा मिलाकर
- बहुरेशीय — कई तैयार एकरेशीय धागों को मिलाकर
- केबल या कार्ड — रस्से एवं डोरी

सम्मिश्रित (चित्र 20.4)

1. स्लब धागा–निश्चित अन्तराल पर ऐंठन
2. फ्लेक–कम बँटा हुआ या बिना बँटा धागा (कमजोर)
3. स्पाएरल–धागे के व्यास, लंबाई एवं मोटाई में अन्तर
4. रेटाइन–धागे के निर्माण में बीच-बीच फँदे छोड़ना
5. लूप कुण्डलीनुमा–विभिन्न आकार के फंदे वाला धागा
6. गाँठ–धब्बे वाला–धब्बे का अनुभव
7. गैन्डल–दो या दो से अधिक रंगों के धागे
8. स्ट्रेच–खींचने पर फैलने वाला
9. बनावटी या टेक्सचर्ड
   - बनावटी सतह वाला
   - खींचा जाने वाला
   - वृहत बनावटी
   - लूपदार क्रिम्प
10. नोवेल्टी
11. लेरोटेक्स

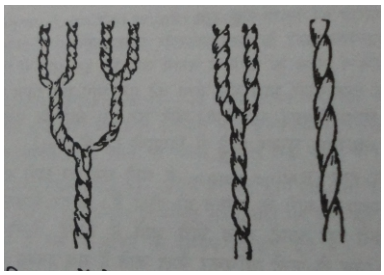

चित्र 20.2 साधारण धागा
(चार प्लाय, दो प्लाय, एक प्लाय)

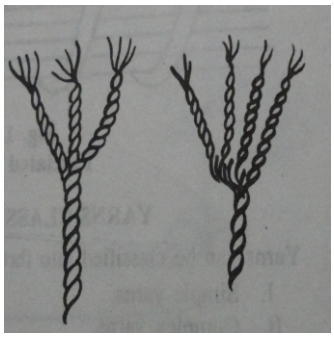

चित्र 20.3 **Card Yarn** या सम्मिश्रित धागा

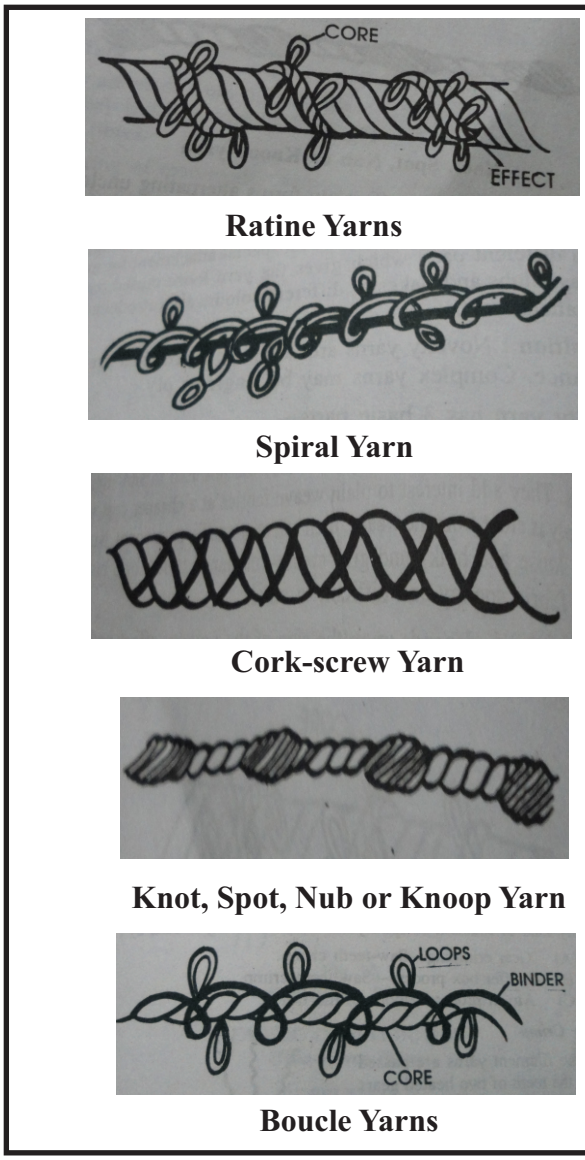

चित्र 20.4 सम्मिश्रित धागे के प्रकार

धागे की मजबूती–धागा कितना मजबूत है इसकी गणना दो प्रकार से की जाती है–

1. निश्चित वजन पद्धति (Fixed Weight System)
2. निश्चित लम्बाई पद्धति (Fixed Length System)

1. **निश्चित वजन पद्धति**–इस विधि में वजन पाउण्ड में लिया जाता है तथा प्रति पाउण्ड से तैयार लम्बाई गणांक (Count) होती है। इस पद्धति में जितने गणांक अधिक होंगे उतना धागा महीन एवं बारीक होता है।
2. **निश्चित लम्बाई पद्धति**–इसमें वजन को इकाई मानकर इसे डेनियर में व्यक्त करते हैं। इसमें धागों के वजन में उसका गणांक (Count) किया जाता है। इस पद्धति में जितने गणांक अधिक होंगे उतना धागा मोटा होगा।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. प्राकृतिक एवं कृत्रिम स्त्रोत दोनों से प्राप्त रेशों से धागे बनाये जाते हैं।
2. नन्हे रेशे से बने धागे स्लेपल धागे व लम्बे रेशों से बने धागे फिलामेन्ट कहलाते हैं।
3. रेशों की धुनाई, कंघी करना, खींचना, घुमाव देना और कताई करने से लम्बे धागे बनाते हैं।
4. धागों की कताई यांत्रिक व रासायनिक विधियों से की जाती है।
5. यांत्रिक एवं रासायनिक विधि से साधारण, मिश्रित एवं सजावटी धागों का निर्माण होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) रेशों से धागे बनाने की क्रिया को कहते हैं–

(अ) कताई (ब) बुनाई

(स) परिसज्जा (द) धुँनाई

(ii) परम्परागत कताई की जाती है–

(अ) आर्द्र कताई (ब) चरखा तकली

(स) इलैक्ट्रोस्टैटिक कताई (द) रिंग कताई

(iii) साधारण धागा बना होता है–

(अ) एक ही वर्ग के रेशे (ब) दो वर्ग के रेशे

(स) दो से अधिक वर्ग के रेशे (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

(iv) धागे की मजबूती निर्भर करती है–

(अ) लम्बाई व वजन (ब) धागे की चमक

(स) कताई का तरीका (द) सिर्फ धागे की लम्बाई

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो–

(i) रेशों से धागे बनाने की प्रक्रिया.....कहलाती है।

(ii) प्राकृतिक रेशों से धागे के निर्माण हेतु.....कताई विधि का प्रयोग किया जाता है।

(iii) कृत्रिम धागा.....कताई विधि से बनाया जाता है।

3. तन्तु किसे कहते हैं?
4. कार्डिंग की परिभाषा लिखो।
5. सम्मिश्रित धागा किसे कहते हैं?
6. गेन्डल धागा क्या है?
7. निश्चित वजन पद्धति क्या है?
8. धागे के निर्माण की प्रक्रिया समझाइये।
9. कताई प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं? कताई के प्रकारों का वर्गीकरण कीजिये।
10. धागों का वर्गीकरण कीजिए।
11. धागे की मजबूती की गणना कैसे करते हैं?

उत्तरमाला :

1. (i) अ (ii) ब (iii) अ (iv) अ
2. (i) कताई (ii) यांत्रिक (iii) रासायनिक

अध्याय 21

वस्त्रों की बुनाई

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही मानव का विकसित दिमाग वस्त्र निर्माण की ओर अग्रसर हुआ। प्रकृति की अनुपम कृति के प्रति आकर्षित होकर आदम ने कोमल, लचीले मजबूत रेशों को खोजा फिर उन्हें बँटकर वस्त्र निर्माण किया।

तालिका संख्या 21.1 : **वस्त्र निर्माण**

बिना रेशों द्वारा वस्त्र निर्माण

- कागज (नेपकीन)
- प्लास्टिक फिल्म एवं शीट (वस्त्र की निचली तह पर सहारा देने हेतु)
- पोलियूरिथेन फार्म (विसंवाहक वस्त्र) (ध्वनि एवं ताप विसंवाहक के रूप में)
- टापा वस्त्र (द्वीपों के निवासी कई परतों वाले परिधान के रूप में)

रेशों द्वारा वस्त्र निर्माण

- नमदा (ऊनी रेशों पर दाब नाप के प्रभाव ओढ़ने-बिछाने आदि तरह के वस्त्र बनाना)
- सूई पंच विधि (जालीनुमा वस्त्र)
- बिना बुना ब्राण्डेड वस्त्र ताप सुनन्य रेशों पर दाब एवं ताप प्रयोग करके
- यांत्रिक ब्राण्डेड वस्त्र दोहरी बुनाई (रूक्ष एवं सुनहरा वस्त्र कालीन, कम्बल आदि)
- लेमिनेटेड वस्त्र (क्विल्ट भर के, वस्त्र पर फोम चिपकाकर वस्त्र से वस्त्र चिपकाकर

सूत द्वारा वस्त्र निर्माण

- गूँथना (जूते की लैस, पैराशूट कार्ड)
- बुनना
  - ताना बुनाई
  - बाना बुनाई
    - रेशेल
    - रिवमिनी
  - सादी गोलाकार उलटे फंदे टारकोट
  - जाली या लैस
  - बुनाई

वस्त्र निर्माण तीन प्रकार से किया जाता है –

1. **बिना रेशों द्वारा वस्त्र का निर्माण–** इस विधि से निर्मित वस्त्र कम टिकाऊ तथा कम उपयोगी होते हैं, इसके अन्तर्गत कागज, प्लास्टिक फिल्म, प्लास्टिक शीट, पॉलियूरिथेन फोम, टापा वस्त्र आदि का निर्माण होता है।
2. **रेशों के उपयोग द्वारा वस्त्र का निर्माण–** इस विधि से नमदा सूई द्वारा पंच करके जालीनुमा वस्त्र, ब्रॉण्डेड बिना बुना वस्त्र, यांत्रिक ब्रॉण्डेड वस्त्र, लेमिनेटेड वस्त्र बनाये जाते हैं।
3. **सूत या धागे द्वारा वस्त्र का निर्माण–** गूँथना (दो-तीन धागों को आपस में गूँथना) इस विधि का प्रयोग करके लैस, पैराशूट कार्ड आदि, निटिंग विधि द्वारा बना वस्त्र, जाली या लैस द्वारा बना वस्त्र, बुनाई द्वारा वस्त्र बनाना आदि आते हैं।

वस्त्र निर्माण के उपरोक्त तीन प्रकारों में विभिन्न प्रकार के विभिन्न विधियों से वस्त्र बनाये जाते हैं। मुख्यतया प्रचलित विधियाँ जिसका अध्ययन हम कर रहे हैं, निम्न है–

1. **नमदा बनाना–** रेशों के द्वारा वस्त्र निर्माण विधि है। नमदा बनाने के लिये अधिकतर ऊनी रेशों का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इनमें ताप एवं दाब के प्रभाव से जम जाने का गुण होता है। अत: नमदा वह विधि है जिसमें छोटे-छोटे ढीले नमी युक्त तन्तुओं को उलझाकर आपस में जोड़ते हैं, फिर ताप एवं दाब के प्रभाव से जमाकर वस्त्र का रूप दिया जाता है। आजकल नमदा बनाने के लिये स्वचालित मशीनों का भी प्रयोग किया जाता है। नमदा की लम्बाई एवं चौड़ाई इच्छानुसार होती है, परन्तु मोटाई अधिक-से-अधिक 3'' एवं कम से कम 0.01'' रखी जाती है, इससे कम्बल, कोट, दुशाला, टोपी आदि बनाये जाते हैं।
2. **निटिंग–** धागे के उपयोग से वस्त्र निर्माण की विधि है। एक ही धागे से फँदे डालकर फिर उस फंदे में से फंदे निकाल कर वस्त्र पंक्ति दर पंक्ति बुना जाता है, सूती धागों से अंत:वस्त्र एवं ऊनी, कृत्रिम धागों से स्वेटर, मोजे, शॉल आदि बुने जाते हैं। इन वस्त्रों में प्रत्यास्थता का गुण अच्छा होने से ये पहनने पर शरीर रचना के

अनुरूप हो जाते हैं।

3. **ब्रेडिंग या लैस–** ब्रेड्स अर्थात् गुँथा हुआ फीता। इस विधि से तीन या तीन से अधिक धागों को गूँथकर चपटी, पतली या गोलाकार पट्टियाँ बनाकर कश्मीरी शॉलों पर लम्बाई में किनारों पर लगाया जाता है। लैस हाथ व मशीन दोनों से बनाई जाती हैं। इसे बनाने के लिये क्रोशिया, टेटिंग व अन्य विशिष्ट सूइयों का प्रयोग किया जाता है। सुन्दर, आकर्षक, वैभवपूर्ण सजावटी वस्त्र में ब्रेड्स व लैस का प्रयोग किया जाता है।
4. **बुनाई–** वस्त्र निर्माण की प्रचलित एवं पुरातन विधि है, इसमें एक लम्बवत एवं एक क्षैतिजीय धागे का प्रयोग करते हैं, जिसे क्रमशः ताना व बाना कहते हैं। बुनाई के लिये सबसे पहले लम्बवत धागे को बीम पर समानान्तर सटा हुआ कस कर ताना जाता है। ताने के धागे की लम्बाई बनाये जाने वाले वस्त्र की लम्बाई पर निर्भर करती है, फिर बाने के धागे को शटल पर लपेटकर ताने के धागे के बीच में से होकर चौड़ाई में फँसाकर निकाला जाता है, इस भराई विधि से वस्त्र बुना जाता है।

बुनाई की प्रक्रिया–वस्त्र निर्माण क्रिया में करघे पर धागों को तानकर वस्त्र बुनते समय विभिन्न क्रियाएँ एक के बाद एक निरन्तर दोहराते हुए की जाती हैं। ये क्रियाएँ हैं–

1. **शेडिंग–** हारनेस द्वारा ताने के धागे को ऊपर उठाना जिससे शटल को गुजरने के लिये शेड बन जाये।
2. **पीकिंग–** बने हुए शेड से शटल दाएँ से बाएँ ओर जाती है, जिससे ताने के धागे में बाने का धागा फँसता है, एक पंक्ति बुनती है, पुनः दूसरी पंक्ति में बाएँ से दाएँ ओर शटल जाता है, दूसरी पंक्ति बुनती है, वस्त्र को पंक्ति दर पंक्ति बुनना पीकिंग कहलाता है।
3. **बेटनिंग (ठोकना)–** पीकिंग क्रिया के बाद रीड लाने व बाने के धागे को सटाकर ठीक से ठोक देता है, जिससे सघन रचना वाला वस्त्र तैयार होता है, वह बेटनिंग (ठोकना) कहलाता है।
4. **लपेटना व छोड़ना–** वस्त्र निर्माण की अन्तिम प्रक्रिया है, पीकिंग एवं बेटनिंग के पश्चात् वार्प बीम हल्का सा घूमकर ताने के धागे को ढीला छोड़ देती है, क्लॉथ बीम उसी समय हल्का सा घूमकर बुना वस्त्र लपेट लेता है। इस प्रकार उपरोक्त चारों प्रक्रियाओं की क्रमबद्ध पुनरावृत्ति से वस्त्र का निर्माण होता है।

विभिन्न प्रकार की बुनाइयाँ

वस्त्र की बुनाई करघे द्वारा की जाती है। करघे के आविष्कार के पूर्व बुनाई प्रक्रिया में अधिक समय एवं श्रम लगता था। करघे के आविष्कार के पश्चात् बुनाई सरल एवं सुगम हो गई। पहले हथकरघे से बाद में विद्युत् करघे की सहायता से वस्त्र का निर्माण होने लगा। विद्युत् करघे से हथकरघे की अपेक्षा कम श्रम एवं समय में अधिक मात्रा में वस्त्र उत्पादन होने लगा।

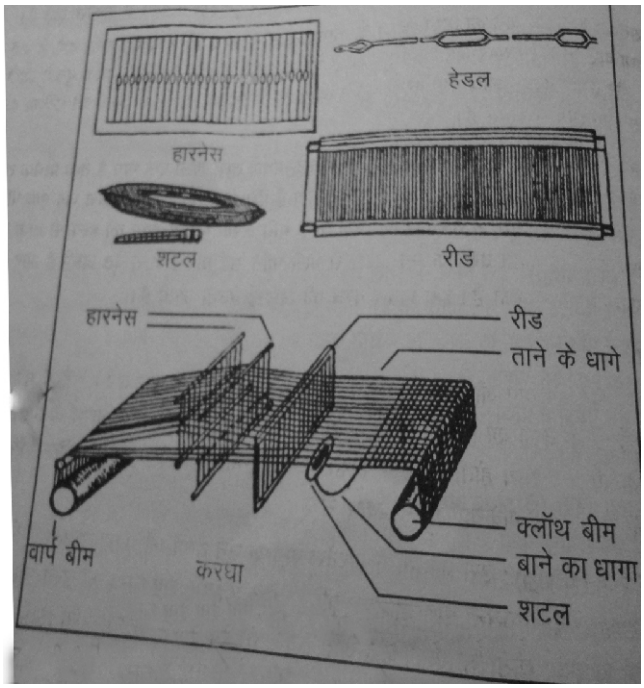

चित्र 21.1 : **करघे के विभिन्न भाग**

करघा :

वस्त्र निर्माण हस्त करघे या विद्युत करघे में से किसी से भी किया जाये, इन करघों के एक समान भाग होते हैं। प्रत्येक भाग अपने विशेष कार्य के लिये वस्त्र निर्माण में प्रयुक्त होता हैं।

करघे के भाग–करघे के भाग निम्नांकित हैं (चित्र 21.1)–

1. **वार्प बीम–** करघे के पिछले छोर पर बेलनाकार सिलेण्डर के रूप में स्थित होता है। इस पर ताने के धागों को समानान्तर लपेटा जाता है। ताने धागे का अन्तिम छोर क्लॉथ बीम से बंधा होता है। यह वार्प बीम लगातार घूमता रहता है, बाने के धागे भर जाने पर हल्की गति से घूम कर लपेटे हुए धागे को ढीला छोड़ता है जिससे बाने के और धागे भरे जा सकें तथा वस्त्रों की बुनाई लगातार होती रहे।
2. **क्लॉथ बीम–** करघे के अगले भाग में स्थित होता है, पहले तो वार्प बीम से आते हुए ताने के धागे का अन्तिम छोर इस पर लपेटे जाते हैं, जिससे ताने के धागे दोनों बीम पर अच्छे से कस जाए। कपड़ा बुनना जैसे ही शुरू होता है, वैसे ही इस बीम पर तैयार कपड़ा लिपटता जाता है। इसी कारण इसे क्लॉथ बीम कहा जाता है।
3. **हारनेस–** यह ताने के धागे को नियंत्रित करके वस्त्र की बुनाई में सहायक होता है। यह करघे में लगा हुआ असंख्य तार युक्त, जिन्हें हीडल (Heddle) कहते हैं, फ्रेम होता है। हैडल में एक छोटा छिद्र होता है, इसी छिद्र से ताने का धागा वार्प बीम की तरफ आता है, एक हैडल छिद्र से एक ही धागा गुजरता है। हारनेस ताने के धागे को ऊपर–नीचे करने की प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं (चित्र 21.2)।

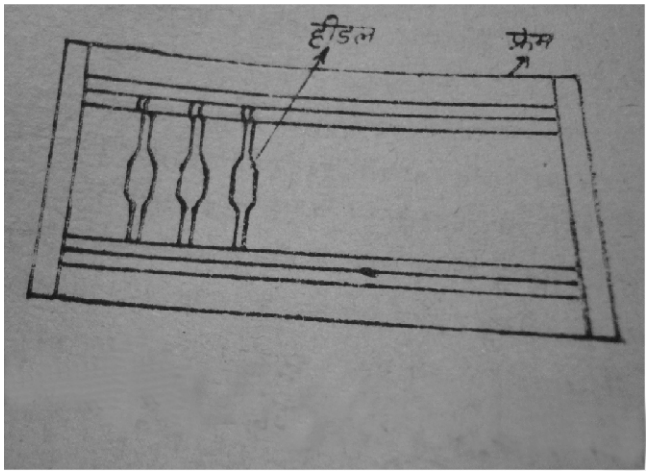

चित्र 21.2 : **हार्नेस जिसमें हीडल और फ्रेम दिखाई गई**

4.**शटल**– इस पर बाने के धागे को लपेटा जाता है। शटल दायें से बायें एवं बायें से दायीं ओर घूमती रहती है। इस पर घूमने से वस्त्र पंक्तिवार बुनता जाता है एवं तैयार होकर क्लॉथ बीम पर लिपट जाता है। शटल द्वारा एक पंक्ति बुनने की क्रिया को एक पिक (Pick) कहते हैं (चित्र 21.3)।

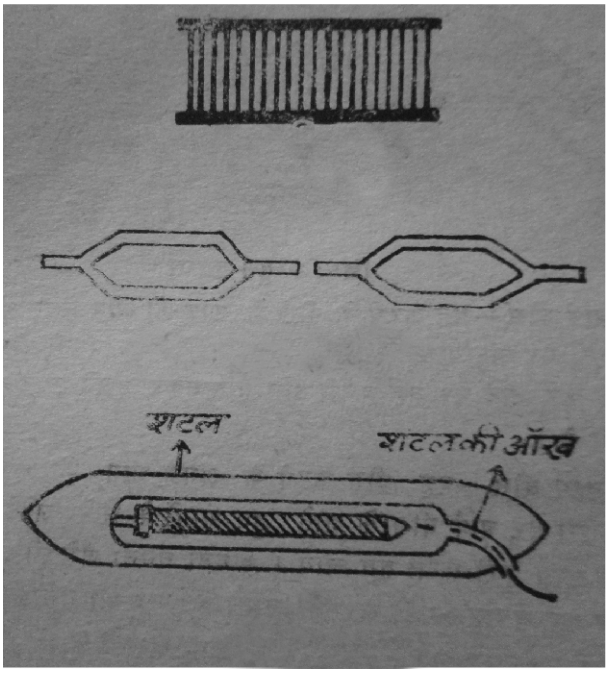

चित्र 21.3 : **शटल**

5. **रीड**– करघे में पतले तार से बना कंघी के आकार का भाग है, जब शटल द्वारा एक पंक्ति बुन कर तैयार हो जाती है, तब ये रीड बुने भाग को ठोक कर ठीक से बिठा देता है, जिससे वस्त्र की रचना हो जाती है।

बुनाई के प्रकार–ताने बाने की आपस में गुँथने की विधि पर ही बुनाई का प्रकार निर्भर करता है–

1. साधारण बुनाई 2. फैन्सी बुनाई।

यहाँ हम साधारण बुनाई के 3 तरीकों की विस्तृत चर्चा करेंगे।

तालिका संख्या 21.2, 21.3

1. **सादी बुनाई**– यह सरल एवं साधारण बुनाई है। इसमें बुनाई के लिये दो हारनेस का उपयोग होता है। एक सम धागों को दूसरा विषम धागों को नियंत्रित करता है। इसमें ताने के सूत क्रमशः बाने के सूत से ऊपर-नीचे से गुजरते हैं। बुनाई में जो धागा पहले ऊपर था, दूसरी बार में नीचे हो जाता है और जो धागा पहले नीचे जाता था, अब वह ऊपर हो जाता है। इसी क्रम में सम्पूर्ण वस्त्र बुन कर तैयार किया जाता हैं। सादी बुनाई से बने वस्त्र दोनों तरफ से एक समान दिखते है। सादी बुनाई में भेद लाने के लिये धागे की विभिन्न मोटाइयों या ताने और बाने में भिन्न प्रकार के रेशों का प्रयोग भी किया जाता है। इस बुनाई से बुने वस्त्र मजबूत एवं टिकाऊ होते हैं। सादी बुनाई से निम्न वस्त्र बनाये जाते हैं–सूती धागे से बने वस्त्र–वायल, लॉन, मलमल, केनवास आदि।

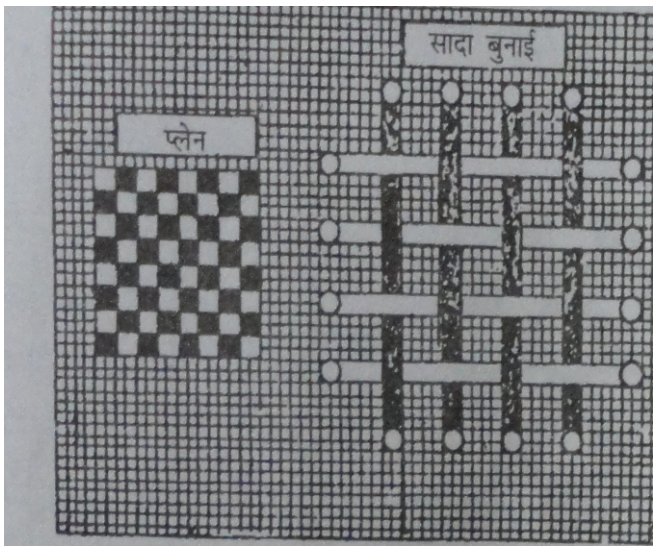

चित्र 21.4 सादा बुनाई

2. **ट्वील बुनाई**– यह दूसरी आधारभूत बुनाई है। ट्वील बुनाई से बने वस्त्र में तिरछी धारियां दिखाई देती है। इस बुनाई में बाने का एक धागा ताने के निश्चित संख्या (दो या अधिक) में धागे को लाँघ कर वस्त्र की बुनाई की जाती है। अगली क्रिया में यह स्थिति ताने के एक सूत को छोड़ कर होती है, जिससे तिरछी सीढ़ी की रचना बन जाती है। ट्वील बुनाई में लहर के समान धारियाँ बायीं से दायीं ओर अथवा दायीं से बायीं ओर जाती हुई दिखाई देती है। इस प्रकार की बुनाई जीन्स, वर्सटेड आदि में होती है। इस बुनाई से बने वस्त्र सर्वाधिक मजबूत एवं टिकाऊ होते हैं, अधिक घर्षण एवं रगड़ सहन कर सकते हैं।

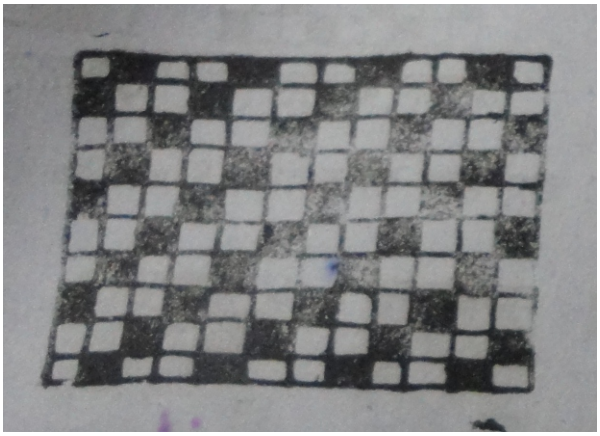

चित्र 21.5 ट्वील बुनाई

3. **साटिन बुनाई–** इस बुनाई से चिकने चमकदार वस्त्र बुनते हैं। इस विधि से बुने वस्त्रों में वस्त्र की सतह पर ताने के धागे मुख्य रूप से दिखाई देते हैं। बाने के धागे छिप जाते हैं। इससे सतह चिकनी दिखाई देती है। बुनाई विधि में बाने के धागे ताने के चार से अधिक धागों को फाँद कर निकलते हैं, जिससे बाने के धागे छिप जाते हैं और ताने के ही धागे दिखाई देते हैं। इस प्रकार की बुनाई से रेशम, रेयॉन तथा रासायनिक धागों से निर्मित वस्त्र बनाये जाते हैं ये वस्त्र सुन्दर व आकर्षण होते हैं एवं विशेष अवसरों एवं समारोह में पहने जाते हैं, बुनाई झीनी होने से यह वस्त्र इतने मजबूत नहीं होते हैं (चित्र 21.6)।

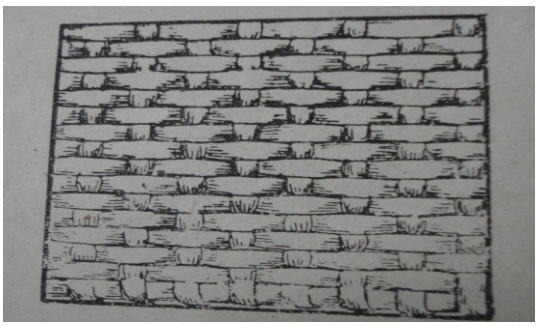

चित्र 21.6 साटिन और सेटिन बुनाई

तालिका संख्या 21.2 : **बुनाई के टाँके**

उल्टा	सीधा	टक	मिस

बुनाई का वर्गीकरण

साधारण	फैन्सी
सादी	पाइल या रोयेदार
रिब	डॉबी बुनाई
साटिन	द्विवस्त्र बुनाई
सैटिन	क्रेप बुनाई
बास्केट	कार्डराय बुनाई
ट्वील	मखमली बुनाई
हनीकोम्ब	लीनो बुनाई
हकबैक	पैकार्ड बुनाई
	स्वीवेल बुनाई

तालिका संख्या 21.3 : **लैस तथा जाली**

क्रोशिया	नोवल्टी लैस	सूई निर्मित लैस	शटल या टेट्रिंग के उपयोग हेतु	बालिन या पिलो लैस

वस्त्र की किनारी :

वस्त्र के दोनों सिरों को मजबूती से बाँधने एवं वस्त्र से धागे निकलने व छिटकने से रोकने हेतु ताने के धागों को तानते समय वार्प बीम पर दोनों ओर 2 से.मी. तक मजबूत एवं मोटे धागे को लगाया जाता है, ताने के धागे की मोटाई एवं मजबूती के कारण ही वस्त्र के दोनों सिरों पर सघन रचना बन जाती है, इसी को वस्त्र की सेल्वेज (Selvage) कहते हैं (तालिका संख्या 21.4)।

रचना विधि के आधार पर किनारी निम्न प्रकार की होती है–

तालिका संख्या 21.4 : **वस्त्र की किनारी**

सादी किनारी भाग के समान	कटी हुई किनारी (छोटे वस्त्र जैसे तौलिया, रूमाल, नैपकिन आदि पर)	टेप किनारी	फ्यूज किनारी (वस्त्र के अन्य किनारे पर तंतुओं को पिघला कर फ्यूज करना)

वस्त्र का गुणांक

वस्त्र की गुणात्मकता (quality), टिकाऊपन एवं कार्यक्षमता,

वस्त्र की सघन एवं घनी बुनाई पर निर्भर करती है। यह सघन बुनाई ताने एवं बाने की संख्या पर निर्भर करती है, जितनी अधिक ताने एवं बाने की संख्या होगी उतना ही वस्त्र टिकाऊ, मजबूत, चिकना, घना एवं अच्छा होगा।

एक वर्ग इंच के कपड़े में विद्यमान ताने एवं बाने की संख्या को वस्त्र का गुणांक कहते हैं।

ताना के धागों की संख्या + बाना के धागों की संख्या = वस्त्र गुणांक

कपड़े का सन्तुलन :

वस्त्र निर्माण में ताने व बाने के सूत का अनुपात वस्त्र संतुलन कहलाता है। ताने व बाने के धागे अगर बराबर संख्या में हैं तो अच्छा संतुलन होता है। संख्या में कमी-बेशी होने पर वस्त्र का संतुलन बिगड़ जाता है तथा वस्त्र निर्माण घटिया स्तर का बन जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. वस्त्र का निर्माण रेशों एवं सूत दोनों का प्रयोग करके फेल्टिंग, निटिंग ब्रेडिंग व लैस तथा बुनाई की विभिन्न विधियों से किया जाता है।
2. रेशों के प्रयोग से नमदा, बिना बुने एवं यांत्रिक ब्राण्डेड वस्त्र व लेमिनेटेड वस्त्र बनाये जाते हैं।
3. धागे के प्रयोग से निटिंग द्वारा, लैस व ब्रेड्स एवं विविंग विधि द्वारा वस्त्र बनाये जाते हैं।
4. निटिंग में फंदे डाल कर फंदे से फंदा निकाल कर पंक्ति दर पंक्ति वस्त्र बनाया जाता है।
5. बुनाई विधि में करघे द्वारा ताने व बाने के धागों को एक-दूसरे में फंसा कर वस्त्र बनाते हैं।
6. करघे के मुख्य भाग वार्प बीम, क्लॉथ बीम, हार्नेस, शटल एवं रीड है।
7. करघे द्वारा वस्त्र के निर्माण हेतु शेडिंग, पिफिंग, बैटनिंग तथा लपेटने व छोड़ने की क्रिया लगातार एवं क्रमबद्ध की जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें।

(i) वस्त्र का निर्माण किया जाता है–

(अ) रेशे द्वारा (ब) सूत द्वारा

(स) रेशे एवं सूत दोनों से (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

(ii) करघे के भाग हैं–

(अ) कार्डिंग (ब) कताई

(स) वार्प बीम एवं क्लॉथ बीम (द) बुनाई

(iii) वस्त्र की गुणवत्ता निर्भर करती है–

(अ) ताने एवं बाने के धागे की संख्या पर

(ब) निटिंग क्रिया पर

(स) क्लॉथ एवं वार्प बीम की मजबूती पर

(द) किनारी पर

(iv) सबसे मजबूत कपड़े की बुनाई हेतु उपयोगी बुनाई है–

(अ) सादी बुनाई (ब) ट्वील बुनाई

(स) साटिन बुनाई (द) फैन्सी बुनाई

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये–

(i) ऊनी रेशों के उपयोग से बने वस्त्र.....कहलाते हैं।

(ii) शेडिंग, पिकिंग, बैटनिंग आदि प्रक्रिया.....द्वारा वस्त्र की बुनाई में उपयोग लाई जाती है।

(iii) .....प्रक्रिया से बने वस्त्र पहनने के उपरान्त शरीर रचना के अनुरूप फिट हो जाते हैं।

(iv) बुनाई के दौरान नई भरी गई पंक्तियों को ठोकने का..... कार्य करता है।

3. वस्त्र का निर्माण कितने प्रकार से किया जाता है?
4. नमदा कैसे तैयार होता है?
5. क्लॉथ बीम क्या है?
6. फैन्सी बुनाई के कोई पाँच प्रकारों के नाम लिखो?
7. ट्वील बुनाई के बारे में लिखो?
8. करघा क्या है? उसके विभिन्न भागों का वर्णन कीजिये।
9. बुनाई की प्रक्रिया समझाते हुए बुनाई के प्रकार लिखो।
10. सादी व साटिन बुनाई को चित्र सहित समझाइये।
11. वस्त्र की किनारी, वस्त्र गुणांक एवं वस्त्र संतुलन से आप क्या समझते हैं।

उत्तरमाला :

1. (i) स (ii) स (iii) अ (iv) ब
2. (i) नमदा (ii) करघे (iii) निटिंग (iv) रीड

अध्याय 22

वस्त्र परिसज्जा

मनुष्य की वस्त्र संबंधित आवश्यकता एवं वस्त्र विज्ञान के अनुसंधानकर्ताओं के प्रयोग ने वस्त्र उद्योग में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिये। करघे से उतरा या वस्त्र उद्योग कारखानों से निकला वस्त्र ग्रे-गुड्स कहलाता है। मनुष्य की वस्त्र संबंधित आवश्यकता एवं समय के परिवर्तन के अनुसार परिवर्तित परिस्थितियों ने वस्त्र शिल्प विज्ञान वस्त्र परिसज्जा के अध्याय का प्रादुर्भाव किया। प्राचीन समय से ही मनुष्य ने समयानुसार निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वस्त्र की परिसज्जा प्रारम्भ की।

1. वस्त्र के बाह्य स्वरूप में सौन्दर्यात्मक एवं आकर्षक गुणों को बढ़ाना।
2. वस्त्रों की क्रियात्मक गुणवत्ता बढ़ाना।
3. वस्त्रों में विभिन्नता उत्पन्न करना।
4. वस्त्र की उपयोगिता एवं प्रयोजनशीलता बढ़ाना।
5. निश्चित सेवा विषयक गुण एवं टिकाऊपन में वृद्धि करना।
6. अनुकरणीय एवं बनावटीपन लाने हेतु।
7. वस्त्रों का रख-रखाव आसान बनाने हेतु।
8. वस्त्रों को कड़ा एवं वजनी बनाने हेतु।
9. घटिया वस्त्रों को आकर्षक बनाने हेतु।

परिसज्जा को प्रभावित करने वाले कारक

परिसज्जा एवं परिष्कृति की अनेक विधियाँ अनुसंधानकर्ता के प्रयोगों से प्रचलित हुई है। वस्त्र पर परिसज्जा का प्रयोग वस्त्र की प्रकृति एवं प्रयोजन पर निर्भर करता है। परिसज्जा का प्रयोग निम्नांकित तत्त्वों से प्रभावित होता है–

1. **तन्तु की प्रकृति**–वस्त्र उपयोगी तन्तु के भौतिक एवं रासायनिक गुणों के आधार पर ही वस्त्र पर विभिन्न क्रियाएँ करके अपनी आवश्यकतानुसार परिसज्जा दी जाती है।
2. **बुनाई की विधि**– वस्त्र के बुनाई के विभिन्न तरीके वस्त्र को दी जाने वाली परिसज्जा को प्रभावित करती है। समान बढ़ाई से बुने वस्त्र पर किसी भी प्रकार की परिसज्जा दे सकते हैं, परन्तु जटिल एवं विभिन्नता लिये हुए बटाई (विषम एवं जटिल धागे) से बने वस्त्र पर परिसज्जा देना भी जटिलतम होता है।

सौन्दर्यात्मक आकर्षण प्रवृत्ति एवं फैशन के दौर ने वस्त्र परिसज्जा उद्योग में क्रांति ला दी है। उद्यमिता का क्षेत्र विस्तृत कर दिया है। प्रतिदिन नयी परिसज्जा से परिष्कृत वस्त्र बाजार में देखने को मिलता है।

परिसज्जा के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वस्त्र पर की जाने वाली परिसज्जा को तीन समूहों में बाँट दिया है–

(1) यांत्रिक, (2) रासायनिक, (3) कार्यशील परिसज्जा।

कार्यशील परिसज्जा–विशेष क्रियाओं के लिए की जाने वाली परिसज्जा इस समूह में आती है, जैसे–जल अवरोधक, अग्निरोधक, कीट, फफूँद, कीटाणु नाशक आदि परिसज्जा उसमें आती है।

वस्त्रों पर दी जाने वाली परिसज्जा को हम उपयोगिता एवं माध्यम स्थायित्व के आधार पर निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं।

परिसज्जा स्थायी, अस्थायी, आधारभूत, सजावटी, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की दृष्टि, कार्यदक्षता एवं गुणवत्ता वृद्धि आदि तरह की परिसज्जा वस्त्र पर दी जाती है। इन परिसज्जा हेतु दो तरीके अपनाये जाते हैं।

1. यांत्रिक, 2. रासायनिक (चित्र 22.1, 22.2)।

1. **कुटाई**– करघे के द्वारा बुनने के बाद वस्त्र की सतह खुरदरी, कड़ी एवं बीच-बीच में छिद्र युक्त होती है। ऐसे वस्त्र को सघन चिकना एवं चमकदार बनाने हेतु लकड़ी एवं लोहे की हथोड़ियों से वस्त्र की सतह को कूटा जाता है, इस क्रिया से वस्त्र के बीच के छिद्र भर जाते हैं, धागे चपटे एवं वस्त्र की संरचना सघन हो जाती है।
2. **सिंजिंग**– ग्रे-गुड्स (करघे से उतारा वस्त्र) की सतह को चिकना बनाने के लिए बुनाई के बाद सतह पर निकले रोओं, गाँठों, धागों आदि को ताँबे के गर्म रोलरों एवं प्लेटों के बीच में से गुजार कर झुलसा कर समाप्त कर दिया जाता हैं, जिससे वस्त्र की सतह चिकनी हो जाती है।
3. **कड़ा करना एवं भरना**– ये अस्थायी परिसज्जा होती है। वस्त्र की धुलाई के बाद समाप्त हो जाती है, वस्त्र के छिद्र को भरने हेतु एवं वस्त्र को कड़ा करने हेतु स्टार्च, मोम, गोंद, जिलेटिन, मैग्नीशियम सल्फेट एवं मैग्नीशियम क्लोराइड का प्रयोग व चमकदार बनाने हेतु, मोम, पैराफिन आदि का प्रयोग किया जाता है। साइजिंग (कड़ापन) की क्रिया सम्पन्न करने हेतु वस्त्र को ऐसे रोल के बीच से गुजारा जाता है, जो कड़े करने वाले पदार्थ में डूबते एवं निकलते हैं जिससे वस्त्र के दोनों तरफ कड़ा करने वाला पदार्थ एक साथ

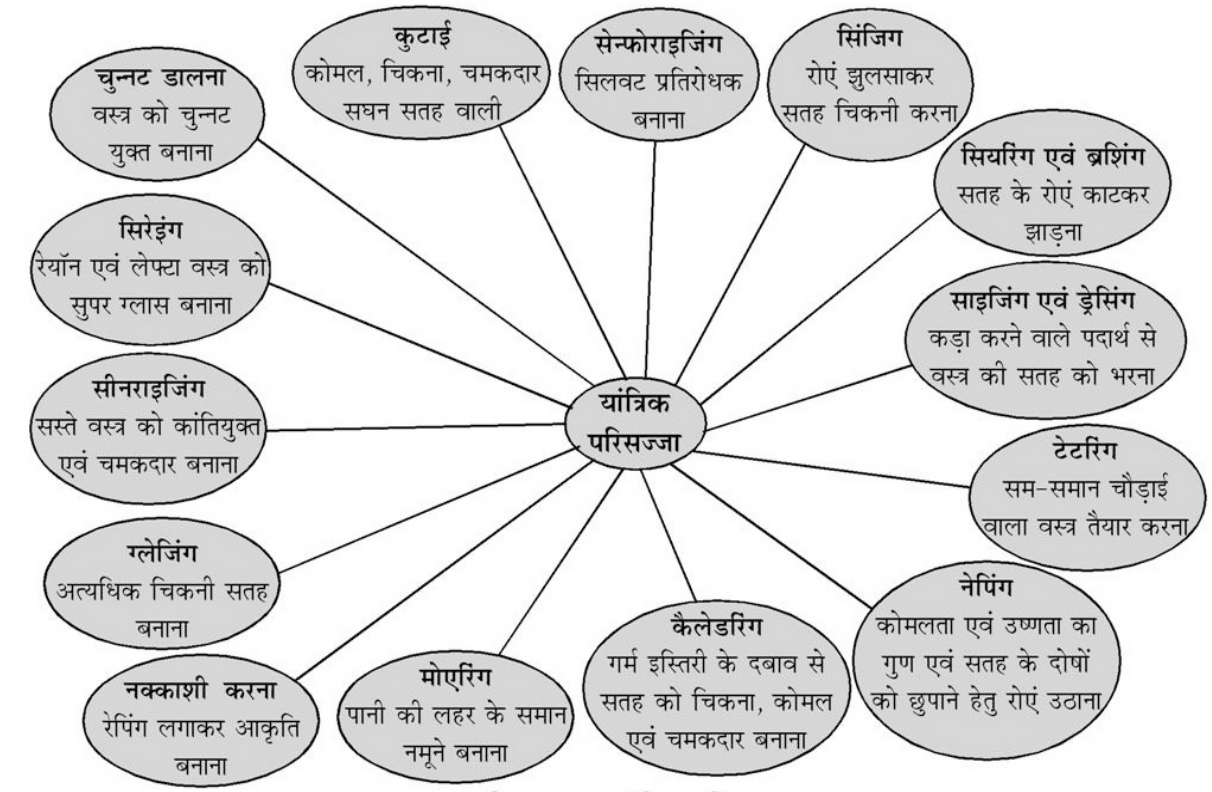

चित्र 22.1 : **यांत्रिक परिसज्जा**

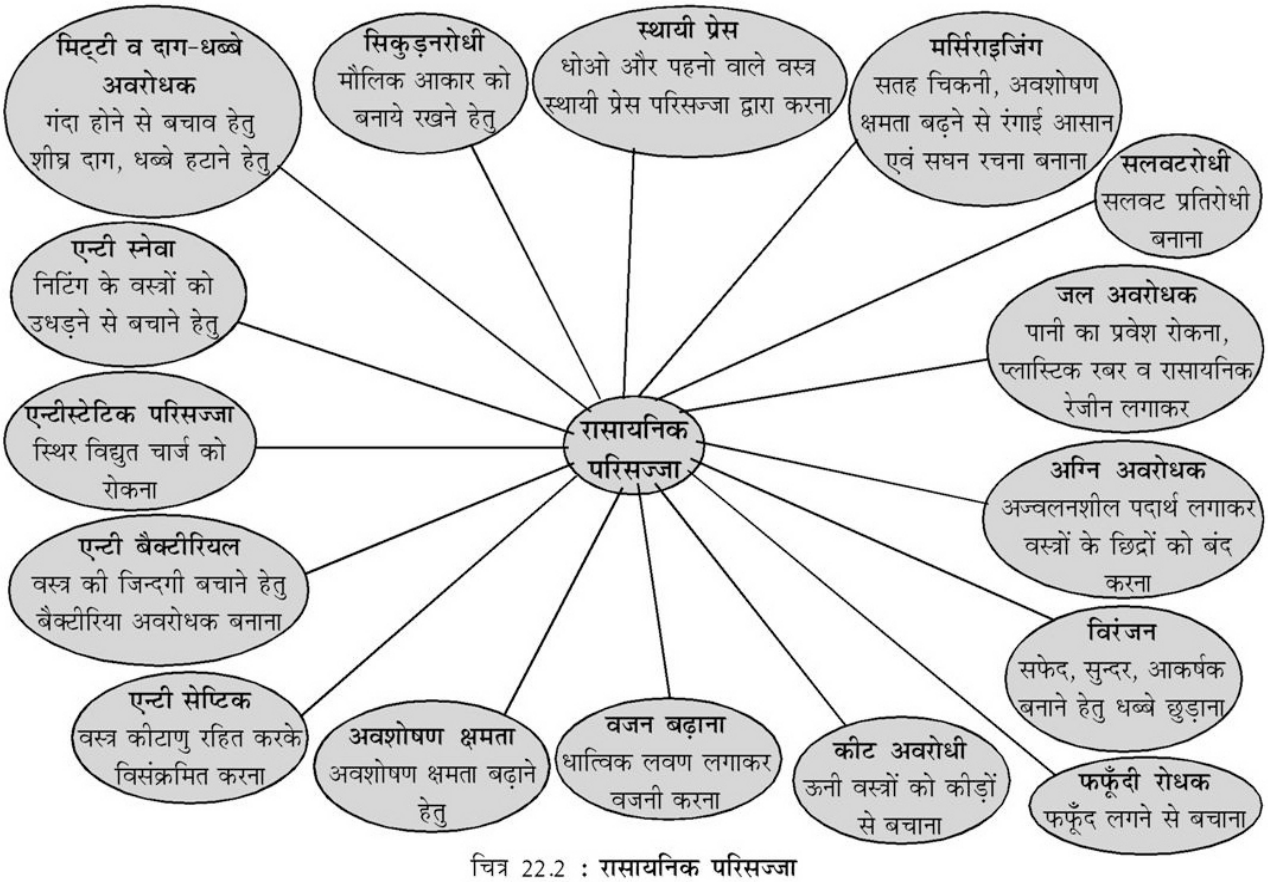

चित्र 22.2 : **रासायनिक परिसज्जा**

चिपक जाता है एवं वस्त्र कड़ा हो जाता है।

4. **टेटरिंग–** वस्त्र का टेढ़ापन असमान आकृति को ठीक करके पूरी लम्बाई में सभी स्थानों से समान चौड़ाई का बनाने की क्रिया टेटरिंग कहलाती है। इस कार्य हेतु टेटरिंग मशीन के दोनों ओर लगे हुए हुक में वस्त्र की सेल्वेज को फंसाकर वस्त्र को फ्रेम पर तान देते हैं एवं गर्म वायु प्रवाहित की जाती है, जिससे जहाँ से वस्त्र सिकुड़ना एवं फैलना होता है, फैल एवं सिकुड़ कर समान चौड़ाई का हो जाता है।

5. **कैलेंडरिंग–** इस प्रक्रिया में गर्म एवं भारी उत्तम पॉलिश किए हुए स्टील रोलरों के बीच से वस्त्र को गुजारा जाता है। विभिन्न वर्ग के रेशों के लिए अलग-अलग वजन के रोलरों का प्रयोग किया जाता है। इसे बड़े पैमाने पर इस्त्री करने की प्रक्रिया भी कहते हैं। इससे वस्त्र चमकदार भी हो जाता है। चित्र 22.1

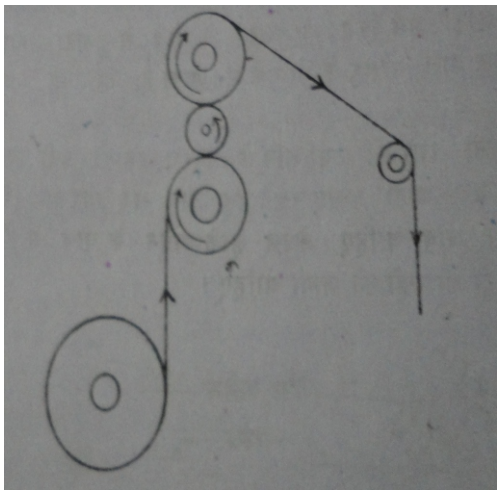

चित्र 22.1 केलेण्डर मशीन

6. **मोएरिंग–** वस्त्र की सतह पर पानी की धारियों के समान नमूने बनाए जाते हैं, इस हेतु मोएरिंग मशीन में तीन आकार के रोलर लगे हुए होते हैं। सबसे ऊपर वाले रोलर पर कपड़ा चढ़ा होता है। कपड़े को पहले फिर दूसरे रोलर के बीच में से निकाला जाता है। पहले की अपेक्षा दूसरे रोलर की गति अधिक होती है। जिससे वस्त्र की सतह पर पानी की धारियाँ बन जाती है। इसके बाद इन पर सूक्ष्म एवं बारीक धारियाँ बन जाती है। इसके बाद इन पर सूक्ष्म एवं बारीक रेखाएँ बनाई जाती है, जो प्रकाश की किरणों में चमकती है।

7. **मर्सिराइजिंग–** मर्सिराइजिंग परिसज्जा सामान्यत: सूती वस्त्र की सतह को सुन्दर, चमकदार एवं कान्तियुक्त बनाने के लिये की जाती है। इस परिसज्जा हेतु वस्त्र को सर्वप्रथम विशेष रूप से तैयार कास्टिक सोडे के घोल में 8-10 घंटे डुबाकर रखते हैं। तत्पश्चात् खींचकर तान दिया जाता है और समान मात्रा में ताप एवं दाब प्रसारित किया जाता है तथा वस्त्र को साफ पानी में धोकर अतिरिक्त कास्टिक सोडे को हटाया जाता है एवं पुन: पानी से धोकर खंगाल लिया जाता है, इस प्रकार मर्सिराइजिंग प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है।

8. **सिकुड़नरोधी परिसज्जा–** वस्त्र को सिकुड़ने से रोकने हेतु यह परिसज्जा दी जाती है। यह परिसज्जा करघे से उतारे वस्त्र को एक बार धोने के पश्चात् दी जाती है, इस परिसज्जा हेतु वस्त्र को बारी-बारी से गर्म तथा ठण्डे पानी में डुबो कर, वाष्प के सम्पर्क में लाकर या रसायनों के प्रयोग से वस्त्र को स्थिर आकार दिया जाता है, जिससे यह वस्त्र बाद में सिकुड़ते नहीं हैं। ऐसे वस्त्रों पर प्रीश्रींक का लेबल लगा दिया जाता है।

9. **सिलवटरोधी परिसज्जा–**सूती लिलन के वस्त्रों में लचकना, प्रत्यास्थता का अभाव होने से एक बार उपयोग लेते ही शीघ्र सलवट युक्त हो जाते हैं, इसे रोकने हेतु सिलवट रोधी परिसज्जा दी जाती है। इस परिसज्जा हेतु रासायनिक विधि से धागों में रासायनिक रॉल प्राय: फिनॉल फारमेल्डीहाइड अथवा यूरिया फारमेल्डिहाइड का प्रवेश कराया जाता है तथा उन्हें लचीला बनाया जाता है। इस प्रकार प्रत्यास्थता एवं लचीलापन आने से कपड़ा सिलवट प्रतिरोधी बन जाता है।

10. **जलभेद–** वर्षा के मौसम में उपयोगी समस्त वस्त्रों को जल अवरोधक बनाया जाता है, ताकि वस्त्र के भीतर पानी प्रवेश ना कर सके। इस हेतु वस्त्र की सतह पर रबड़ या प्लास्टिक की रासायनिक रॉल लगा दी जाती है। यह रसायन वस्त्र के छिद्रों को बंद कर वस्त्र को पूर्णत: ढक देता है, जिससे इन पर गिरा पानी ऊपर से ही फिसल कर बह जाता है। परन्तु इससे वस्त्र का सिरसिरापन खत्म हो जाता है, यह स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अच्छे नहीं होते हैं। आजकल उन्नत जल निवारक पदार्थों से अच्छे किस्म के वस्त्र तैयार किए जाते हैं, जिससे सिरसिरापन भी बना रहता है और पानी भी भीतर प्रवेश नहीं करता है।

11. **अग्नि निरोधक परिसज्जा–** इस परिसज्जा हेतु साधारण वस्त्र की सतह पर अमोनिया सल्फेट की इतनी मोटी तह लगा दी जाती है, जिससे वस्त्र के धागे पूर्णत: छिप जाते हैं, इस तरह अज्वलनशील मसाला द्वारा धागे पूर्णत: ढके होने से यह अग्नि नहीं पकड़ते हैं। यह अग्निशमन में कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिए उपयोगी होते हैं।

12. **कीड़ों से बचाना–** ऊनी, रेशमी एवं बहुमूल्य वस्त्रों को कीड़ों से बचाने हेतु वस्त्र की सतह पर कुछ फ्लोराइड का घोल लगा देते हैं। ये फ्लोराइड कीड़ों के लिए विष का कार्य करते हैं और वस्त्र सुरक्षित रहते हैं।

13. **फफूँदी से बचाव–** नमी व सील युक्त स्थान पर रखे वस्त्रों पर फफूँदी लग जाती है और वस्त्र पर काले-काले धब्बे दिखाई देते हैं, इससे बचने हेतु वस्त्र की सतह पर मैग्नीशियम फ्लोराइड,

कैल्सियम क्लोराइड या जिंक क्लोराइड का प्रयोग एवं फार्मेल्डीहाइड व टरपेन्टाइन का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रयोजनों हेतु भिन्न-भिन्न परिसज्जा द्वारा वस्त्र को परिष्कृत किया जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. करघे द्वारा बुनकर तैयार किया गया वस्त्र ग्रे-गुड्स कहलाता है।
2. वस्त्र परिसज्जा से तात्पर्य रेशे, धागे एवं वस्त्र पर विभिन्न क्रियाओं द्वारा आप की माँग व उपयोगिता के आधार पर तैयार करना।
3. यन्त्रों से दी जाने वाली यांत्रिक परिसज्जा एवं रसायनों द्वारा दी जाने वाली रासायनिक परिसज्जा कहलाती है।
4. वस्त्र पर दी जाने वाली परिसज्जा वस्त्र उपयोगी तन्तु की प्रवृत्ति एवं बुनाई की विधि पर निर्भर करती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) करघे द्वारा बुनकर तैयार वस्त्र कहलाता है–

(अ) ग्रे-गुड्स (ब) खुरदरा वस्त्र

(स) परिष्कृत वस्त्र (द) चिकना वस्त्र

(ii) यांत्रिक परिसज्जा का उदाहरण है–

(अ) सिजिंग (ब) मर्सिराइजिंग

(स) अग्नि निरोधक परिसज्जा (द) कीट अवरोधी

(iii) परिसज्जा की जाती है–

(अ) वस्त्र पर (ब) रेशे

(स) उपरोक्त दोनों पर (द) धागों पर

(iv) रासायनिक परिसज्जा का उदाहरण है–

(अ) टेटरिंग (ब) कुटाई

(स) नेपिंग (द) फफूँदी रोधक

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो–

(i) परिसज्जा-वस्त्र को आज की.....के आधार पर तैयार करते हैं।

(ii) यांत्रिक परिसज्जा.....द्वारा दी जाती है।

(iii) रासायनिक परिसज्जा.....के द्वारा दी जाती है।

(iv) मर्सिराइजिंग क्रिया में.....रसायन का प्रयोग होता है।

(v) मोएरिंग परिसज्जा में वस्त्र की सतह पर.....के समान नमूने बनाए जाते हैं।

3. वस्त्र परिसज्जा के उद्देश्यों को लिखिए।
4. वस्त्र परिसज्जा का अर्थ बताते हुए यांत्रिक एवं रासायनिक परिसज्जा को उदाहरण द्वारा समझाइए।
5. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–
   (i) कड़ा करना एवं भरना
   (ii) सिलवटरोधी परिसज्जा
   (iii) जलभेद (जल निरोधक) परिसज्जा

उत्तरमाला :

1. (i) अ (ii) अ (iii) अ (iv) द
2. (i) माँग व उपयोगिता (ii) यन्त्रों (iii) रसायनों (iv) कास्टिक सोडा (v) पानी की धारियों।

अध्याय 23

रंगाई एवं छपाई

वस्त्रों की परिसज्जा बिना रंग के निरसता का प्रादुर्भाव करती है। रंग न केवल वस्त्र की सुन्दरता को निखारते हैं वरन् मन को प्रसन्नता एवं उल्लास से भी भर देते हैं। रंग वस्त्र में नवीनता एवं विभिन्नता लाते हैं। रंगों का प्रयोग प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है। प्राचीन समय में प्राकृतिक रंगों का प्रयोग करते थे। वस्त्र उद्योग की क्रान्ति के साथ संश्लेषित रंगों का उपयोग होने लगा है।

रंगों के प्रकार

1. **प्राकृतिक रंग**–प्राकृतिक स्रोतों से जो रंग प्राप्त होते हैं, उसे प्राकृतिक रंग कहते हैं। ये रंग वनस्पति स्रोत, प्राणिज स्रोत एवं खनिज पदार्थों से प्राप्त करते हैं (तालिका संख्या 23.1)।
2. **कृत्रिम अथवा संश्लेषित रंग**–सन् 1856में इन रंगों की खोज हेनरी विलियम परकीन ने एनीलीन से कुनैन बनाते वक्त की थी। इन्हें कोलतार रंग भी कहा जाता है। क्षारीय, अम्लीय, उदासीन, ऑक्सीकारक रंग, क्रोम रंग, प्रत्यक्ष रंग, एजोइक रंग, गंधक रंग, प्रसारित रंग, रंगहीन रंग, नेप्थोल रंग, वाढ़ रंग, वर्णक रंग।

(i) **अम्लीय रंग**–ऊनी एवं रेशमी वस्त्रों एवं कृत्रिम तंतुओं की रंगाई के लिए उपयोग किये जाते हैं। सूती वस्त्र नहीं रंगे जाते हैं।

(ii) **क्षारीय रंग**–ऊनी, रेशमी एवं सेल्यूलोज से निर्मित तन्तुओं को रंगने के लिए उपयोगी।

(iii) **ऑक्सीकारक रंग**–काले एवं भूरे रंगों में उपलब्ध होता है। सूती वस्त्र को रंगने के लिए उपयोगी रेशमी व एसीटेट वस्त्रों पर भी उपयोग किया जाता है।

(iv) **क्रोम रंग**–वस्त्र पर सबसे अधिक पक्के रंग होते हैं। अम्लीय रंग से ऊनी वस्त्र को रंगने के बाद रंग पक्का करने हेतु क्रोमेट घोल से उबाला जाता है।

(v) **प्रत्यक्ष रंग**–इनसे रंगने हेतु बंधक की आवश्यकता नहीं होती है। ये तीन प्रकार के होते हैं। स्वत: प्रत्यक्ष रंग, विकसित रंग एवं एजोइक रंग आदि।

(vi) **गंधक रंग**–प्राकृतिक एवं कृत्रिम सेल्यूलोज रेशों के लिए काम आने वाले रंग हैं।

(vii) **प्रसारित रंग**–इसका प्रयोग नॉयलोन, स्क्रीलिक, पॉलिस्टर आदि वस्त्रों एवं सेल्यूलोज तन्तुओं को रंगने के लिए उपयोगी है।

(viii) **रंगहीन रंग**–इसका प्रयोग विरंजन के समय किया जाता है।

(ix) **नेप्थोल रंग**–नॉयलोन, पॉलिस्टर, सूती एवं रेयॉन के तंतुओं को रंगने वाले गहरे एवं पक्के रंग होते हैं। इनसे रंगने के लिए बंधकों का प्रयोग किया जाता है।

(x) **वाढ़ रंग**–सूती, लिनन, रेयॉन तन्तुओं को रंगा जाता है। बंधकों के साथ नॉयलोन, पॉलिस्टर एवं एक्रीलिक रंगों को भी रंग सकते हैं। यह महंगे एवं अघुलनशील होते हैं।

प्राकृतिक रंगों को रंजक एवं वर्णक के रूप में जानते हैं।

रंजक–यह जल में घुलनशील होते हैं। इनसे आसानी से वस्त्रों को रंगा जा सकता है। यह महंगे होते हैं। यह वस्त्र तन्तु के भीतर जाकर आत्मसात होते हैं।

वर्णक–यह जल में अघुलनशील होते हैं। रेशों की ऊपरी सतह पर चिपके रहते हैं। वर्णक से वस्त्र को रंगने के लिए किसी-न-किसी प्रकार का सटाने वाला पदार्थ लगाया जाता है।

तालिका सं. 23.1 : प्राकृतिक रंग

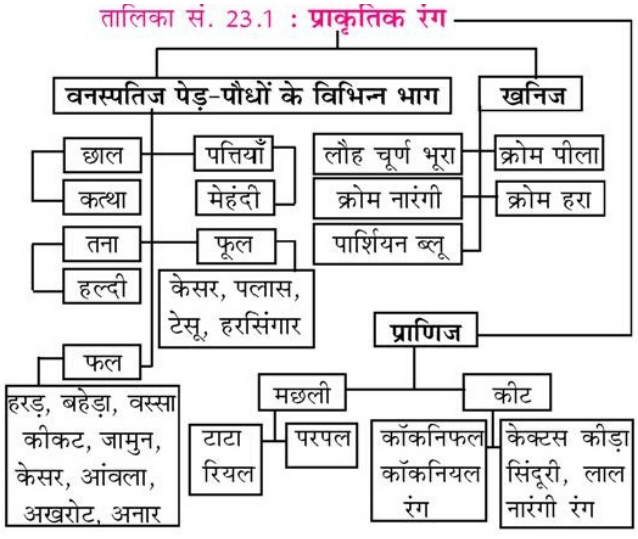

रंग से वस्त्रों की परिसज्जा

वस्त्र उद्योग में नवीनता एवं जीवंतता लाने वाली रंग परिसज्जा मुख्यतया दो विधियों में सम्पन्न होती है।

(1) रंगाई (वस्त्र को रंग में डुबाना), (2) छपाई (निश्चित आकृति के अनुरूप वस्त्र पर रंग छापना)

1. **रंगाई**–वस्त्र उपयोगी रेशा, धागा, लच्छियाँ एवं वस्त्र को रंग के घोल में डुबा कर परिसज्जा करते हैं, तो उसे रंगाई द्वारा परिसज्जा कहते हैं। फिर रेशों की भिन्न रंगों के प्रति सादृश्यता के अनुसार रंग घोल में डुबोया जाता है। तत्पश्चात् रंग के अतिरिक्त कणों को हटा कर रंग पक्का करने वाले घोल से निकाला जाता है।

   रंगाई की अवस्थाएँ–

   रंगाई क्रिया हाथ व मशीन, दोनों से की जाती है।

(i) **रेशों की रंगाई**–इसे कच्चे माल की रंगाई कहा जाता है। रेशों की रंगाई से रंग पक्का, टिकाऊ, ज्यादा गहराई तक एवं सभी स्थानों पर समान रूप से चढ़ता है। यह तीन प्रकार से होती है–

(अ) **टॉप रंगाई**–वर्स्टेड ऊनी रेशों को कंघी के पश्चात् चरखियों पर लपेट कर चरखियों सहित रंगा जाता है।

(ब) **ड्रॉप रंगाई**–कृत्रिम रेशों को तैयार करते समय रसायनों के घोल में रंग डालकर स्पिनिटेट के छिद्रों से निकाला जाता है।

(स) **स्टॉक रंगाई**–इस रंगाई के लिए रेशों को बड़े-बड़े टैंक में डालकर उच्च तापक्रम की उपस्थिति में रंगा जाता है।

(ii) **धागे की रंगाई**–धागों की लच्छियों को छड़ (Rod) पर लटकाकर रंग के टैंक में फिट करके रंग में घुमाया जाता है। यह रंगाई भी पक्की रंगाई कहलाती है।

(iii) **तैयार वस्त्र की रंगाई**–समय एवं फैशन की माँग व इच्छानुसार रंगने हेतु वस्त्र की रंगाई अधिक आसान होती है। वस्त्र पर एक रंग हटा कर दूसरा रंग भी चढ़ाया जा सकता है। तैयार वस्त्र की रंगाई रेशों, धागों एवं लच्छियों की रंगाई जितनी पक्की नहीं होती।

तैयार वस्त्र की रंगाई के तरीके

1. **जिग-रंगाई**–जिग यंत्र की सहायता से कपड़े के धागों एवं बंडल को गाइड रोल पर चढ़ा कर रंगा जाता है। इन रोलों के माध्यम से थोड़े-थोड़े समय अन्तराल पर वस्त्र को बार-बार रंग में डुबाया जाता है। इस प्रकार कम समय में किसी भी रंग रोड्स से वस्त्र को रंगा जा सकता है।
2. **क्रास रंगाई**–यह विधि दो या दो से अधिक रेशों से निर्मित वस्त्र को रंगने के लिए उपयोग में ली जाती है। रेशों में विभिन्नता की वजह से एक वस्त्र में, रंगने पर रंगों के प्रति रेशों की सादृश्यता के अनुसार रंग शेड प्राप्त होते हैं। कभी-कभी मिश्रित रेशों से बने वस्त्र को अलग-अलग रेशों में एक के बाद एक डाला जाता है। रेशों की सादृश्यता के अनुसार विभिन्न शेड में वस्त्र रंगा जाता है। इस प्रकार एक ही वस्त्र विभिन्न रंगों में रंग कर सुन्दर, आकर्षक व उपभोक्ता माँग के अनुसार तैयार हो जाता है।
3. **बाँधकर रखना**–इस विधि से रंगाई बंधेज या बाँधनी कहलाती है। राजस्थान एवं काठियावाड़ की कला, इस विधि का उदाहरण है। जयपुर की बाँधनी एवं गुजरात का पटोला प्रसिद्ध है। चित्र–23.1

चित्र – 23.1 बन्धेज या टाई व डाई रंगाई

इस विधि में रंगने के लिए सर्वप्रथम वस्त्र पर नमूना अंकित कर लिया जाता है। अंकित नमूने पर धागों को कसकर बाँध दिया जाता है। फिर उसे रंग में डुबोया जाता है। धागे से बंधा भाग रंगने से बच जाता है। शेष स्थानों पर रंग चढ़ जाता है। वस्त्रों को कई रंगों में रंगने के लिए पहले हल्के रंग में रंगा जाता है। फिर सूखने के उपरान्त नमूने के अनुसार पुनः बाँधकर उसे गहरे रंग अर्थात् अलग-अलग रंगों में रंगा जाता है।

4. **रील रंगाई**–हल्के वजन के वस्त्रों के दोनों सिरे सील कर रील को माध्यम बनाकर रंग के घोल में वस्त्र बार-बार डुबोया जाता है।
5. **संयुक्त रंगाई**–विभिन्न वर्ग के रेशों से निर्मित वस्त्र को समान रूप से रंगने की विधि है।
6. **निरन्तर मशीन द्वारा रंगाई**–अधिक (लम्बाई एवं बड़े) वस्त्र को रंगने का कार्य मशीन द्वारा किया जाता है। यह रंगने से लेकर सूखने तक समस्त कार्य मशीन द्वारा किया जाता है।
7. **बटिक**–पहले वस्त्र पर नमूना अंकित करते हैं। वस्त्र पर नमूने के अनुसार जो भाग रंगने से बचाना है, उस भाग पर ब्रश की सहायता से गर्म मोम की सतह लगाकर सुखाया जाता है। सूखने पर रंग के घोल में डुबाया जाता है। मोम लगे स्थान को छोड़ कर शेष स्थान पर रंग चढ़ जाता है। इस क्रिया में मोम सूखने व वस्त्र को रंगने के दौरान कई स्थानों पर चटक जाता है और चटके स्थान पर भी रंग चढ़ जाता है। दूसरे रंग में रंगने के लिए वस्त्र पर सूखने के बाद पुनः मोम लगाया जाता है। फिर पुनः रंगा जाता है। अतः वस्त्र सुखा कर मोम को गर्म पानी से हटा दिया जाता है। इस तरह सुन्दर एवं आकर्षक तरह से रंगाई की जाती है। चित्र 23.2

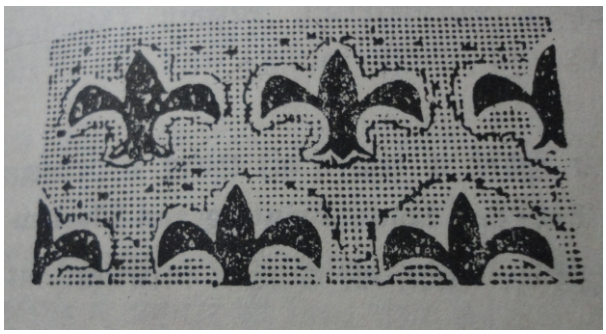

चित्र 23.2 बातिक छपाई

2. छपाई

वस्त्र पर आकार एवं आकृति के अनुसार रंग नमूने छापना छपाई कहलाता है। छपाई करने के लिए नमूने युक्त सैम्पल के अनुसार रंग संयोजन किया जाता है। छपाई क्रिया के लिए रंग का अर्धतरल पेस्ट तैयार किया जाता है। विभिन्न रंगों युक्त छपाई हेतु रंगों के अनुसार डिजाइन के अलग-अलग सैम्पल लेते हैं। छपाई की विभिन्न विधियों से किसी भी विधि का प्रयोग करते हुए रंगों के सैम्पल डिजाइन से छपाई करते हैं। तत्पश्चात् वस्त्र का रंग सुखाते हैं एवं पक्का करते हैं।

छपाई के तरीके

1. **ठप्पा छपाई**–इस प्रकार की छपाई हेतु नमूने लकड़ी या धातु पर बनाए जाते हैं। कपड़े को गद्देदार सतह पर फैला दिया जाता है। रंग अर्धतरल पेस्ट के रूप में नमूने युक्त लकड़ी या धातु पर लगाकर उसे वस्त्र की सतह पर निश्चित स्थान पर जोर से हाथ से दबाया जाता है। रंग सूखने के बाद अलग रंग हेतु अलग ठप्पा लगाते हैं।

चित्र 23.3

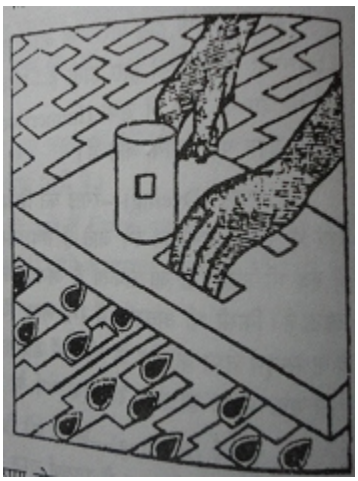

चित्र 23.3 ठप्पा छपाई

2. **रोलर छपाई**–इसमें बड़े-बड़े रोलरों पर नमूने उभारे जाते हैं और वस्त्र जब इन रोलरों के बीच से गुजरता है तो उससे नमूने उभर जाते हैं। अलग-अलग रेशों के लिए अलग-अलग रोलर लगाते हैं। कम समय में हजारों मीटर वस्त्र पर विभिन्न रंगों युक्त नमूने अंकित हो जाते हैं।
3. **द्विपक्षी छपाई**–इस विधि द्वारा वस्त्र के दोनों तरफ एक साथ रंग युक्त नमूने अंकित किए जाते हैं।
4. **बताय छपाई**–इस विधि द्वारा वस्त्र की पृष्ठभूमि एवं वस्त्र पर नमूने एक साथ छपते हैं।
5. **स्प्रे प्रिंटिंग या फुहार छपाई**–इसमें मशीन एयर ब्रश या हाथ से ब्रश द्वारा वस्त्र पर डिजाइन के अनुसार रंग की फुहार की जाती है।
6. **स्क्रीन छपाई**–इस विधि में विशेष फ्रेम (स्क्रीन) जिसके रंग नहीं लगाने वाले भाग को अवरोधक पदार्थ से ढक दिया जाता है। इस प्रकार फ्रेम तैयार होने के पश्चात् इस फ्रेम को वस्त्र पर रखकर सावधानीपूर्वक रंग का पेस्ट लगाते हैं। अवरोधक पदार्थ के ढके स्थान पर रंग नहीं जाता है। शेष स्थान पर रंग स्क्रीन को पार करके वस्त्र पर लग जाता है और इस प्रकार नमूना वस्त्र पर अंकित होता है।

इसके अतिरिक्त अन्य विधियाँ जैसे–अवरोधक छपाई (Resist Printing), Stencil Printing, Worp Printing, डिस्चार्ज प्रिंटिंग आदि विभिन्न प्रकार की विधियों का प्रयोग छपाई क्रिया हेतु किया जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. रंगाई एवं छपाई वस्त्र परिसज्जा की सबसे प्रचलित विधि है।
2. रंगों को प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।
3. प्राकृतिक रंग वनस्पतिज, प्राणिज एवं खनिज पदार्थों से प्राप्त किए जाते हैं।
4. कृत्रिम अथवा संश्लेषित रंग कोलतार से प्राप्त किए जाते हैं।
5. रंगाई की क्रिया में रेशा, धागा, लच्छियाँ एवं वस्त्र को रंग में डुबाकर परिसज्जा की जाती है।
6. छपाई क्रिया में रंग का अर्द्धतरल पेस्ट उपयोग में लाया जाता है एवं आकार एवं आकृति के अनुसार वस्त्र पर रंग छापा जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) विकसित रंग, एजोइक रंग, स्वत: प्रत्यक्ष रंग के प्रकार है–

(अ) क्रोम रंग (ब) प्रत्यक्ष रंग

(स) गंधक रंग (द) क्षारीय रंग

(ii) रंजक एवं वर्णक संबंधित है–

(अ) प्राकृतिक रंग (ब) कृत्रिम रंग

(स) गंधक रंग (द) संश्लेषित रंग

(iii) बंधेज क्रिया में वस्त्र को रंगा जाता है–

(अ) बांधकर रंगना (ब) सीधे रंग में रंगना

(स) दोनों तरीके से (द) काटकर रंगना

(iv) रोलर छपाई में नमूने अंकित होते हैं–

(अ) लकड़ी के ठप्पे पर (ब) रोलरों पर

(स) दोनों पर (द) स्क्रीन पर

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये–

(i) रंगाई एवं छपाई.....परिसज्जा की विधि है।

(ii) प्राकृतिक रंग.....से प्राप्त होते हैं।

(iii) कृत्रिम रंग.....से प्राप्त किए जाते हैं।

(iv) प्राकृतिक एवं कृत्रिम सेल्यूलोज के रेशों से बने वस्त्रों को रंगने हेतु.....रंग उपयुक्त होते हैं।

(v) बटिक क्रिया में.....मोम उपयोग में लाते हैं।

3. संश्लेषित रंग की खोज किसने और कब की?

4. प्राकृतिक रंग किसे कहते हैं?

5. रंगों की रंगाई के प्रकार लिखो।

6. तैयार वस्त्र की रंगाई के कोई 5 तरीकों के नाम लिखो।

7. द्विपक्षी छपाई क्या है?

8. रंग परिसज्जा से आप क्या समझते हैं, रंग के प्रकार लिखो।

9. निम्न पर टिप्पणी लिखो।

(1) रंजक व वर्णक (2) क्रास रंगाई (3) द्विपक्षी छपाई

10. रंगाई विधि द्वारा परिसज्जा कैसे की जाती है, बंधेज एवं बटिक परिसज्जा को समझाओ।

11. छपाई किसे कहते हैं। निम्न पर टिप्पणी लिखो–

(1) ठप्पा छपाई (2) स्क्रीन छपाई (3) स्प्रे प्रिंटिंग

उत्तरमाला :

1. (i) ब (ii) अ (iii) अ (iv) ब

2. (i) रंगों द्वारा (ii) वनस्पति, प्राणिज एवं खनिज स्रोत (iii) कोलतार (iv) गंधक (v) रंग से बचाने के लिए

इकाई-V : गृह प्रबन्धन

अध्याय 24

संसाधन एवं प्रबंधन

जीवन में प्रत्येक व्यक्ति के पास अनेक संसाधन होते हैं जिनकी सहायता से वह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता है। हम अपने दैनिक जीवन में अनेक प्रकार की क्रियाएं करते हैं और प्रत्येक कार्य को करने हेतु हमें संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है संसाधनों को अनगिनत तरीकों से उपयोग में लिया जा सकता है। अत: किसी भी स्थान पर उपलब्ध भौतिक वस्तुओं को संसाधन या साधन कहा जाता है जो व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति हेतु उपयोग में लाये जाते हैं। जैसे–कोई वस्तु खरीदने हेतु धन की आवश्यकता होती है, धन कमाने हेतु ज्ञान व कौशल की आवश्यकता होती है, बीमार पड़ने पर चिकित्सालय की आवश्यकता होती है। मनुष्य इन विभिन्न साधनों का सदुपयोग कर अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करता है।

आज तेजी से बदलते युग में मनुष्य को जीवन में अधिक समझ, कुशलता एवं समायोजन की आवश्यकता होती है। मनुष्य की आवश्यकता भी बदलते हुए परिवेश में बढ़ती जा रही है, अत: अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु उसे संसाधनों का सुनियोजित और बुद्धिमतापूर्ण उपयोग करना पड़ता है।

साधनों का वर्गीकरण–पारिवारिक संसाधनों को दो प्रमुख वर्गों में बांटा गया है–

पारिवारिक संसाधन

मानवीय संसाधन

1. ज्ञान–बुद्धि, आवश्यक जानकारी होना।
2. योग्यता या कौशल जैसे–सिलाई कला, चित्र कला
3. रुचि– अभिरुचियां किसी विशेष पाठ्यक्रम में रुचि होना,
   जैसे– संगीत, कम्प्यूटर
4. अभिवृत्ति–कार्य के प्रति धारणा या दृष्टिकोण
5. शक्ति–कार्य को करने की शक्ति
6. समय–एक घंटा, एक दिन, एक सप्ताह, एक महीना, एक वर्ष या संपूर्ण जीवन।

गैर मानवीय/भौतिक संसाधन

1. धन–नौकरी, बचत, व्यवसाय, मजदूरी से प्राप्त आय
2. भौतिक वस्तुएं–भोजन, उपकरण, कार, जमीन, मकान, खेत आदि।
3. सामुदायिक सुविधाएं–यातायात, स्कूल, अस्पताल
4. ऊर्जा–गैस, कोयला

I. मानवीय संसाधन– मानवीय साधन को व्यक्तिगत संसाधन भी कहा जाता है क्योंकि ये आंतरिक साधन होते हैं। मानवीय संसाधन सीमित होते हैं परन्तु निरंतर अभ्यास और ज्ञान में वृद्धि करके कुछ सीमा तक बढ़ा सकते है।

1. ज्ञान–ज्ञान ही शक्ति है आजकल बाजार में कई प्रकार के उपकरण उपलब्ध हैं। गृहिणी को इन सभी वस्तुओं का ज्ञान व उपयोग में लाने की जानकारी होनी चाहिए। ज्ञान होने पर ही वह विभिन्न विकल्पों में से उचित का चयन कर सकती है और किसी साधन के व्यर्थ उपयोग से बच सकती है।

2. योग्यता या कौशल–योग्य व्यक्ति ही कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकेगा। प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी काम में कुशल होता है। जैसे–कपड़े सिलने, कढ़ाई करने, भोजन बनाने आदि में। जिस काम में कुशल हो उसे उसी क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहिये।

3. रुचि–रुचि एक लक्ष्य प्राप्ति हेतु महत्त्वपूर्ण संसाधन है। इसके होने से कार्य कुशलता बढ़ जाती है। क्योंकि कार्य में मन लगता है तो कार्य अच्छी तरह संपन्न होता है। रुचि कम होने पर कार्य नीरस लगने लगता है और जल्दी थकान होती है।

4. अभिवृत्ति–वे भावनाएं जो किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित या निरुत्साहित करती हैं, अभिवृत्ति कहलाती है। कुछ व्यक्ति आशावादी होते हैं और कुछ निराशावादी। जैसे–अगर आप कोई नया कार्य शुरू करना चाहते हैं और पहले ही मन में असफलता का डर है तो आपका कार्य पूर्णतया सफल नहीं होगा, इसके विपरीत आशावादी व्यक्ति विपरीत परिस्थितियों में भी हंसते हुए उनका सामना करता है।

5. शक्ति–घरों में होने वाले विभिन्न शारीरिक व मानसिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए सदस्यों की शक्ति व्यय होती है। शक्ति भी एक सीमित साधन है। अत: किसी भी कार्य को करने का सही तरीका आना चाहिए ताकि कम शक्ति में अधिक कार्य किया जा सके।

6. समय–समय एक महत्त्वपूर्ण मानवीय साधन है। समय गुजर जाने पर पुन: नहीं लाया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को सीमित एवं समान समय प्राप्त है। अत: समय का सदुपयोग करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य

है।

II. गैर मानवीय या भौतिक संसाधन

भौतिक संसाधनों को प्राप्त किया जा सकता है। ये आंतरिक नहीं होते। इन्हें देखा और महसूस किया जा सकता है (चित्र 24.1)।

1. धन (Money)–विनिमय अर्थ-व्यवस्था में धन या मुद्रा के बदले, वस्तुओं या सेवाओं को प्राप्त किया जा सकता है। जैसे–हम चिकित्सक की सेवा लेने पर बदले में धन अदा करते हैं। यह साधन सबके पास समान मात्रा में नहीं पाया जाता, किसी के पास ज्यादा तो किसी के पास कम होता है।

2. भौतिक वस्तुएं–धन के द्वारा हम भौतिक वस्तुएं एवं सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। जैसे–भोजन, कपड़ा, मकान, जमीन, खेत आदि। इन सभी भौतिक वस्तुओं का उपयोग लक्ष्य प्राप्ति हेतु किया जाता है।

3. सामुदायिक सुविधाएं–परिवार समाज की इकाई होता है। समाज के द्वारा ही परिवार को कुछ सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं जिनके लिए प्रत्यक्ष रूप से भुगतान नहीं किया जाता। सभी व्यक्ति अपनी आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार इनका उपभोग करते हैं। जैसे–विद्यालय, चिकित्सालय, पुस्तकालय, पार्क, सड़क, पुलिस संरक्षण, परिवहन, जल-बिजली वितरण आदि।

4. ऊर्जा–ऊर्जा हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। ऊर्जा में विभिन्न स्रोत हैं जैसे–बिजली, गैस, कोयला। यह कई कार्यों हेतु उपयोग में लाई जाती है जैसे–रोशनी, खाना बनाना, पंखे चलाना, पानी व स्थान को गर्म करना आदि।

पारिवारिक संसाधनों का महत्त्व

गृह प्रबंधन हेतु पारिवारिक संसाधनों का बहुत अधिक महत्त्व होता है। परिवार के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न पारिवारिक साधनों की जानकारी व उनके उपयोग का ज्ञान होना चाहिए। साधनों के उचित उपयोग से हम ज्यादा से ज्यादा आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं।

चित्र 24.1 : **भौतिक संसाधन**

गृह प्रबंधक को परिवार के प्रत्येक सदस्य की योग्यता एवं रुचि का आकलन कर अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उपयोग करना चाहिए। जैसे–घर में किसी को सिलाई, कढ़ाई के प्रति विशेष रुचि व योग्यता है तो इसका लाभ घर के सदस्यों को मिल सकता है, क्योंकि घर में सिलाई हो जाने से दर्जी को सिलाई नहीं देनी पड़ती और उसकी बचत हो जाती है।

साधन चाहे मानवीय हो या भौतिक सभी उपयोगी होते हैं। अतः साधनों का उपयोग सोच-समझकर उचित तरीके से करना चाहिए ताकि उनका अधिकतम लाभ उठाया जा सके, अधिकतम संतुष्टि मिल सके, अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और जीवन को सुखी व सफल बनाया जा सके।

प्रबंधन

प्रबंधन मनुष्य की सभी क्रियाओं में समाहित हैं। सामान्य शब्दों में प्रबंधन का अर्थ विचारपूर्वक की गई व्यवस्था से है अर्थात् कार्य करने की उन विधियों से है जिनके द्वारा हम किसी भी परिस्थिति में समस्त उपलब्ध साधनों का सर्वोत्तम ढंग से उपयोग कर अपने अधिकतम लक्ष्यों की पूर्ति करने का प्रयास करते हैं।

गृह प्रबंध की परिभाषा–गृह प्रबंध का अर्थ है घर का प्रबंध अथवा व्यवस्था। राजमल पी. देवदास के अनुसार–गृह व्यवस्था में पारिवारिक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु पारिवारिक साधनों के उपयोग से संबंधित निर्णयों को सम्मिलित किया जाता है।

निकल एवं डॉर्सी के अनुसार–'गृह प्रबंध आयोजन, संगठन, नियंत्रण एवं मूल्यांकन की वह क्रिया है जिसका उद्देश्य पारिवारिक साधनों के प्रयोग से पारिवारिक लक्ष्यों की पूर्ति करना है।'

प्रबंधन की आवश्यकता–मनुष्य अपने सभी प्रकार के कार्यों को कुशलतापूर्वक करना चाहता है। वह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न उपलब्ध मानवीय व अमानवीय साधनों का उपयोग करता है। चूंकि मानव के लक्ष्य असीमित होते हैं एवं साधन सीमित अतः इनके बीच समायोजन करने हेतु प्रबंध की आवश्यकता महसूस होती है। प्रबंध की अनुपस्थिति में लक्ष्यों की पूर्ति व साधनों का अधिकतम उपयोग कर पाना मुश्किल होता है। सीमित साधन होने के कारण प्रबंधन का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। जैसे–उदाहरण के लिए पेट्रोल का भंडार दिन प्रतिदिन घटता जा रहा है, और इसकी आवश्यकता बढ़ती जा रही है। अतः हम सभी को इसका उपयोग इस प्रकार व्यवस्थित ढंग से करना चाहिए कि कम पेट्रोल द्वारा अधिक दूरी तय कर सके। जैसे–एक ही ऑफिस में काम करने वाले कर्मचारी अलग-अलग वाहन से ना जाकर एक ही वाहन से ऑफिस में आएं तो इससे पेट्रोल कम खर्च होगा। इसके अलावा आधुनिक पारिवारिक जीवन में परिवर्तन होने से घर की व्यवस्था प्रभावित हुई है। जैसे–एकाकी परिवार की महिला यदि काम-काजी है तो बच्चों की देखभाल में समस्या आती है। ऐसे में संतोषप्रद तरीके से हल निकालने हेतु प्रबंधन के ज्ञान की आवश्यकता होती है।

आधुनिक घरों की सफल व्यवस्था के लिए साधनों के संबंध में निर्णय लेने हेतु परिवार का सहयोग आवश्यक है। किसी भी कार्य की सफलता अच्छे प्रबंध पर निर्भर करती है। अत: जीवन में प्रत्येक लक्ष्य की प्राप्ति में प्रबंध का महत्त्व है।

गृह प्रबंध की प्रक्रिया–इसको चार्ट द्वारा स्पष्ट किया गया है। किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रबंध किया जाता है और उसकी योजना क्रियान्वयन पर नियंत्रण रखा जाता है अंत में उसकी सफलता या कमी का मूल्यांकन किया जाता है। उदाहरण के लिए गृहिणी कपड़े धोने का निर्णय लेती है तो विभिन्न क्रियाएं जैसे–सामान इकट्ठा करना, कपड़े भिगोना, रगड़ना, निचोड़ना आदि कार्य करने होंगे जिसके फलस्वरूप उस

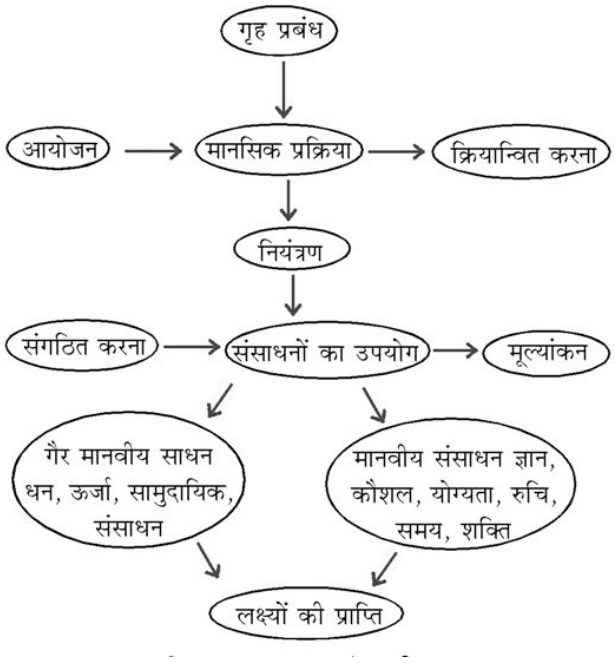

चित्र 24.2 : **गृह प्रबंध प्रक्रिया**

गृह प्रबंध प्रक्रिया

गृह प्रबंध प्रक्रिया के चरण–जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए गृह व्यवस्था पारिवारिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। यह एक परिवर्तनशील एवं मानसिक प्रक्रिया है जो निरंतर चलती रहती है। गृह प्रबंध के चरण निम्नलिखित होते हैं।

1. आयोजन (Planning)
2. संगठित करना (Organizing)
3. क्रियान्वित करना (Implementing)
4. नियंत्रण (Controlling)
5. मूल्यांकन (Evaluation)

1. आयोजन (Planning)–प्रबंधन प्रक्रिया में योजना ही सफलता का आधार है। हम सभी प्रतिदिन कई प्रकार के कार्यों की योजना बनाते हैं। जैसे–शिक्षक अपने छात्रों को पढ़ाने की योजना बनाता है, गृहिणी दैनिक कार्यों की योजना बनाती है। अच्छे आयोजन के परिणाम हमेशा उच्च श्रेणी के होते हैं। बिना सोचे-समझे कार्य करने से समय व शक्ति का व्यय अधिक होता है। योजना के द्वारा इस प्रकार का हल निकालना चाहिए कि कम से कम साधनों का प्रयोग कर अधिक-से-अधिक लक्ष्य की प्राप्ति कर सके।

निकल एवं डॉर्सी के अनुसार–'एक वांछित लक्ष्य तक पहुंचने के विभिन्न सम्भावित मार्गों के सम्बन्ध में सोचना, कल्पना करना, प्रत्येक योजना की समाप्ति तक अनुगमन करना और व्यापक योजना का चुनाव करना ही आयोजन है।

आयोजन बनाना अर्थात् आसान शब्दों में हम कह सकते हैं कि हम यह निर्णय कर ले कि हमें क्या करना है? कब करना है? कैसे करना है? तथा उस काम को करने के लिए हमें किस प्रकार का साधन मिलेगा?

योजना एक मानसिक प्रक्रिया कही गई है क्योंकि इसके लिए बुद्धिमत्ता का होना अत्यन्त आवश्यक है, योजना में हर कार्य क्रमबद्धता से होना आवश्यक है, इसलिए यह विज्ञान से जुड़ गया है। योजना हमेशा कार्य शुरू करने से पहले बनाई जाती है।

योजना की विशेषताएं

1. योजना एक लगातार और स्वत: होने वाली मानसिक प्रक्रिया है।
2. योजना उपलब्ध साधनों के उपयोग की दृष्टि से वास्तविक हो।
3. योजना इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि वह व्यक्ति या समूह की आवश्यकता को पूरा कर सके।
4. योजना में परिवार के सदस्य अपनी योग्यतानुसार कार्य कर सके।
5. योजना में लचीलापन हो ताकि आवश्यक परिवर्तन कर सके।

2. संगठित करना (Organizing)–संगठन का अर्थ है हमारी योजना से जुड़े हर पहलू को संगठित करना। जैसे–कौन-कौन-से मानवीय साधन और कौन-से भौतिक साधन काम में लेंगे। इस प्रक्रिया में परिवार के कितने सदस्य भाग लेंगे, उनकी क्या भागीदारी होगी। उन सबको एकत्र कर सम्बन्धित व्यक्ति को उनकी जिम्मेदारी बताना, समझाना ताकि विभिन्न क्रियाओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित हो सकें और वे उस योजना में अपना जुड़ाव तथा महत्त्व जानकर काम कर सकें।

उदाहरण के लिए किसी पार्टी का आयोजन करते समय व्यक्ति विशेष को जिम्मेदारी नहीं सौंपी जाये और केवल समुहचर्चा की जाये तो हो सकता है पार्टी सम्बन्धी सामान बिल्कुल ही ना आये, या दो-तीन जने एक जैसा सामान ले आये।

परन्तु संगठन से सही नेतृत्व प्राप्त होता है। योजना के कार्यों का विभाजन होने से सभी को अपनी-अपनी जिम्मेदारियों का अहसास हो जाता है। सब काम समय पर पूरा हो जाता है, व्यक्ति विशेष पर काम का बोझ नहीं पड़ता है। योजना बनाने के बाद तथा क्रियान्वयन के पहले संगठन का काम पूरा हो जाता है तो क्रियान्वयन आसान हो जाता है क्योंकि संगठन, कार्य सरलीकरण की प्रक्रिया है।

3. क्रियान्वित करना (Implementing)–योजना जब बनकर तैयार हो जाती है तब उसे क्रियान्वित किया जाता है। इस चरण में व्यक्ति योजना के अनुसार कार्य करता है अर्थात् सभी संसाधनों को एकत्रित व संगठित करता है, और सम्बन्धित सदस्यों के साथ योजनानुसार कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है।

4. नियन्त्रण (Controlling)–योजना को क्रियान्वित करते समय इस बात का ध्यान रखना कि योजना जिस उद्देश्य से बनायी गई है उस उद्देश्य की पूर्ति हो रही है अथवा नहीं, और यदि पूर्ति हो रही है तो वहां पर की गई यह क्रिया नियंत्रण कहलाती है। बिना नियंत्रण के योजना सफल नहीं होती है क्योंकि काल्पनिक योजना और व्यावहारिक योजना में अन्तर आ जाता है और यदि नियन्त्रण नहीं होता तो योजना अपने सीमित साधनों में पूरी नहीं हो पाती हैं यदि नियंत्रण करते समय ऐसा लगे कि योजना के मुताबिक स्थिति में बदलाव आवश्यक है तो उसी समय सही निर्णय लेकर या कुछ फेरबदल करके योजना को क्रियान्वित करना चाहिये। अत: आवश्यकता पड़ने पर योजना का समायोजन करना पड़ता है, क्योंकि कभी-कभी परिस्थिति बदल सकती है या योजना दोषपूर्ण हो सकती है। ऐसी स्थिति में योजना में सुधार लाकर निर्णयों को बदलना पड़ता है।

5. मूल्यांकन (Evaluation)–मूल्यांकन प्रबंध प्रक्रिया की तीसरी एवं अन्तिम प्रक्रिया है इस चरण में पूर्व में बनायी गई योजना एवं योजना के नियंत्रण को देखा जाता है कि कौन-सा कार्य किस प्रकार सम्पन्न हुआ। भविष्य की योजना निर्माण का निर्णय लेने में मूल्यांकन के परिणाम सहायक होते हैं। मूल्यांकन प्रबन्धन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण यंत्र है। मूल्यांकन समय-समय पर करते रहना चाहिये जिससे हमें पूर्ण प्रक्रिया कमियां एवं अच्छाइयां समझने में मदद मिल सके ताकि भविष्य की योजना बनाते समय इनमें वांछित सुधार लाया जा सके। मूल्यांकन की क्रिया हमें सफलताओं-असफलताओं से परिचित कराती है, जिससे हमारे सोचने-विचारने के पुराने ढंगों में अन्तर आता है। मूल्यांकन द्वारा यह स्पष्ट होता है कि हम अपने लक्ष्यों व मूल्यों को प्राप्त करने की दिशा में जा रहे हैं या उनसे अलग हो गये हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. जीवन में लक्ष्यों की पूर्ति हेतु साधनों का सदुपयोग आवश्यक है।
2. संसाधन दो प्रकार के होते हैं–मानवीय और गैर मानवीय।
3. सभी साधन सीमित हैं एवं उनकी उपयोगिता, समय, आवश्यकता, स्थान आदि के अनुसार भिन्न हो सकती है।
4. प्रबंधन एक कला है जो निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए साधनों, सामग्री कार्य, कार्यप्रणाली के मध्य संयोजन स्थापित करता है।
5. गृह व्यवस्था में निर्णय लेने की प्रक्रिया एक महत्त्वपूर्ण अंग है। निर्णय, किसी कार्य को करने के अनेक संभव विकल्पों में से श्रेष्ठतम के चयन की मानसिक प्रक्रिया है।
6. एक कुशल प्रबंध में आयोजन, संगठन, क्रियान्वयन, नियंत्रण एवं मूल्यांकन इन पांचों प्रक्रियाओं की प्रमाणिकता की पहचान होती है। ये पांचों अन्तर्सम्बन्धित एवं अन्त:निर्भर होते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) ज्ञान–निम्न में से कौन-सा संसाधन है।

(अ) रासायनिक (ब) भौतिक

(स) आर्थिक (द) मानवीय

(ii) प्रबंधन एक प्रक्रिया है, जो निरंतर चलती रहती है।

(अ) मानसिक (ब) शारीरिक

(स) आर्थिक (द) सामाजिक

(iii) आर्थिक लाभ प्राप्त करना किस प्रकार का मूल्य है।

(अ) व्यक्तिगत (ब) सामाजिक

(स) आन्तरिक (द) बाह्य

(iv) निम्न में से कौनसा संसाधन समाप्त हो जाने पर पुन: लौटाया नहीं जा सकता।

(अ) धन (ब) शक्ति

(स) समय (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

2. संसाधन किसे कहते हैं?
3. गृह प्रबंध को परिभाषित कीजिये।
4. पारिवारिक साधन कितने प्रकार के होते हैं।
5. गृह प्रबन्ध प्रक्रिया को विस्तार से समझाइये।

उत्तरमाला :

(i) द (ii) अ (iii) द (iv) स

अध्याय 25

समय व शक्ति का प्रबन्धन

मानव जीवन हेतु समय व शक्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सीमित साधन है। प्रत्येक कार्य को करने के लिए इन दोनों साधनों की आवश्यकता होती है। समय व शक्ति का आपस में घनिष्ठ संबंध होता है। एक की व्यवस्था एवं उपयोग दूसरे की व्यवस्था को प्रभावित करती है, अत: मनुष्य को अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इन दोनों साधनों का विवेकपूर्ण तरीके से सदुपयोग करना चाहिये।

समय

समय मानव जीवन हेतु अनमोल खजाना है। ये सबसे उपयोगी एवं सीमित साधन है। प्रतिदिन हमारे पास 24 घंटे होते हैं, हम सभी को इस सीमित समय में अनेक कार्य करने होते हैं, इसलिए समय का सदुपयोग करना चाहिये। समय प्रबंधन से अर्थ है कि समय को इस प्रकार व्यवस्थित करना कि हमारे पारिवारिक एवं व्यक्तिगत उद्देश्यों की अधिक प्राप्ति हो सके।

प्रबंधन

अपने जीवन को सफल, सार्थक व सुखमय बनाने के लिए समय का सदुपयोग करना चाहिए। इस हेतु दिन के 24 घंटों को तीन बराबर भागों में विभाजित किया जाना चाहिए, जिसमें 8घंटे कार्य हेतु, आठ घंटे विश्राम एवं निद्रा हेतु तथा 8घंटे अपने व्यक्तिगत जीवन के लिए जिसमें मनोरंजन शामिल है, होने चाहिए। इन तीनों क्रियाओं के सुचारु रूप से चलने हेतु समय का प्रबंधन अति आवश्यक है। समय का कुशल प्रबंधन होने से व्यक्ति में कार्य को पूर्ण करने की क्षमता एवं अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है जबकि अव्यवस्थित कार्य प्रणाली से चिंता एवं तनाव उत्पन्न होता है। जो व्यक्ति अपना कार्य समय पर समाप्त कर लेता है, उसे विश्राम का समय भी मिल जाता है और वह हमेशा प्रसन्न व स्वस्थ दिखाई देता है इसके विपरीत जो व्यक्ति समय का सदुपयोग नहीं करते हैं, उनका कार्य कभी समाप्त नहीं होता है और वे हमेशा थके हुए व तनावयुक्त दिखाई देते हैं अत: समय प्रबंधन अति आवश्यक है। समय प्रबंधन के निम्न चरण होते हैं।

1. **समय का आयोजन**–योजना ऐसी होनी चाहिए कि समय व श्रम, दोनों की बचत हो।
2. गृहिणी को कार्य विश्राम और मनोरंजन में संतुलन बनाकर ही कार्य की योजना बनानी चाहिए।
3. कुछ कार्य प्रतिदिन करने होते हैं, कुछ प्रति सप्ताह, कुछ प्रति माह एवं वार्षिक किये जाते हैं अत: कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर सम्पन्न करने चाहिए। कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें विशिष्ट समय पर पूरा करना होता है जैसे–स्कूल, ऑफिस का समय, भोजन का समय आदि। इन कार्यों को समय पर सम्पन्न करने से अन्य कार्य प्रभावित होते हैं।
4. समय योजना बनाते समय परिवार के सदस्यों की रुचि, आवश्यकताएं, कार्य करने की आदत और अवकाश के समय को ध्यान में रखकर बनानी चाहिए।
5. दो–तीन कार्यों को एक साथ करने की योजना बनानी चाहिए।
6. प्रत्येक कार्य को करने में अनुमानित समय का निर्धारण कर लेना चाहिए। जैसे–आपको घर से ऑफिस या स्कूल जाने में आधा घंटा लगता है तो समय योजना करते समय कम समय न लगाये अन्यथा योजना वास्तविक नहीं होगी।
7. योजना परिवर्तनशील एवं व्यावहारिक होनी चाहिए।
8. योजना में हर प्रकार के कार्य शामिल होने चाहिये जैसे–मौसमी, वार्षिक, व्यक्तिगत आदि।
9. समय आयोजन करने से कई बार कार्य समय से पूर्व ही सम्पन्न हो जाते हैं, अत: इस बचे हुए समय में एक कुशल गृहिणी घर के अन्य छोटे–मोटे काम एवं टी.वी. देखना, मनपसंद पत्रिका पढ़ना आदि कर सकती है।

2. **समय योजना का नियंत्रण**–योजना की सफलता उसके क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। योजना बनाते समय अनुमानित समस्याओं का हल पहले ही सोच लेना चाहिए। ताकि दैनिक कार्यों में कोई कठिनाई न आये। फिर भी कठिनाई महसूस हो तो तुरंत नये निर्णय लेकर समय पर कार्य सम्पन्न करने का प्रयास करना चाहिये। यदि समय की कमी लगे तो–

1. प्राथमिकता के आधार पर कार्य सम्पन्न करना चाहिए।
2. कार्य करने की गति बढ़ा देनी चाहिए।
3. खाली समय का सदुपयोग करना चाहिये।
4. घर के अन्य सदस्यों की सहायता से भी कार्य करवा सकते हैं।

3. **समय योजना का मूल्यांकन**–योजना की सफलता के लिए नियंत्रण आवश्यक होता है, लेकिन कार्य समाप्ति पर योजना का मूल्यांकन

आवश्यक होता है। मूल्यांकन में हम देखते हैं कि योजनानुसार कार्य हुआ है या नहीं?

–योजना कितनी व्यावहारिक रही?

–योजना जिस उद्देश्य से की गई थी वह पूर्ण हुई या नहीं?

–योजना में क्या कमी रही?

इस प्रकार सफल योजना वही होती है जिसमें उपलब्ध साधनों का उचित प्रयोग कर व्यक्तिगत व पारिवारिक लक्ष्य प्राप्त हो सके।

शक्ति

हम जो भी कार्य करते हैं उसमें शक्ति की आवश्यकता होती है, शक्ति हमारे कार्य करने की क्षमता होती है। प्रत्येक मनुष्य के कार्य करने की क्षमता भिन्न होती है। कोई व्यक्ति किसी भी कार्य को करने में कितनी शक्ति खर्च करेगा ये उस व्यक्ति की शारीरिक संरचना व मानसिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता है।

शक्ति के व्यवस्थापन्न का अर्थ है कि कार्यों को सुविधाजनक तरीके से करना ताकि थकान अनुभव न हो। गृहिणी को घर और बाहर विभिन्न प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं, जिनमें व्यय होने वाली शक्ति की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। जैसे–सब्जी काटने में सीढ़ियां चढ़ने की अपेक्षा कम शक्ति व्यय होती है। स्वार्टज ने कार्यों में भारीपन के आधार पर व्यय होने वाली शक्ति को इस प्रकार दर्शाया है–

क्र.सं.	कार्य विवरण	आराम की अवस्था से अधिक व्यय होने वाली शक्ति का प्रतिशत
1.	हल्के कार्य	100 से कम
2.	साधारण भारी कार्य	100 से 150
3.	भारी कार्य	150 से 200
4.	अधिक भारी	200 से 300
5.	अत्यधिक भारी	300 से ऊपर

शक्ति को कैलोरी में मापा जाता है। माना कि आराम की अवस्था में एक मनुष्य 100 किलो कैलोरी ऊर्जा खर्च करता है तो उसे इस 100 कि.कै. के साथ हल्के कार्य करने के लिए 100 कि.कै. से कम जबकि अधिक भारी कार्य करने के लिए 100 कि.कै. के साथ-साथ 300 कि.कै. अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता होगी। निम्न समीकरण द्वारा हम किसी भी कार्य में खर्च होने वाली शक्ति (कि.कै.) का पता लगा सकते हैं–

कार्य में व्यय शक्ति मात्रा = कार्य करने में व्यय–विश्राम के समय

कुल शक्ति व्यय हुई शक्ति

हल्के कार्य = 150 कि.कै. – 100 कि.कै = 50 कि.कै.

अत्यधिक भारी = 450 कि.कै. – 100 कि.कै. = 50 कि.कै.

थकान

किसी भी प्रकार के कार्य करने के बाद व्यक्ति को थकान महसूस होती है। थकान वह स्थिति है जब शारीरिक व मानसिक शक्ति कम हो जाती है तथा अंत में ऐसी अवस्था आ जाती है कि व्यक्ति बिल्कुल भी कार्य नहीं कर सकता है।

थकान के प्रकार

थकान दो प्रकार की होती है–

1. शारीरिक थकान, 2. मानसिक थकान।

1. शारीरिक थकान–लगातार कार्य करने से शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप शरीर में कार्य करने की क्षमता में कमी आ जाती है। क्योंकि कार्य करते समय ऊर्जा का व्यय होता है। ये ऊर्जा हमें भोजन के द्वारा प्राप्त होती है। ग्लूकोज शरीर में उपस्थित ऑक्सीजन की सहायता से ऑक्सीकृत होकर CO_2, जल एवं ऊर्जा प्रदान करता है। यदि शरीर में पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन होती है तो ग्लूकोज पूर्णतया ऑक्सीकृत हो जाता है और थकान महसूस नहीं होती है। परंतु जब शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा पर्याप्त नहीं होती तब पूर्णतया ऑक्सीकृत नहीं हो पाता है और लैक्टिक अम्ल बनता है। यह लैक्टिक अम्ल मांसपेशियों में जमा हो जाता है और थकान उत्पन्न होती है। इस बीच यदि विश्राम कर लिया जाये तो शरीर में ऑक्सीजन की पूर्ति हो जाती है और ऑक्सीकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है अर्थात् लैक्टिक अम्ल का परिवर्तन CO_2 व जल में हो जाता है। जो शरीर से बाहर उत्सर्जित हो जाता है और शरीर पुनः कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

2. मानसिक थकान–जब व्यक्ति को कोई कार्य लगातार करना पड़ता है तो उसकी रुचि कम हो जाती है और उस कार्य के प्रति आकर्षण नहीं रहता, नीरसता अनुभव होने लगती है, यह स्थिति मानसिक थकान कहलाती है। इस थकान से असंतोष, उदासीनता, अवसाद व कार्य से छुटकारा पाने की इच्छा होने जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

मानसिक थकान तब होती है जब वातावरण सही न हो, लक्ष्यों की प्राप्ति न हो, जब किसी कार्य को करने की सफल कार्य विधि नहीं आती है तब व्यक्ति को खीज या चिड़चिड़ाहट होने लगती है।

थकान दूर करने के उपाय

1. शारीरिक थकान दूर करने के लिए कार्य के बीच-बीच में विश्राम काल जरूरी है विश्राम कर लेने से पुनः कार्य करने की शक्ति व उत्साह उत्पन्न हो जाता है।
2. मानसिक थकान निम्न प्रकार से दूर की जा सकती है–

i. कार्य के प्रति रुचि पैदा करके।

ii. किसी कार्य के सरल लक्ष्य लेकर चलना।

iii. कार्य करने हेतु प्रोत्साहन देकर।

iv. कार्य में कुशल हो।

v. कार्य करते वक्त उचित शारीरिक स्थिति होना।

vi. कार्य स्थल के वातावरण को खुशनुमा बनाकर।

vii. दैनिक कार्यों में से कुछ समय विश्राम हेतु निकाल कर।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. समय एक अमूल्य व सीमित संसाधन है इसका सदुपयोग कर हम विभिन्न लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं।
2. प्रत्येक कार्य को सम्पन्न करने के लिए शक्ति की भी आवश्यकता होती है जो हमें भोजन से प्राप्त होती है।
3. समय व शक्ति का व्यवस्थापन करते समय परिवार के सभी सदस्यों की रुचि, कार्यक्षमता, ज्ञान व आदतों को ध्यान में रखना चाहिये।
4. कार्य की योजना बनाते समय हल्के व भारी कार्यों का समायोजन कर बीच में विश्राम काल रखकर थकान को कम और दूर किया जा सकता है।
5. कार्य विभाजन करते समय इस बात का ध्यान रखें कि गृहिणी को विश्राम एवं मनोरंजन हेतु समय मिल सके।
6. थकान दो प्रकार की होती है–

1. शारीरिक थकान
2. मानसिक थकान

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुने।

(i) शक्ति के साथ प्रबंध किया जाने वाला दूसरा साधन है।

(अ) धन (ब) उपकरण

(स) समय (द) बुद्धि

(ii) समय योजना बनाते समय सदैव ध्यान रखना चाहिये

(अ) कार्यों की प्राथमिकता (ब) सदस्यों की रुचि, ज्ञान, आदतें

(स) योजना का लचीलापन (द) उपरोक्त सभी

(iii) मानसिक थकान के कारण।

(अ) सिर में दर्द होने लगता है

(ब) शारीरिक ऊर्जा कम होने लगती है

(स) कार्य के प्रति नीरसता व अरुचि होने लगती है।

(द) उपरोक्त सभी

(iv) शारीरिक थकान के मुख्य कारण।

(अ) कार्बनडाई ऑक्साइड (ब) ग्लूकोज

(स) जल (द) लैक्टिक अम्ल

2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

i. शारीरिक थकान, ii. विश्राम काल

3. थकान क्या है? यह कितने प्रकार की होती है।
4. समय के प्रबंधन के मुख्य चरणों को समझाइये।
5. कार्यों के भारीपन के आधार पर व्यय होने वाली शक्ति को स्वार्ट्ज ने किस प्रकार बताया है?
6. थकान दूर करने के उपायों पर प्रकाश डालिये।

उत्तरमाला :

(i) स (ii) द (iii) स (iv) द

अध्याय 26

समय एवं श्रम बचाने वाले उपकरण

आधुनिकता एवं बदलते परिवेश ने महिलाओं को अधिक सशक्त बनाया है। सशक्तता इस बात पर निर्भर है कि समय की निश्चितता एवं कार्य करने की क्षमता में व्यक्तिविशेष के अनुसार भिन्नता होने पर वह किस कुशलता से समय एवं शक्ति की बचत करती है ताकि सरल, सुगम, आसान तरीके से कार्य सम्पन्न हो सके। औद्योगिक क्रान्ति ने ऐसे कई उपकरणों को आविष्कृत किया है, जिससे समय एवं शक्ति की बचत कर कार्य को सरल बनाया, उसे समय व शक्ति बचत उपकरण के नाम से जानते हैं। विकसित देशों में इन उपकरणों का प्रचलन विकासशील देशों की अपेक्षा अधिक होता है। विकासशील देशों से भारत में इन उपकरणों की माँग निम्न कारणों से अपेक्षाकृत कम है, 1. उपकरणों का महंगा होना, 2. गृहिणी को उपकरणों की पर्याप्त जानकारी नहीं होना, 3. ग्रामीण परिवेश एवं अशिक्षा।

उपकरणों की आवश्यकता–

1. कार्य क्षमता बढ़ाने हेतु।
2. कार्य की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु।
3. समय एवं शक्ति का मितव्ययितापूर्ण उपयोग करने हेतु।
4. कार्य को सरल एवं सुगम करने हेतु।
5. परिवार में सुख, संतोष एवं खुशी का वातावरण उत्पन्न करने हेतु।
6. उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति हेतु।

आज के नित नये आविष्कारों ने उपकरणों की बाढ़ लाकर कार्य को सरल, सुगम एवं आसान बना दिया है।

दैनिक जीवन की क्रियाओं को आसान बनाने वाले कुछ आवश्यक उपकरण इस प्रकार हैं–

1. प्रैशर कुकर, 2. माइक्रोवेव, 3. गैस स्टोव, 4. रोटी मेकर, 5. विद्युत् हीटर, 6. विद्युत् तंदुर, 7. विद्युत् टोस्टर, 8. हैंड ब्लैंडर, 9. विद्युत् ओवन, 10. डिशवाशर, 11. रैफ्रिजरेटर, 12. वाशिंग मशीन, 13. कुकिंग रेंज, 14. फेशन मेकर, 15. सोलर कुकर, 16. कूलर, 17. मिक्सर, 18. वैक्युम क्लीनर आदि।

1. प्रैशर कुकर

यह वह उपकरण है, जिसमें उच्चताप एवं दाब द्वारा भोजन पकाया जाता है। खुले बर्तन में भोजन पकाने की तुलना में प्रैशर कुकर में भोजन पकाने से लगभग 53 प्रतिशत कम समय एवं 55 प्रतिशत कम ईंधन लगता है।

सिद्धान्त–उच्च दबाव एवं उच्च तापक्रम पर भोजन पकाना।

बनावट–प्रैशर कुकर में निम्नांकित भाग होते हैं–

(i) **मुख्य भाग या बॉडी**–ऐल्यूमीनियम, स्टील या मिश्रित धातु एवं कोटेड वस्तु का भगोनेनुमा भाग होता है।

(ii) **ढक्कन**–कुकर का भाग जिस धातु का बना होता है उसी का ढक्कन बना हुआ होता है तथा इस पर विद्युतरोधी हैंडिल लगा होता है। ढक्कन की बनावट इस प्रकार बनी हुई होती है कि कुकर को भीतर एवं बाहर से कस कर बंद कर दे। ढक्कन के अंदर-बाहर रबर का गोल छल्ला जिसे गैस्केट कहते हैं, लगाने की व्यवस्था होती है।

(iii) **वेन्ट ट्यूब**–कुकर के ढक्कन के मध्य स्थित होती है। इसका कार्य कुकर के अन्दर आवश्यकता से अधिक बनी गैस को बिना कम किये बाहर निकालना होता है।

(iv) **सुरक्षा वॉल्व**–कुकर को फटने से रोकता है। कम पानी में खाना बनाते समय यह खुद पिघलकर नष्ट हो जाता है और कुकर फटता नहीं है।

(v) **रबर गैस्केट**–ढक्कन पर लगा हुआ रबर का गैस्केट होता है यह ढक्कन को ठीक से बन्द करने का कार्य करता है।

(vi) **वेन्ट वेट**–वेन्ट ट्यूब के ऊपर दबाव को नियंत्रित करने का कार्य करता है।

(vii) **जाली**–तश्तरी के आकार के बड़ी छिद्र युक्त जिसमें से वाष्प गुजरती है। कुकर में एक साथ अधिक व्यंजन बनाते समय भोजन के डिब्बे रखने से पूर्व इसे उलट कर रखते हैं एवं पानी डालते हैं।

(viii) **भोजन पकाने के डिब्बे**–एक से अधिक व्यंजन बनाने के लिए विभिन्न आकार के डिब्बे जो कुकर में अच्छी तरह फिट बैठ जायें ऐसे कुकर बनाने वाले धातु के डिब्बे होते हैं।

(ix) **हैंडिल**–कुकर को गैस से उतारते-चढ़ाते वक्त उपयोग में लाते है। इसका एक भाग ढक्कन से व एक भाग कुकर के भगोने के ऊपरी भाग से लगा होता है। और कुकर बंद करते समय हैंडिल जैसा दिखता है।

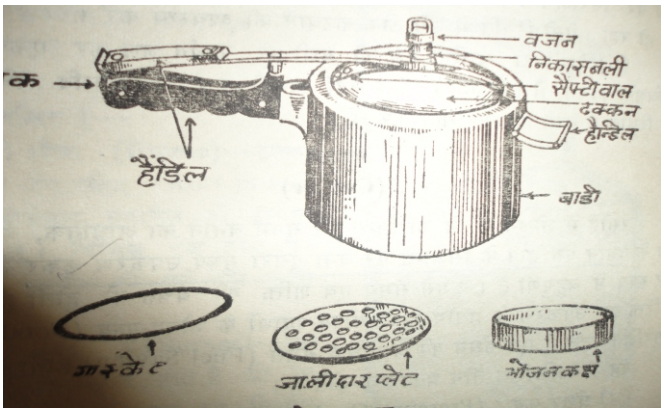

चित्र 26.1– प्रेशर कुकर

समय एवं श्रम बचाने वाले उपकरण का चुनाव सही तरीके से करना अति महत्त्वपूर्ण है। हमारी आवश्यकता के आधार पर उपकरण लेना चाहिये ताकि उसका सही उपयोग एवं देखभाल हो सके। उपकरण के भाग एवं कार्यप्रणाली का ज्ञान होना आवश्यक है। तभी उपकरण का सदुपयोग हो सकता है। चित्र 26.1

2. सोलर कुकर

सौर ऊर्जा से संचालित यह कुकर एक ऐल्यूमीनियम के बक्से जैसा बना होता है। इसमें दो प्रकार के ढक्कन होते हैं। पहले ढक्कन पर पारदर्शी काँच लगा होता है। ऊपर का बड़ा ढक्कन बाहर से ऐल्यूमीनियम का बना होता है तथा अन्दर की तरफ साधारण दर्पण लगा हुआ होता है। इस ढक्कन को एक क्लिप की सहायता से विभिन्न कोण पर खोल कर फिक्स कर सकते हैं। यह ढक्कन इस कोण पर खोल कर रखा जाता है कि सूर्य की किरणें सीधी पहुँचे और दूसरे ढक्कन पर लगे पारदर्शी काँच पर पड़े। बक्से के अन्दर ऐल्यूमीनियम की दीवारों पर काला रंग किया होता है। इस बक्से में ऐल्यूमीनियम के चार डिब्बे रखे जाते हैं। जिसमें विभिन्न पकाने वाली भोज्य सामग्री रखी जाती है। इन डिब्बों को बाहर से भी काला रंग कर देते हैं। काला रंग करने का कारण यह है कि काले रंग में 100 प्रतिशत वाष्प को अवशोषित करने की क्षमता होती है। सोलर कूकर को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने हेतु बक्से के नीचे गोलाकार में चार पहिये लगे हुए होते हैं। चित्र 26.2

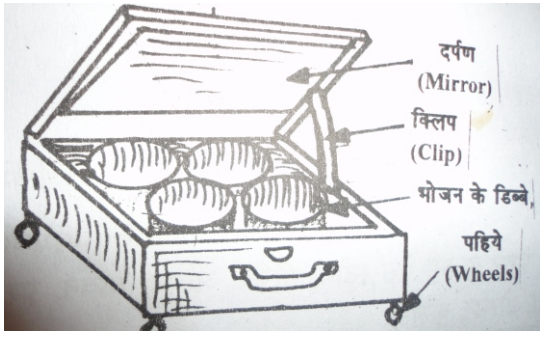

चित्र 26.2– सोलर कुकर

इस कुकर में भोजन पकाने पर पारम्परिक ईंधन या विद्युत् की आवश्यकता नहीं होती। पर्यावरण दूषित नहीं होता एवं आग, गैस, बिजली आदि के कोई दुर्घटना होने की सम्भावना नहीं होती।

3. रैफ्रिजरेटर

रैफ्रिजरेटर रसोईघर का सबसे उपयोगी उपकरण है। इसमें तापमान को वातावरण से अत्यन्त कम कर दिया जाता है। जिसके फलस्वरूप खाद्य पदार्थ खराब नहीं होते और इन्हें लम्बे समय तक सुरक्षित रूप से संग्रहित किया जा सकता है। चित्र 26.3, चित्र 26.4

सिद्धान्त–रैफ्रिजरेटर वाष्पीकरण के सिद्धान्त पर कार्य करता है। रैफ्रिजरेशन में धातु की नली के अन्दर 27.7° फारेनहाइट क्वथनांक वाली फ्रियॉन गैस से भरी होती है। यह गैस खाद्य पदार्थों से ऊष्मा लेकर बहुत कम ताप पर वाष्पीकृत होती है। जिससे खाद्य पदार्थ का तापमान कम हो जाता है और वह खराब नहीं होता है।

बनावट–रैफ्रिजरेटर आलमारीनुमा उपकरण है। इसमें निम्न भाग होते हैं–

(i) **कैबिनेट**–इस्पात की बनी चद्दर होती है, जो तापरोधक होती है।

(ii) **दरवाजा**–कैबिनेट की तरह यह भी इस्पात की चद्दरों से बना होता है। इसे भी तापरोधक बनाया जाता है। दरवाजों के बाहरी किनारों के चारों तरफ रबर गैस्केट लगा होता है।

(iii) **फ्रीजर**–कैबिनेट में सबसे ऊपर ऐल्यूमीनियम धातु का बना छोटा डिब्बा जिसका तापक्रम 0° होता है। यह बर्फ, आइसक्रीम जमाने के काम आता है।

(iv) **चिल ट्रे**–फ्रीज का डीफ्रीजिंग करते समय जल को एकत्रित करने हेतु फ्रीजर के नीचे एक प्लास्टिक ट्रे होती है, जिसे चिल ट्रे कहते हैं।

(v) **शेल्फ**–विशेष धातु की छड़नुमा बनी हुई शेल्फ होती है। जिस पर विभिन्न सामान रखा जाता है।

(vi) **क्रिस्पेटर**–फ्रीज के सबसे नीचे आयताकार डोलचीनुमा भाग होता है। जिस पर मोटा पारदर्शी काँच का ढक्कन लगा होता है।

(vii) **अण्डा रखने का स्थान**–दरवाजे के अन्दर प्लास्टिक ट्रेनुमा साँचा

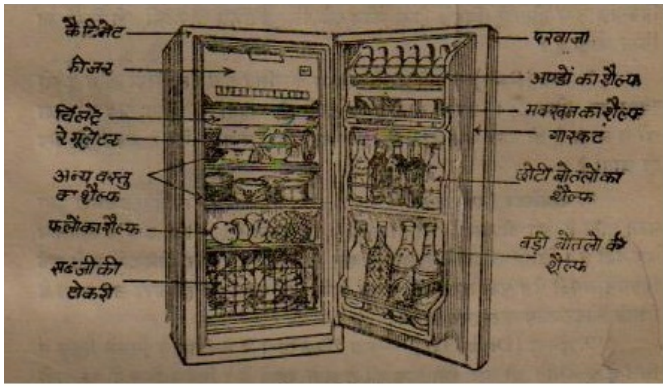

चित्र 26.3 रेफ्रिजरेटर

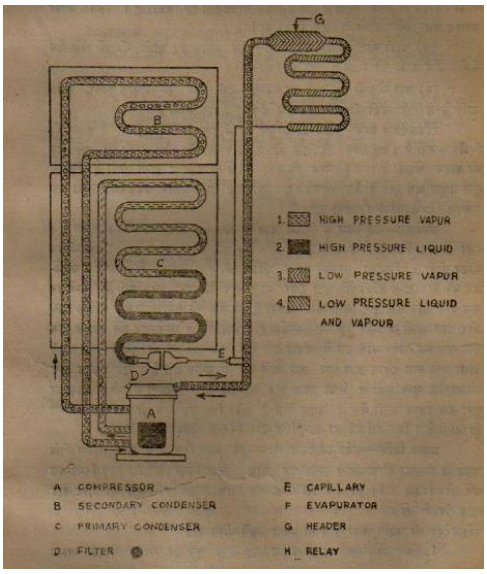

चित्र 26.4 रेफ्रिजरेशन यन्त्र

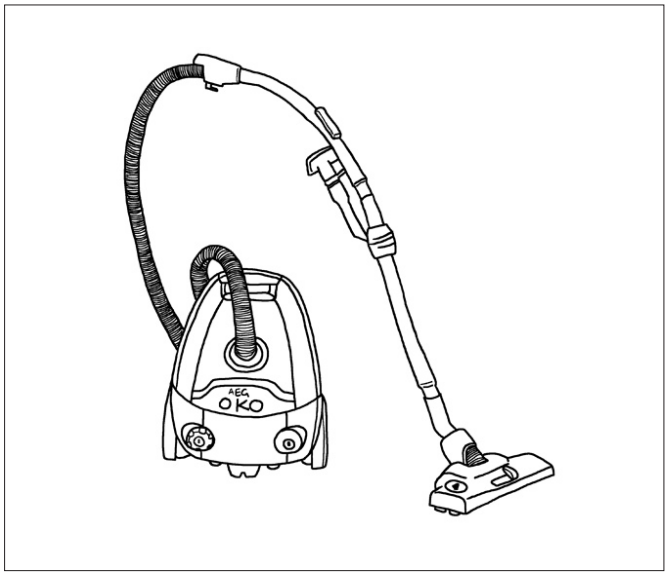

चित्र 26.5 वैक्यूम क्लीनर

होता है।

(viii) **मक्खन रखने का स्थान**–यह भी दरवाजे के अन्दर होता है।

(ix) **बोतल रखने का स्थान**–यह भी दरवाजे के नीचे के भाग में एक स्टैण्डनुमा बना होता है।

(x) **बल्ब**–कैबिनेट में फ्रीजर के नीचे लगा होता है। दरवाजा खोलने पर जलने लगता है एवं बन्द करने पर स्वत: बन्द हो जाता है।

(xi) **रेगुलेटर**–मोटर कैबिनेट के ठीक नीचे लगा होता है। पूर्णत: खुला हुआ अथवा किसी-किसी फ्रीज में बंद मशीन के जैसे होता है।

फ्रीज में रखने व रखे जाने वाले खाद्य पदार्थ का तापक्रम कमरे के तापमान से अधिक ना हो। खाद्य पदार्थ को ढककर रखे। फ्रीज का दरवाजा बार-बार नहीं खोलें, फ्रीज में अधिक बर्फ नहीं जमने दें, खाद्य पदार्थों को यथा स्थान रखें। पानी, दूध रसदार पदार्थ आदि गिर जाने पर तुरन्त पोंछ देना चाहिये। उपरोक्त बाते फ्रीज के सही संचालन हेतु आवश्यक हैं।

4. (अ) वैक्यूम क्लीनर

वैक्यूम क्लीनर के द्वारा घर का प्रत्येक कोना एवं दरी, फर्श, कालीन, सोफा आदि की सफाई कम-से-कम समय एवं शक्ति में सम्पन्न की जा सकती है। चित्र 26.5

सिद्धान्त–इसमें वायुमंडलीय दबाव हवा को कम दबाव वाले स्थान की ओर धकेलता है, जिसके फलस्वरूप निर्वात उत्पन्न हो जाता है। फलत: गन्दगी, धूल, मिट्टी आदि मशीन के अन्दर खिंच कर संग्रहित थैले में एकत्रित हो जाती है।

वैक्यूम क्लीनर के प्रकार

1. बिजली चालित साधारण प्रकार का वैक्यूम क्लीनर।
2. स्वचालित वैक्यूम क्लीनर।

संग्रहित थैली के स्थान के आधार पर भी वैक्यूम क्लीनर को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(1) बाहरी थैली वाला वैक्यूम क्लीनर

(2) बंद थैली वाला वैक्यूम क्लीनर

बनावट–1. बाहरी थैली वाला वैक्यूम क्लीनर

(i) **मुख्यभाग**–यह क्रोमियम का बना होता है, जिसके चारों ओर रबड़ लगा होता है। इस भाग को बॉडी कहते हैं। इसके नीचे पहिये लगे होते हैं, जिसकी सहायता से वैक्यूम क्लीनर को एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से ले जाया जा सकता है।

(ii) **थैली**–गंदगी व धूल कण एकत्रित करने हेतु महीन छिद्रों वाली थैली।

(iii) **पंखा**–मोटर के ठीक नीचे निर्वात उत्पन्न करने हेतु पंखा लगा होता है।

(iv) **हत्था**–धातु का बना हुआ जिस पर प्लास्टिक या रबड़ की मूठ लगी होती है।

(v) **टोंटी**–क्लीनर से जुड़ी होती है।

(vi) **बिजली के तार व प्लग**–विद्युत्धारा प्रवाहित करने हेतु तार एवं प्लग क्लीनर विद्युत् बोर्ड से जुड़े होते हैं।

(vii) **स्विच**–क्लीनर के नीचे एक स्विच की व्यवस्था होती है जिसका नियंत्रण पैर से होता है।

4.(ब) बंद थैली वाला वैक्यूम क्लीनर–

(i) **बॉडी**–जंग रहित धातु की जिस पर एनामिल की पालिश हुई होती है। इसमें नीचे पहिये लगे हुए होते हैं एवं स्विच लगा हुआ होता है। जिससे मोटर को नियंत्रित किया जाता है।

(ii) **मोटर**–पंखे को चलाने हेतु मोटर लगी होती है।

(iii) **चूषण सिरा**–इसके सिरे पर जंग रहित धातु का ढक्कन लगा होता है। ढक्कन के बीच लगे छिद्र से हवा ऊपर की ओर निकलती है।

(iv) **निर्वातक सिरा**–इस सिरे पर भी एक छिद्र युक्त ढक्कन लगा होता है जिसमें से हवा ऊपर से निकलती है।

(v) **थैली**–मोटे मजबूत कपड़े की बनी इस थैली में धूल कण एकत्रित होते है।

(vi) **नली**–इसका एक सिरा चूषण सिरे से तथा दूसरा सिरा ब्रश एवं पिचकारी से जुड़ा होता है।

(vii) **कूँची**–दरी, कालीन, फर्श एवं सोफे साफ करने के लिए उपयोगी होती हैं।

(viii) **पिचकारी**–इससे सफाई करते समय कीटनाशक पदार्थ कमरे में छिड़के जाते हैं।

(ix) **शुद्धीकरण थैली**–इसमें विसंक्रामक पदार्थ भरा रहता है। इसी थैली से पिचकारी द्वारा विसंक्रामक पदार्थ छिड़का जाता है।

(x) **बिजली का तार एवं प्लग**–विद्युत् सप्लाई हेतु बिजली का तार एवं प्लग लगा होता है।

प्रयोग विधि–सबसे पहले बिजली के तार एवं प्लग को विद्युत् सॉकेट में लगाएं। जिस स्थान की सफाई करनी है, उसके अनुसार कूँची, नोफल एवं पिचकारी लगाकर स्विच ऑन करें। सफाई समाप्त होने पर विद्युत सप्लाई बन्द करके कूड़े की थैली को निकालकर साफ करें। सुरक्षित साफ करके वैक्यूम क्लीनर को रखें।

5. मिक्सर

यह विद्युत संचालित उपकरण है, इससे कई कार्य सम्पादित किये जाते हैं। आटा लगाना, गीले-सूखे मसाले पीसना, कुचलने का कार्य, दाल, प्याज, लहसुन पीसना, चटनी बनाना, कद्दूकस करना, आलू या अन्य खाद्यानों के चिप्स बनाना, फलों का रस निकालना आदि समय एवं शक्ति बचत के उपकरण नियमानुसार तैयार किए जा सकते हैं।

चित्र 26.1

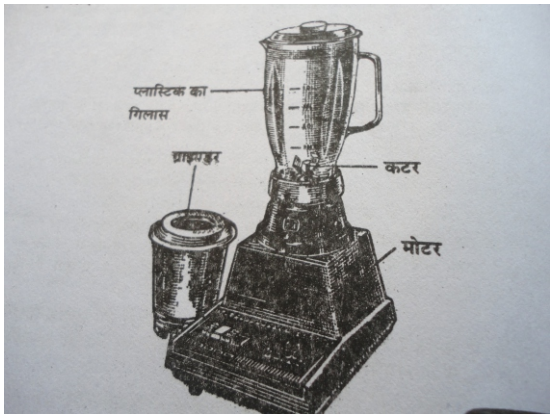

चित्र 26.6 मिक्सर

इसके निम्नांकित भाग होते हैं–

(i) **मोटर**–उपकरण के निचले भाग में लगी होती है जो एक रॉड या शॉफ्ट को घुमाने का कार्य करती है। मोटर की गति को कम या ज्यादा किया जा सकता है।

(ii) **ग्राइन्डर**–प्लास्टिक या बैकलाइट का बना कटोरीनुमा होता है, इसके भीतर की ओर स्टील की कटोरी, मध्य में घूमने वाला तेज ब्लेड एवं ऊपर पारदर्शी प्लास्टिक का ढक्कन लगा होता है, सूखे-गीले मसाले, दालें, चटनी आदि पीसने में प्रयुक्त होता है।

(iii) **जार**–यह गिलासनुमा आकार का पारदर्शी मजबूत विशेष प्लास्टिक या स्टील का बना होता है। इसके ऊपरी भाग में एक ढक्कन एवं मध्य में भीतर की ओर विपरीत दिशा में जुड़ा ब्लेडों का जोड़ा लगा होता है जो वस्तुओं को मसलने, मिल्कशेक, लस्सी आदि बनाने में प्रयुक्त होता है।

उपरोक्त भागों के अतिरिक्त इसमें मोटर, नियंत्रक की सहायता से विद्युत वायर में जुड़ा रहता है। नियंत्रक मशीन को चलाने, बंद करने एवं मोटर की गतियों को नियंत्रित करता है।

उपयोग करते समय ध्यान रखें कि जार एवं ग्राइन्डर दोनों 3/4 भाग से ज्यादा नहीं भरें। मोटर को रेटिंग समय सीमा से ज्यादा नहीं चलाना चाहिये। एक बार चला कर बन्द करने एवं दोबारा चलाने से पूर्व 15 से 20 सैकण्ड का विश्राम होना चाहिये एवं मिक्सर की साफ-सफाई ठीक ढंग से करनी चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें–

(i) समय एवं शक्ति के उपकरण की आवश्यकता–

(अ) कार्य क्षमता बढ़ाने हेतु (ब) आर्थिक उपलब्धि हेतु

(स) फैशन एवं शहरीकरण के कारण

(द) उपरोक्त में से कोई नहीं

(ii) प्रैशर कुकर का सिद्धान्त है–

(अ) उच्च ताप एवं दाब पर भोजन बनाना

(ब) स्वादिष्ट भोजन बनाना (स) सूर्य की किरणों के ताप से

(द) निम्न दाब से

(iii) रैफ्रिजरेटर में भोजन खराब नहीं होता–

(अ) अधिक तापमान से (ब) कम तापमान से

(स) निर्वात उत्पन्न होने से (द) दबाव से

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो–

(i) सोलर कुकर.....धातु से बना होता है।

(ii) रैफ्रिजरेटर.....से चलने वाला उपकरण है।

(iii) वैक्यूम क्लीनर द्वारा घर की.....कम समय एवं शक्ति में सम्पन्न की जाती है।

3. समय एवं शक्ति बचत के उपकरणों के उपयोग के साथ लिखो?
4. प्रैशर कुकर के कार्य का सिद्धान्त लिखो?
5. रैफ्रिजरेटर की उपयोगिता बताइये?
6. सोलर कुकर के बारे में आप क्या जानते हैं?
7. मिक्सर की बनावट व उपयोग की विधि लिखिए–
8. वैक्यूम क्लीनर के प्रकार बताइए।
9. रैफ्रिजरेटर का सिद्धान्त एवं बनावट लिखिए।

उत्तरमाला :

1. (i) अ (ii) अ (iii) ब
2. (i) ऐल्यूमीनियम, (ii) विद्युत्, (iii) सफाई

अध्याय 27

गृह क्रियाएं, स्थान व्यवस्था एवं सज्जा

मनुष्य की मौलिक आवश्कताओं में से घर एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। घर वह स्थान है जहां परिवार अपनी आवासीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है अर्थात् घर परिवार की सुविधा, सुरक्षा, एकान्तता, स्वास्थ्य तथा परिवार की रुचियों के अनुकूल हो। जहां घर का प्रत्येक सदस्य अपने मानवीय गुणों का विकास कर सके तथा अपने आपको सुरक्षित महसूस कर सके। एक उत्तम आवास हेतु निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. मकान स्वास्थ्य के नियमों के अनुकूल हो अर्थात् हवादार एवं प्रकाशयुक्त हो।
2. मकान परिवार की विभिन्न दैनिक क्रियाओं हेतु पर्याप्त स्थान एवं सुविधाएं प्रदान करता हो।

गृह क्रियाएं

प्रत्येक परिवार में भोजन बनाना, भोजन को खाना, स्नान करना, कपड़े धोना, बच्चों की देखभाल, पढ़ाई, वस्तुओं का संग्रहण एवं अतिथि सत्कार आदि प्रमुख पारिवारिक गतिविधियां सम्पन्न होती हैं। इन सभी गृह क्रियाओं को मकान में सम्पन्न किया जाता है। जहां स्थान ज्यादा होता है उस घर में प्रत्येक गतिविधि के लिए अलग-अलग कमरे की व्यवस्था की जाती है, परन्तु जहां मकान छोटा है, ऐसे घरों में एक ही कमरे में एक से अधिक क्रियाओं को स्थान देना पड़ता है। जैसे-भोजन कक्ष को पढ़ने के लिए भी काम में ले सकते हैं, शयन कक्ष को पढ़ने हेतु एवं बैठक के रूप में भी उपयोग कर सकते हैं।

किसी भी मकान की योजना इस प्रकार से बनानी चाहिए कि वह परिवार में होने वाली विभिन्न गतिविधियों को मकान में स्थान दे सके। यदि मकान काफी बड़ा है तो उसमें किसी प्रकार की कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है परन्तु यदि मकान परिवार की आवश्यकता से छोटा है तब समस्या उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था में एक कुशल गृहिणी इस समस्या का हल मकान में उचित स्थान विभाजित द्वारा प्राप्त कर लेती है। अत: मकान कैसा भी हो यदि उसमें विभिन्न क्रियाओं के लिए उचित स्थान विभाजन नहीं होता है तो सदस्यों के बीच असन्तुष्टि बनी रहती है, अत: मकान में स्थान विभाजन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. स्थान का विभाजन सदस्यों को अधिकतम सुविधा प्रदान करने वाला हो।
2. मकान में उपलब्ध स्थान का पूर्णतया उचित प्रयोग किया जाना चाहिये।

हालांकि गृह क्रियाओं हेतु स्थान विभाजन को कई कारण प्रभावित करते हैं। जैसे-परिवार के सदस्यों की संख्या, उपलब्ध सामान, उपलब्ध स्थान, सदस्यों की आयु, रुचियां, आर्थिक स्तर आदि।

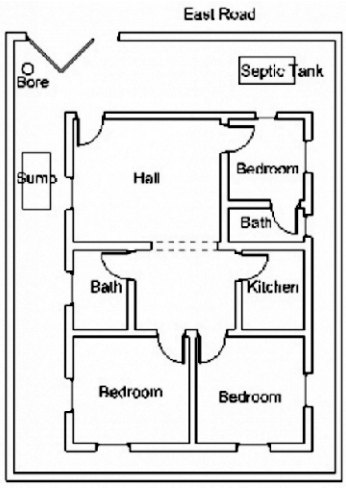

चित्र 27.1 : स्थान व्यवस्था

फिर भी इतना तो ध्यान अवश्य ही रखना चाहिए कि कम-से-कम अनिवार्य क्रियाओं के लिए जैसे-रसोईघर, शौच, स्नान घर, सोने के कमरे का स्थान अवश्य ही होना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक सुगृहिणी अपनी बुद्धि के अनुसार मकान में आंगन, गैलरी एवं दालान आदि को भी आवश्यक एवं सुविधानुसार प्रयोग में ले लेती है।

विभिन्न गृह क्रियाओं को संपन्न करने हेतु स्थान व्यवस्था निम्न प्रकार से होनी चाहिए (चित्र 27.1)।

1. बैठक अथवा स्वागत एवं बहुउद्देशीय कमरा।
2. शयन कक्ष
3. भोजन कक्ष
4. रसोई घर
5. स्नान घर

6. अतिथि कक्ष
7. बच्चों का कमरा
8. भण्डार कक्ष
9. बरामदा।

1. बैठक अथवा स्वागत कक्ष एवं बहुउद्देशीय कमरा (Drawing or Reception room)– प्रत्येक मकान चाहे छोटा हो अथवा बड़ा मेहमान को बैठाने के लिए अवश्य ही होना चाहिए। बैठक उपयोगी व सुन्दर दिखनी चाहिए। बैठक में प्रकाश एवं स्वच्छ वायु की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए, क्योंकि मेहमानों के अलावा अवकाश के समय परिवार के सदस्य वहां विश्राम या मनोरंजन कर सकते हैं।

बहुउद्देशीय कमरा (Living room) वह होता है जहां परिवार के सभी सदस्य मिल-बैठकर आराम के क्षणों का आनन्द लेते हैं, इसके अलावा सिलाई-बुनाई, सब्जी काटना आदि कई छोटे-छोटे घरेलू कार्य भी सम्पन्न किये जा सकते हैं। इस कमरे की व्यवस्था का एक लाभ यह भी है कि आये हुए मेहमान के कारण घर की एकान्तता प्रभावित नहीं होती है। इसे भोजन कक्ष के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं।

2. शयन कक्ष (Bedroom)– यह वह कमरा होता है जहां पर परिवार के सदस्य रात में एवं दिन के समय आराम करते हैं। इस कमरे में सुरक्षा, शान्ति एवं आराम की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए अत: यह कमरा बैठक तथा शोरगुल से दूर होना चाहिए। यदि शयन कक्ष का आकार बड़ा है तो छोटा सोफासेट रख सकते हैं जिससे मेहमानों की भी व्यवस्था हो सके। इसमें कभी-कभी अध्ययन की व्यवस्था के साथ अन्य कार्य–पेंटिंग, खेल, संगीत आदि सम्पन्न किये जा सकते हैं।

3. भोजन कक्ष (Dining room)– आजकल आधुनिक परिवारों में लोग रसोईघर में भोजन करना पसन्द नहीं करते हैं। अत: इसके लिए अलग से भोजन कक्ष होता है। भोजन कक्ष सदैव रसोईघर के पास होना चाहिए, यदि रसोईघर काफी बड़ा है, तो उसमें भी एक कोने में व्यवस्था की जा सकती है। यदि स्थानाभाव हो तो रसोई के पास बरामदे का प्रयोग भी भोजन कक्ष के रूप में किया जा सकता है।

4. रसोईघर (Kitchen)– रसोईघर गृह के विभिन्न कमरों में से सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि परिवार व स्वास्थ्य के स्तर का निर्धारण

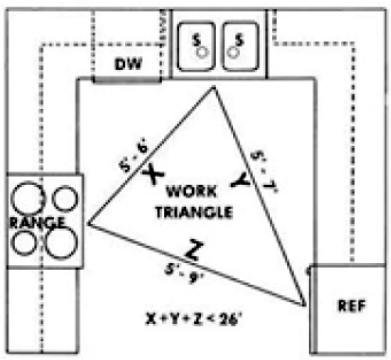

चित्र 27.2 : **कार्य सरलीकरण**

भी यही से होता है। गृहिणी का सबसे अधिक समय अन्य कमरों की अपेक्षा रसोईघर में ही व्यतीत होता है। आधुनिक युग में जहां गृहिणी घर से बाहर भी काम करने लग गई है, तो आवश्यक हो गया है कि समय व शक्ति की बचत करने हेतु रसोईघर सुव्यवस्थित एवं आधुनिक उपकरणों से युक्त हो अत: कार्य सरलीकरण का ध्यान रखना चाहिए (चित्र 27.2)।

जिन मकानों में रसोई घर के लिए अतिरिक्त कमरे की व्यवस्था नहीं होती है वहां पर बरामदे में अथवा किसी अन्य कमरे के कोने में भोजन बनाने की बैठक व्यवस्था की जाती है।

रसोईघर कैसा भी हो वह साफ-सुथरा होना चाहिए। उसमें भोजन सामग्री रखने एवं तैयार करने के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए।

5. स्नान गृह (Bathroom)– स्नान घर का उचित स्थान शयन कक्ष के पास होता है। स्नान घर में उचित प्रकाश एवं शुद्ध हवा की व्यवस्था होनी चाहिए। आजकल स्नान घर के साथ शौचालय भी संलग्न होता है। स्नान गृह बड़ा हो तो शृंगार कक्ष के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है।

6. अतिथि कक्ष (Guest room)– जब मकान बड़ा हो तब अतिथि कक्ष की व्यवस्था की जाती है। यह कक्ष घर के एक कोने की ओर होता है, जिससे अन्य सदस्यों की एकान्तता में रुकावट न आए। अतिथि कक्ष को अध्ययन कक्ष के रूप में भी काम में ले सकते हैं।

7. बच्चों का कमरा (Children's room)– प्रत्येक परिवार में बच्चों के लिए अलग से कमरे की अत्यन्त आवश्यकता होती है क्योंकि बच्चे परिवार के वे सदस्य हैं जिन्हें सर्वाधिक प्यार व सुरक्षा की आवश्यकता होती है। बच्चों के कमरे में कम ऊंचा, सादा व हल्का फर्नीचर हो जहां बच्चा पढ़ सके, चित्रकारी कर सके व अपने सहयोगी बच्चों के साथ खेल सके। मकान में एक हिस्सा ऐसा अवश्य ही बच्चों के लिए रखना चाहिए। जिसे बच्चा अपना समझ सके। यह हिस्सा बरामदे अथवा सोने के कमरे का एक कोना भी हो सकता है। यहां बच्चा अपनी मनपसंद गतिविधियां सम्पन्न कर सकता है।

8. भण्डार कक्ष (Store room)– भण्डार कक्ष में घर के बक्से, सूटकेस, बिस्तर आदि सामान रखा जाता है। यह कमरा शयन कक्ष के पास होने से सुरक्षा एवं आवश्यकता, दोनों ही प्रकार से सुविधाजनक रहता है। आधुनिक घरों के प्रत्येक कमरे से सम्बन्धित सामान को उसी में संग्रहित करने की व्यवस्था की जाती है।

9. बरामदा (Varandah)– मकान में बरामदा चारों तरफ या आगे-पीछे हो सकता है। सामने वाला बरामदा मेहमान के बैठने हेतु भी काम आता है। इसके अलावा अन्य परिचित जैसे–दूध वाला, अखबार वाला या एक दम अनजान व्यक्ति जिसे घर के अन्दर नहीं ले जाया जा सकता, बरामदा में बैठाया जाता है। मकान के पीछे की ओर का बरामदा गृहिणी के रसोई सम्बन्धी कार्य करने हेतु या बच्चों के खेलने के लिए काम आता है।

स्थान व्यवस्था करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना

चाहिए।

1. कमरों का पारस्परिक सम्बन्ध–जैसे भोजन कक्ष रसोईघर के पास होना चाहिए ताकि खाना परोसने में आसानी रहे।

2. आवागमन–कमरों के आने-जाने का रास्ता खुला रखना चाहिए। बीच में किसी प्रकार की रुकावट न हो।

3. एकान्त–दो कमरों के मध्य एकान्त बनाने के लिए खिड़की-दरवाजों की स्थिति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कमरों के अंदर का दृश्य बाहर से नहीं दिखाई देना चाहिए। जैसे–दरवाजे कमरे के बीच में न लगाकर एक कोने में लगाये।

4. स्थान का सर्वाधिक उपयोग–कमरे में या घर में जितना भी स्थान है उसका अधिकतम उपयोग होना चाहिए।

5. फर्नीचर व्यवस्था–प्रत्येक कमरे में उचित फर्नीचर होना चाहिए। यदि जगह कम हो तो बहुउद्देशीय फर्नीचर उपयोग में लेना चाहिए जैसे–सोफा कम बेड (Sofa-Cum-bed) जिसे दिन में सोफा के काम में ले सकते हैं।

जहां कहीं भी संभव हो, स्थान व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि कार्यकर्ता दो या तीन क्रियाएं एक साथ कर सके। जैसे–रसोईघर के पास हॉल हो जिसमें बैठकर गृहिणी टीवी देख सके, खाने का ध्यान रख सके तथा बच्चों को गृह कार्य करने में भी मदद कर सके।

गृह-सज्जा में रंग एवं सजावटी वस्तुओं का उपयोग

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में गृह-सज्जा का अर्थ घर की सज्जा कर, एक देखने की वस्तु बनाना मात्र नहीं है बल्कि घर के सदस्यों की आवश्यकतानुसार उनको साधनयुक्त कर क्रियाशीलता एवं साधन बढ़ाना है। गृह-सज्जा एक ऐसी कला है, जो घर को नया रूप देती है, इसके साथ ही घर के सदस्यों के पूरे व्यक्तित्व का परिचायक होती है।

श्री सुन्दर राज के अनुसार आन्तरिक सज्जा एक सृजनात्मक कला है, जो एक साधारण मकान की काया-पलट करती है।

गृह-सज्जा में काम आने वाले कला के तत्त्वों का ज्ञान होना गृहिणी के लिए आवश्यक है ताकि वह घर की विभिन्न वस्तुओं को आरामदेह और सौन्दर्यात्मक ढंग से व्यक्त कर सके। कला के तत्त्व निम्न हैं–1. रेखा, 2. आकार, 3. बनावट, 4. रंग, 5. प्रकाश, 6. स्थान।

रंग

कला के तत्त्वों में से रंग एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जिसके द्वारा घर को आकर्षक व सुन्दर बनाया जा सकता है। विभिन्न स्थानों तथा वस्तुओं में सौन्दर्य प्रदान करने के लिए रंगों का प्रयोग उस स्थान, समय और परिस्थिति के अनुसार करना चाहिए। रंग का मुख्य स्रोत प्रकाश होता है। प्रांग (Prang) के अनुसार रंग के तीन आधारभूत गुण होते हैं–

1. **ह्यू (Hue)**–अर्थात् रंग का नाम, जैसे–लाल, हरा, नीला।
2. **मूल्य (Value)**–अर्थात् रंगों का हल्कापन व गहरापन, जैसे–हलका हरा और गहरा हरा।
3. **तीव्रता (Chroma)**–अर्थात् रंग की चमक (Brightness) व धुंधलापन (Dullness) जैसे–चमकीला लाल (Blood red), धुंधला लाल (Faded red)।

प्रांग रंग-चक्र–प्रांग ने इस रंग-चक्र का प्रतिपादन किया। चक्र के बायीं तरफ गर्म रंग तथा दाएं तरफ ठंडे रंग दर्शाए गये हैं। लाल व पीला गर्म रंग हैं क्योंकि ये आग और सूर्य का रंग है तथा नीला व हरा ठंडे रंग है क्योंकि यह रंग पानी और घास का (चित्र 27.3) है।

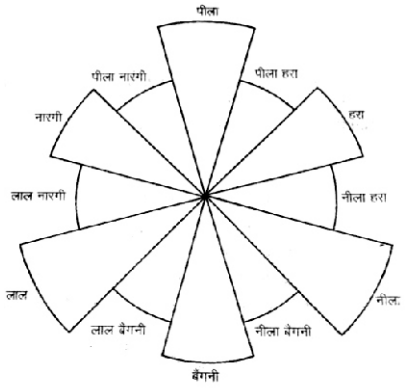

चित्र 27.3 **प्रांग का रंग चक्र**

रंगों का वर्गीकरण– रंगों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया है, 1. प्राथमिक रंग (Primary Colours), 2. द्वितीयक रंग (Secondary Colours), 3. तृतीयक रंग (Tertiary Colours)।

1. प्राथमिक रंग–ये प्राथमिक रंग होते हैं। ये प्राकृतिक अवस्था में पाये जाते हैं। इन्हें किसी अन्य रंग के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उदाहरण–लाल, नीला एवं पीला।

2. द्वितीय रंग–ये रंग किन्हीं दो प्राथमिक रंगों को बराबर अनुपात ये मिलाने से प्राप्त होते हैं। जैसे–नारंगी, बैंगनी और हरा।

3. तृतीयक रंग–जब किसी एक प्राथमिक रंग को उसके पास वाले द्वितीयक रंग के बराबर अनुपात में मिलाते हैं तो तृतीयक रंग प्राप्त होता है। जैसे–लाल-नारंगी, लाल-बैंगनी, पीला-नारंगी, पीला-हरा आदि।

इन रंगों के अलावा काला, सफेद, स्लेटी व भूरा रंग भी पाया जाता है जिन्हें हम विविध प्रकार से प्रयोग कर घर को आकर्षक बना सकते हैं। इन रंगों को प्रायः उदासीन रंग कहा जाता है। प्रांग के अनुसार वे वस्तुएं जो गर्म रंग की होती हैं वे आकार में बड़ी तथा पास दिखाई देती हैं, जबकि ठण्डे रंग वाली वस्तुएं दूर तथा छोटी दिखाई देती हैं। जिस प्रकार सफेद और काला रंग एक-दूसरे के पूरक होते हैं उसी प्रकार ठण्डे और गर्म रंग भी एक-दूसरे के पूरक होते हैं।

रंग योजना

रंग हमारे जीवन पर विशेष प्रभाव डालते हैं। अतः इनका प्रयोग

अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना चाहिए। रंग योजना दो प्रकार की होती हैं–

रंग योजना

↓ ↓

संबंधित रंग योजना — विपरीत रंग योजना

↓ ↓ ↓ ↓

एक रंगीय योजना | समीपवर्ती रंग योजना | विपरीत रंग योजना | खंडित रंग योजना

इनके अलावा त्रिकोणीय रंग योजना एवं चतुष्कोणीय रंग योजना भी प्रयोग में लायी जाती है।

एक रंगीय योजना– इस प्रकार की योजना में गृह-सज्जा हेतु सिर्फ एक ही रंग का प्रयोग किया जाता है। परन्तु उस रंग के मूल्य में सफेद या काले रंग को विभिन्न अनुपात में मिलाकर परिवर्तन किया जाता है। इसी प्रकार तीव्रता में भी अन्तर लाया जा सकता है। जैसे–हरा, हल्का हरा, गहरा हरा, चमकीला हरा और धुंधला हरा (चित्र 27.4)।

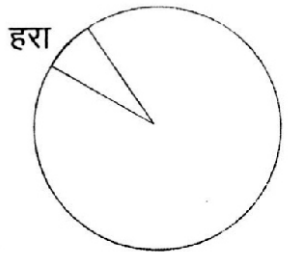

चित्र 27.4 : **एक रंगीय योजना**

समीपवर्ती रंग योजना–इस योजना में प्रांग रंग चक्र के अनुसार गृह सज्जा हेतु किसी एक रंग व उसके आसपास के दो रंगों का प्रयोग किया जाता है। जैसे–यदि पीला रंग मुख्य माना है तो उसके आस-पास के रंग पीला-हरा और पीला-नारंगी का उपयोग किया जायेगा (चित्र 27.5)।

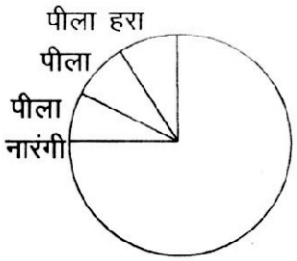

चित्र 27.5 : **समीपवर्ती रंग योजना**

विपरीत रंग योजना–विपरीत रंग योजना में रंग-चक्र में विपरीत दिशा के रंगों का समायोजन किया जाता है। जैसे–लाल-हरा तथा नीला-नारंगी। यदि दो विपरीत रंग योजना का प्रयोग किया जाये तो उसे द्विविपरीत रंग योजना भी कहते हैं। उदाहरण–लाल-हरा, नीला-नारंगी (चित्र 27.6)।

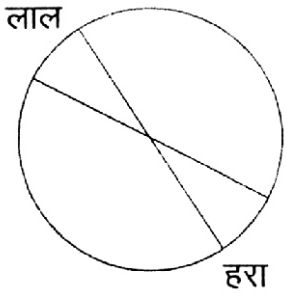

चित्र 27.6 : **विपरीत रंग योजना**

खण्डित विपरीत रंग योजना–यह रंग योजना किसी एक रंग के ठीक विपरीत वाले रंग को न चुनकर उसके आस-पास वाले रंग चुनने पर प्राप्त की जाती है। जैसे–पीला रंग लाल बैंगनी-नीला बैंगनी (चित्र 27.7)।

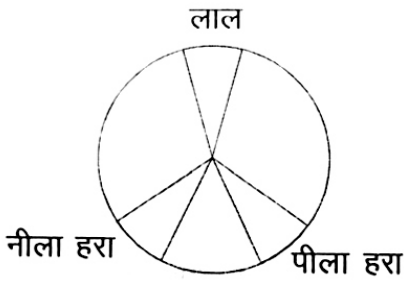

चित्र 27.7 : **खण्डित विपरीत रंग योजना**

त्रिकोणीय रंग योजना–रंग-चक्र में बराबर दूरी पर स्थित किन्हीं तीन रंगों का चुनाव करने पर त्रिकोणीय रंग योजना कहलाती है। जैसे–तीनों प्राथमिक रंग–लाल, नीला, पीला आदि चित्र 27.8)।

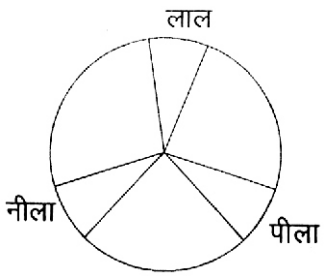

चित्र 27.8 : **त्रिकोणीय रंग योजना**

चतुष्कोणीय रंग योजना–जब रंग-चक्र में बराबर दूरी पर स्थित चार रंग प्रयुक्त किये जाते हैं उसे चतुष्कोणीय रंग योजना कहते हैं। जैसे–पीला, नारंगी, हरा, नीला, बैंगनी व लाल; या पीला, हरा, नीला, लाल, बैंगनी व नारंगी (चित्र 27.9)।

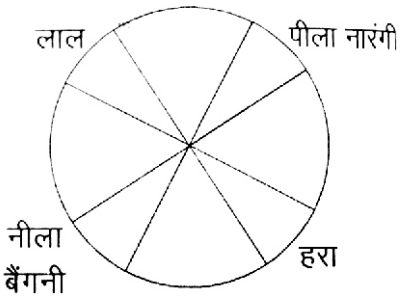

चित्र 27.9 : **चतुष्कोणीय रंग योजना**

रंगों के मानसिक प्रभाव के आधार पर वर्गीकरण–

1. उष्ण एवं शीतल रंग

प्रकृति से सम्बन्ध ही इन रंगों का आधार है। लाल, पीला और नारंगी रंग उष्ण रंग माने जाते हैं क्योंकि ये रंग अग्नि एवं सूर्य में हैं। नीला रंग आकाश, हरा रंग वनस्पति का होने के कारण हमें शीतलता का आभास देते हैं।

2. भारी एवं हल्के रंग

कुछ रंग जैसे–काला, भूरा व लाल अधिक भारी होने वाला आभास देते हैं जबकि नीला, गुलाबी व सफेद रंग कम भार का आभास देते हैं। अत: भारी रंग अर्थात् गहरे रंग जमीन की ओर तथा हल्के रंग ऊपर की तरफ प्रयोग करने चाहिए।

3. आगे बढ़ने वाले तथा पीछे हटने वाले रंग

वे रंग जो धरातल पर अधिक होने का प्रभाव छोड़ते हैं तथा एकदम उभर कर आते हैं उन्हें आगे बढ़ने वाले एवं वे रंग जो पृष्ठभूमि में दूरी का आभास कराते हैं उन्हें पीछे हटने वाले रंग कहते हैं। प्राय: उष्ण रंग आगे बढ़ने तथा शीतल रंग पीछे हटने वाले होते हैं।

रंगों का प्रयोग करते समय रखने वाली सावधानियां :

1. रंगों का उपयोग व्यक्ति व परिवार को अपनी रुचि के अनुसार करना चाहिए। किसी को कमरे में बहुउद्देशीय योजना अच्छी लगती है तो किसी को एकदम सादी–सफेद।
2. रंग कितनी मात्रा में प्रयुक्त किया जाये, यह जानना अति आवश्यक होता है। जैसे–चटकीला, बैंगनी रंग सज्जा में थोड़े स्थान पर प्रयोग में लाने पर सुन्दर लग सकता है। लेकिन चारों दिवारें इस रंग में नहीं रंगी जा सकती। नीला रंग अधिक मात्रा में आकर्षक लगेगा परन्तु लाल रंग अधिक मात्रा में थकाने वाला लगेगा।
3. रंगों का प्रयोग कमरे के उद्देश्य को ध्यान में रखकर करना चाहिए। जैसे–शयन कक्ष आराम करने का स्थान है, तो इसमें शांत रंग तथा बच्चों को चमकीले व गहरे रंग लुभाते हैं तो उनके कक्ष में बहुउद्देशीय योजना का सुन्दर सम्मिश्रण कर सकते हैं।
4. रंग का प्रयोग कमरे के आकार के अनुसार करना चाहिए जैसे–छोटे कमरे में हल्के रंग के प्रयोग से उसका आकार बढ़ जायेगा व गहरा रंग करने से और छोटा लगेगा।
5. ठण्डी जलवायु वाली जगह ऊष्ण रंग एवं गर्म जलवायु वाली जगह शीतल रंग अच्छे लगते हैं।
6. एक ही रंग विभिन्न सतह पर अलग–अलग दिखाई प्रतीत होता है, जैसे–लाल, पीला और नारंगी रंग साटिन, शनील और रेशम पर चटकीले लगेंगे परन्तु खद्दर, जूट, सूती कपड़े पर धुंधले दिखाई देंगे।
7. विपरीत रंगों का प्रयोग एक–दूसरे को एकदम दर्शाते हैं। जैसे–काला और सफेद में काला अधिक काला लगेगा और सफेद अधिक सफेद। जबकि काले के साथ किसी अन्य रंग के उपयोग पर काला उतना काला नहीं लगता।
8. रंगों का उपयोग फैशन के आधार पर भी किया जा सकता है जैसे–पहले स्नानघर में वॉश बेसिन, टाइल्स सब सफेद ही लगाये जाते थे। लेकिन अब ये सब विभिन्न रंगों में मिलने लगी हैं, जिस रंग का फैशन होता है, वही रंग प्रयोग में ला सकते हैं।

सजावटी वस्तुएँ–घर की भीतरी सजावट हेतु विभिन्न सजावटी वस्तुओं की आवश्यकता होती है किन्तु वस्तुओं के होने मात्र से ही घर के भीतरी रूप को आकर्षक नहीं बना सकते वरन् इन सजावटी वस्तुओं की कमरे में उचित व्यवस्था होनी जरूरी है। ये वस्तुएँ आन्तरिक सज्जा को परिपूर्णता एवं व्यावहारिकता प्रदान करती हैं तथा साथ ही साथ उनकी कलात्मक अभिवृद्धि भी करती हैं। जैसे–तस्वीरें, मूर्तियां, लैम्प, घड़ियाँ, पौधे आदि।

सजावटी वस्तुएँ निम्नलिखित प्रकार की होती हैं–

1. कलात्मक एवं सौन्दर्यात्मक वस्तुएँ–इनमें वे सजावटी वस्तुएं आती हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य सौन्दर्य में वृद्धि करना होता है। जैसे–कलापूर्ण चित्र, मूर्तियां, पुष्प–सज्जा, कलात्मक दर्पण आदि।

2. कार्यात्मक एवं उपयोगी वस्तुएँ–ये वस्तुएँ सौन्दर्य वृद्धि के साथ–साथ उपयोगी भी होती हैं। जैसे–लैम्प, दीवार–घड़ी, एश ट्रे आदि।

3. प्राकृतिक वस्तुएँ–ये वस्तुएँ प्रकृति से सम्बन्धित होती हैं, इन्हें या तो यथावत ही प्रयोग में लिया जाता है, या उसकी प्रतिकृति। जैसे–पेड़–पौधे, मछलीघर, शंख, फव्वारे, पंख, सूखी पत्तियां आदि।

सजावटी वस्तुओं का गृह–सज्जा में प्रयोग करते समय ध्यान देने योग्य बिन्दु :

1. किसी भी सजावटी वस्तु की प्रकृति के अनुसार घर में उचित स्थान पर सजाये। जैसे–दीवार–घड़ी को दीवार पर ही लगाएं, शयन–कक्ष में युद्ध के चित्र नहीं लगाने चाहिए।
2. बहुत अधिक संख्या में सजावटी वस्तुएँ भीड़ का आभास देती हैं। अत: इन्हें समूहीकरण या वर्गीकरण करके सजाना चाहिए।

जैसे–एक ताक में सभी फोटो–फ्रेम रख सकते हैं तो दूसरी में सभी मूर्तियां रख सकते हैं।

3. कार्यात्मक वर्ग की वस्तुएं पूर्ण रूप से उपयोगी हों, जैसे–घड़ी बंद न हो, लैम्प सही रोशनी देने वाला हो आदि।
4. कुछ समय पश्चात् आवश्यकता पड़ने पर फैशन के अनुसार बदल सकें।
5. सजावटी वस्तुओं का उपयोग सजावट की शैली के अनुसार ही होना चाहिए। जैसे–यदि परंपरागत शैली में लोक कला की वस्तुएं व ऐतिहासिक वस्तुएं ही उचित लगेंगी जबकि आधुनिक शैली में नयापन दर्शाने वाली वस्तुएं। जैसे–3डी, इलेक्ट्रिक झरना आदि आकर्षक प्रभाव छोड़ती हैं।

अत: इस प्रकार इन सजावटी वस्तुओं का ढंग से उपयोग ही सब कुछ नहीं है वरन् इनकी समय–समय पर देखभाल भी अति आवश्यक होती है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. घर वह स्थान है जहां परिवार अपनी आवासीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और जहां प्रत्येक व्यक्ति की सर्वांगीण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
2. प्रतिदिन व्यक्ति अपने घर में विभिन्न गृह क्रियाएं करता है, इस हेतु उपयुक्त स्थान की आवश्यकता होती है, ताकि कार्य आसानी से सम्पन्न किया जा सके।
3. गृह–सज्जा द्वारा घर को सुन्दर, आकर्षक व सुविधापूर्ण बनाया जाता है, साथ ही गृहिणी साज–सज्जा द्वारा अपनी अभिव्यक्तियों को रूप दे सकती है।
4. गृह–सज्जा करने में रंग एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जिसके द्वारा घर को आकर्षक बनाया जा सकता है।
5. गृह–सज्जा में प्रयुक्त रंग हमारे मनोभावों को प्रभावित करते हैं।
6. रंगों का प्रयोग कमरे के उद्देश्य को ध्यान में रखकर करना चाहिए।
7. गृह–सज्जा में कई सजावटी वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। जैसे–मूर्तियां, चित्र, लैम्प, घड़ियां आदि।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुने।

(i) रसोईघर किस क्षेत्र में आता है।

(अ) उपयोगी क्षेत्र (ब) अनुपयोगी क्षेत्र

(स) एकान्त क्षेत्र (द) कोई भी नहीं

(ii) रंग के नाम को कहा जाता है।

(अ) रंग (ब) प्राथमिक रंग

(स) ह्यू (द) मूल्य

(iii) उष्ण रंग होता है।

(अ) हरा (ब) नीला

(स) सफेद (द) पीला

(iv) लाल, नीला एवं पीला रंग हैं।

(अ) द्वितीय (ब) तृतीय

(स) प्राथमिक (द) विपरीत

2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो–

(i) प्राथमिक रंग, (ii) गृह–सज्जा हेतु कार्यात्मक वस्तुएं

3. गृह–सज्जा क्यों आवश्यक है?
4. गृह–सज्जा में रंगों का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए।
5. विभिन्न रंग योजनाओं को उदाहरण सहित समझाइये।
6. रंगों का प्रयोग करते समय कौन–कौन–सी सावधानियां रखनी चाहिए।

उत्तरमाला :

(i) ब (ii) स (iii) द (iv) स

अध्याय 28

प्राथमिक चिकित्सा

परिभाषा एवं अर्थ–डॉक्टर के आने से पहले या चिकित्सालय में पहुंचाने से पहले दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को दी जाने वाली सहायता को प्राथमिक चिकित्सा कहते हैं। यह चिकित्सा दुर्घटना स्थल या उसके पास के स्थान में की जाती है (चित्र 28.1)।

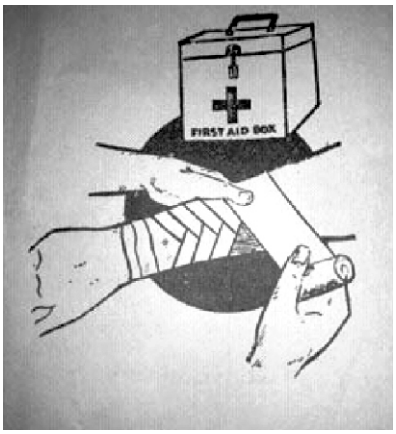

चित्र 28.1 : **प्राथमिक चिकित्सा**

प्राथमिक चिकित्सा के उद्देश्य

1. जीवन की रक्षा करना–इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि रोगी के प्राण की रक्षा करना, यदि समय पर प्राथमिक चिकित्सा मिल जाती है तो रोगी की प्राण-रक्षा संभव हो जाती है।

2. तुरन्त चिकित्सा–प्राथमिक चिकित्सा दुर्घटना होने के तुरंत बाद की जाती है ताकि स्थिति और गंभीर ना हो।

प्राथमिक चिकित्सा के सिद्धांत–प्राथमिक चिकित्सा सिर्फ घटना के समय की गई देखभाल होती है। प्राथमिक उपचार करने वाला कोई भी हो सकता है–आप, हम, छात्र-छात्राएं, शिक्षक, स्काउट आदि। दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को चिकित्सक तक पहुंचाने के बाद प्राथमिक उपचार करने वाले का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। एक अच्छे प्राथमिक उपचार करने वाले को निम्न सिद्धांत अपनाने चाहिए।

1. भीड़ को हटाना।
2. रोगी की स्थिति की जांच करना।
3. श्वसन क्रिया चालू करना।
4. कपड़े ढीले करना।
5. नाड़ी व श्वसन क्रिया देखना।
6. रक्तस्राव को बंद करना।
7. शान्त रहना और स्पष्टत: सोचना।
8. रोगी को तुरन्त चिकित्सक तक पहुंचाना।
9. तत्काल निर्णय लेना।

प्राथमिक चिकित्सक के कर्तव्य

1. स्थायी चिकित्सक के कर्तव्य–प्राथमिकी का प्रमुख कर्तव्य है कि दुर्घटना की प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त कर किसी अन्य योग्य व्यक्ति को भेजकर डॉक्टर बुलाने का प्रबंध करें, ताकि डॉक्टर अपनी पूरी तैयारी के साथ घायल की स्थायी चिकित्सा हेतु आ सके।

2. सुरक्षित स्थान पर लिटाना–घायल व्यक्ति को सुरक्षित स्थान पर लिटाकर, धूप आदि से बचा करे एवं अनावश्यक भीड़ को हटा दे।

3. कृत्रिम श्वास दिलाना–यदि घायल को श्वास नहीं आ रही हो तो उसे तुरन्त कृत्रिम श्वास दिलाना चाहिये।

4. वमन कराना–यदि यह आशंका है कि रोगी ने विष पी लिया है तो तुरन्त उसे वमन कराने का प्रयास कराना चाहिये।

5. हड्डी टूटना–यदि घायल के किसी अंग के टूटने की आशंका हो तो उस अंग को हिलाना-डुलाना नहीं चाहिये।

6. पानी में डूबे व्यक्ति की चिकित्सा–पानी में डूबने से व्यक्ति के पेट में पानी भर जाता है अत: उसके मुंह से कीचड़ आदि निकालकर उल्टा करके उसके पेट का पानी निकालने का प्रयास करना चाहिये।

7. मौसम की तीव्रता से बचाना–घायल व्यक्ति की मौसम से भी रक्षा करनी चाहिए। गर्मी में धूप से बचाने के लिए छायादार व हवादार स्थान पर लिटाना चाहिये तथा सर्दी से बचाने के लिए उसे कंबल, रजाई आदि से उसके शरीर को गर्म रखना चाहिये। होश आने पर मौसम के अनुसार गर्म या ठंडा पेय पिलाना चाहिये।

प्राथमिक चिकित्सक के गुण

प्राथमिक चिकित्सक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

1. आत्मविश्वास–प्राय: चिकित्सक को स्वयं पर विश्वास होना चाहिये। उसके कार्य को कोई बाधित करे तो उस पर ध्यान न देकर अपना कार्य पूरे विश्वास से करते रहना चाहिये।

2. त्वरित निर्णय क्षमता–प्राथमिक चिकित्सक दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति की स्थिति को भली प्रकार जांच कर शीघ्रता से निर्णय करने वाला होना

चाहिये।

3. शारीरिक संरचना का ज्ञान–उसे मानव की शारीरिक संरचना का ज्ञान होना चाहिये जिससे वह आसानी से समझ सके कि चोट कहां लगी है, रक्त-स्राव कहां से हो रहा है, इसे कैसे रोका जा सकता है, हड्डी टूटी है या नहीं, कृत्रिम श्वास देने की आवश्यकता है या नहीं आदि।

4. उपलब्ध साधनों का उपयोग–प्राथमिक चिकित्सक दुर्घटना स्थल पर मौजूद साधनों का उपयोग कर रोगी की दशा को और अधिक बिगड़ने से रोक सके, इस प्रकार की बुद्धि होनी चाहिये।

5. धैर्यशील–चूंकि दुर्घटना होने पर सभी व्यक्ति घबरा जाते हैं। अत: रोगी चाहे कैसा भी गंभीर हो, उपचारक को स्वयं धैर्य रखते हुए, धैर्य दिलाने की शक्ति होनी चाहिए ताकि रोगी की घबराहट कम हो और उसमें हिम्मत आये।

6. दयावान–दूसरों के प्रति दयाभाव रखने वाला ही सच्ची सहायता कर सकता है। अत: दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के प्रति दयाभाव दिखाकर, सहानुभूति प्रकट करने की क्षमता होनी चाहिये।

7. मृदु व्यवहार–प्राय: चिकित्सक को मृदुभाषी व हंसमुख होना चाहिये ताकि अपने व्यवहार से दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्ति के मन में अपने प्रति विश्वास पैदा कर सके।

8. स्वस्थ शरीर–प्राय: चिकित्सक को स्वयं स्वस्थ एवं बलशाली होना चाहिए ताकि दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को उठा सके, और उसे सहायता देने का कार्य कुशलता एवं सफलतापूर्वक कर सके।

9. कर्तव्य परायण–सेवा कार्य को अपना धर्म समझते हुए कार्य करना चाहिए। उसे जाति, धर्म, वर्गभेद आदि से ऊपर उठकर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

सामान्य घरेलू दुर्घटनाएं तथा उपचार

जलना–मुख्यत: जलन तीन प्रकार की होती हैं–1. साधारण जलन, 2. विशेष जलन एवं 3. विषम जलन।

1. साधारण जलन–इसमें त्वचा लाल हो जाती है परन्तु फफोले नहीं पड़ते हैं।

उपचार–ऐसी जलन में जले हुए अंग को तुरन्त पानी में डालना चाहिए। कच्चा आलू पीसकर लगाना चाहिए। जले हुए अंग पर नारियल या तिल के तेल में चूने का पानी मिलाकर लगाने से भी लाभ होता है।

2. विशेष जलन–इस प्रकार की जलन में त्वचा लाल हो जाती है और छाले भी पड़ जाते हैं।

उपचार–1. फफोलों को फोड़ना नहीं चाहिये।

2. घाव पर बरनॉल लगानी चाहिये।

3. फफोलों पर चिकना पदार्थ (घी, तेल) नहीं लगाना चाहिये।

3. विषम जलन–इस प्रकार की जलन में अंग विशेष के तन्तु जल जाते हैं। इससे अधिक पीड़ा तथा जलन होती है।

उपचार–1. तुरन्त डॉक्टरी व्यवस्था करनी चाहिए।

2. ठंडे पानी से धोना चाहिये।

3. बरनॉल लगाना चाहिये।

लू लगना (Sun Stroke)

गर्मी के दिनों में धूप में अधिक घूमने-फिरने से लू लगने की संभावना रहती है। गर्म वायु में अधिक देर तक रहने तथा खुले सिर काम करने से भी गर्मी के दिनों में लू लग जाती है।

लक्षण–1. मामूली लू लगने पर सिर में तेज दर्द होता है और चक्कर आने लगते हैं। कभी-कभी वमन भी हो जाती है।

2. प्यास अधिक लगती है, श्वास तेज चलती है तथा नाड़ी की गति भी तेज हो जाती है।

3. अधिक लू लगने पर मनुष्य अचेत हो जाता है, तेज बुखार, त्वचा गरम व सूखी हो जाती है।

4. तापमान शीघ्र ही बढ़कर 105° तक हो जाता है। अगर तापमान कम करने का प्रबंध नहीं किया जाये तो रोगी की मृत्यु भी हो सकती है।

उपचार–1. रोगी को ठंडे स्थान पर लिटाएं और उसके वस्त्र उतार दे।

2. रोगी के सिर पर बर्फ की थैली रखें व रोगी को गीली चादर में लपेट कर पंखा करें।

3. तापमान कम हो जाने पर सूखी चादर में लपेट दें।

4. रोगी को ठंडे पानी में थोड़ा नमक मिलाकर पीने को दे।

5. लू से बचने के लिए कच्चे आम का नमकीन पानी पीना चाहिये।

विद्युत आघात (Electric Shock)

कई बार असावधानीवश बिजली के नंगे तारों से या अन्य किसी विद्युत उपकरण में खराबी आने के कारण से विद्युत आघात लग जाता है। यदि मनुष्य को शीघ्र ही तार से छुड़ाया नहीं जाये तो उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

लक्षण–करंट लगने से अंग प्राय: जल जाता है। हाथों तथा बाजुओं से बिजली प्रवाह छू जाने से विद्युत धारा वक्ष से निकल जाती है, फलस्वरूप हृदय शक्तिहीन हो जाता है।

उपचार

1. विद्युत प्रवाह को बटन दबाकर बंद कर दें, यदि प्लग लगा हो तो उसे निकाल दें।

2. घायल व्यक्ति को विद्युत प्रवाह के संपर्क से हटाये। कभी भी प्रभावित व्यक्ति को नंगे हाथ से ना पकड़े। किसी सूखी लकड़ी, सूखे कपड़े, सूखी रस्सी, रबर के दस्ताने आदि को हाथ में लपेटकर हटाना चाहिये। पैरों में रबर के तले वाले जूते, लकड़ी का ढेर या समाचार पत्रों के ढेर पर खड़े होकर छुड़ाये।

3. घायल श्वास नहीं ले रहा हो तो कृत्रिम श्वास दें।

4. आहत व्यक्ति के तलवों में मालिश करें ताकि रक्तसंचार

शीघ्रता से हो सके।

5. रोगी होश में आ जाये तो उसे गर्म चाय देनी चाहिये।

कान, आंख, नाक में बाहरी वस्तुएं–

1. कान में बाहरी चीजे–प्राय: खेलते समय बच्चों के कान में बीज, मोती, अनाज के दाने आदि घुस जाते हैं। कभी-कभी मच्छर या अन्य कीड़े भी प्रवेश कर जाते हैं।

लक्षण–1. कान में कीड़ा प्रवेश करने पर कान के पर्दे पर भनभनाहट, दर्द तथा सिर में दर्द होने लगता है।

2. कान में दाने, बीज या मोती प्रवेश करने पर कान में दर्द तथा सूजन हो जाती है, कान का बाहरी भाग लाल हो जाता है।

उपचार–यदि कान में कीड़ा प्रवेश कर गया हो तो निम्न उपाय करें–

1. कान में ग्लिसरीन, सरसों या जैतून के तेल की कुछ बूंदे डालें।

2. ऊपर से कान में 2-3 औंस हल्का गर्म पानी डालें।

3. कभी-कभी टॉर्च की रोशनी कान में दिखाने से भी कीड़ा बाहर निकल आता है।

यदि अन्य वस्तु प्रवेश कर गई हो तो–

1. सरसों का तेल डाले।

2. उपर्युक्त विधि से अगर वस्तु बाहर नहीं निकले तो डॉक्टर से परामर्श लें।

2. आँख में बाहरी वस्तु का प्रवेश–प्राय: आँखों में रेत के कण, कोयला, मिट्टी या लोहे के कण, कीड़े व कभी-कभी पलक का बाल भी टूटकर गिर जाता है। आंख शरीर का प्रमुख तथा बहुत ही कोमल अंग है। अत: शीघ्र ही उपचार करना चाहिये।

लक्षण–आंखों में बेचैनी तथा पीड़ा होने लगती है। आँखें लाल हो जाती हैं, पानी निकलने लगता है तथा आँखों में जलन होने लगती है। कभी-कभी आँख पर सूजन आ जाती है।

उपचार–1. सर्वप्रथम आँखों को मलना नहीं चाहिये। मलने से आंख की कोमल त्वचा में रगड़ पड़ जाती है।

2. आंख के नीचे की पलक को खींचकर कर देखे, अगर कोई सूक्ष्म कण दिखाई दे तो स्वच्छ रूमाल के एक कोने को ऐंठ कर या साफ रूई की बती बनाकर पानी में गीली कर उसकी नोंक से कण को बाहर निकाले।

3. अगर ऊपर की पलक में चिपक गई हो तो पानी में भीतर आँख को खोलना व बन्द करना चाहिये।

4. आँख में चूना या तेजाब पड़ने पर स्वच्छ जल के छीटों से आंख को धोना चाहिये व शीघ्र ही डॉक्टर को दिखाये।

5. आँख में एक बूंद अरंडी या जैतून का तेल डालने से भी किरकिटी आँसुओं के साथ निकल जाती है।

3. नाक में बाहरी चीजें–प्राय: बच्चों की नाक में चना, मटर, मोती या अन्य चीजें खेलते समय प्रवेश कर जाती हैं। नाक में गीलापन रहने के कारण अनाज का दाना फूल जाता है और बुरी तरह फंस जाता है।

लक्षण–1. श्वास लेने में कष्ट होता है।

2. नाक पर सूजन हो जाती है।

3. नाक में दर्द-सूजन हो जाती है।

4. नाक लाल हो जाती है।

उपचार–1. तंबाकू पीस कर सूंघाने से तुरंत छींके आती हैं और वस्तु बाहर निकल आती है।

2. नाक का दूसरा, छिद्र बंद कर प्रभावित छिद्र से श्वास झटके से छोड़ने पर वस्तु निकल सकती है।

3. नाक में चिमटी या पानी न डाले। ऐसा करने से वस्तु और ऊपर चढ़ जाती है।

4. फिर भी वस्तु नहीं निकले तो तुरंत डॉक्टर को दिखाना चाहिये।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. डॉक्टर के पहुंचने से पूर्व दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को जो चिकित्सकीय सहायता दी जाती है, उसे प्राथमिक चिकित्सा कहते हैं।
2. तुरंत चिकित्सा व्यवस्था पर जीवन की रक्षा करना ही प्राथमिक चिकित्सा के उद्देश्य हैं।
3. प्राथमिक चिकित्सक को आत्मविश्वासी, निर्णय क्षमता, धैर्यशील, दयावान व कर्तव्यपरायण होना चाहिए।
4. जलन मुख्यत: तीन प्रकार की होती हैं–1. साधारण जलन, 2. विशेष जलन एवं 3. विषम जलन।
5. लू लगने पर व्यक्ति को अतिशीघ्र ठंडे स्थान पर लिटाना चाहिये।
6. कभी भी विद्युत प्रवाह को नंगे हाथ से नहीं छूना चाहिये।
7. बिजली संबंधित कार्य करते वक्त रबड़ की चप्पल एवं हाथों में रबर के दस्ताने पहनने चाहिये।
8. नाक व कान में कोई वस्तु गिर जाने पर कभी भी चिमटी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों में सही उत्तर चुने :

(i) एक प्राथमिक चिकित्सक का सर्वोत्तम गुण है।

(अ) दूरदर्शिता (ब) कार्यकुशलता

(स) फुर्तीलापन (द) उपरोक्त सभी

(ii) आकस्मिक घटना के समय प्राथमिक चिकित्सा दी जाती है।

(अ) दीर्घकालीन (ब) निरुद्देश्य

(स) तत्काल (द) अल्पकालीन

(iii) प्राथमिक चिकित्सा का उद्देश्य है।

(अ) घायल व्यक्ति का जीवन बचाना

(ब) घायल को सांत्वना देना

(स) घायल को गंभीर होने से बचाना

(द) उपरोक्त सभी

(iv) किस प्रकार की जलन में त्वचा लाल हो जाती है, परन्तु फफोले नहीं पड़ते हैं।

(अ) साधारण जलन (ब) विशेष जलन

(स) विषम जलन (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

2. प्राथमिक चिकित्सा किसे कहते हैं?

3. प्राथमिक चिकित्सा क्यों करनी चाहिये।

4. एक आदर्श प्राथमिक चिकित्सक में कौन-कौन से गुण होने चाहिए?

5. किसी व्यक्ति को लू लगने पर आप किस प्रकार उपचार करेगी? लिखिये।

6. नाक एवं आँख में बाहरी वस्तु गिरने पर आप क्या उपचार करेगी?

उत्तरमाला :

(i) द (ii) स (iii) द (iv) अ

अध्याय 29

गृह परिचर्या

आज के युग में बीमारी तथा दुर्घटना आम बात हो गई है। प्राय: परिवार में कोई-न-कोई बीमार पड़ता ही रहता है। घर किसी भी समय अस्पताल में बदल सकता है। ऐसी स्थिति में रोगी की सेवा की जानकारी रहने से रोगी की देखभाल सही तरीके से हो जाती है।

रोगी को स्वच्छ करने में चिकित्सा का जितना महत्त्व है, उतना ही अच्छी परिचर्या का होता है। बीमारी के समय रोगी की उचित तरीके से देखभाल व सेवा शुश्रूषा अत्यन्त आवश्यक होती है। दवा निर्धारण व अन्य मुख्य कार्य तो चिकित्सक द्वारा किया जाता है, परन्तु रोगी की निरन्तर भली प्रकार से देख-रेख, समय पर दवा, उचित भोजन देना अत्यन्त ही आवश्यक कार्य हैं। रोगी को मल-मूत्र हेतु उठाना, नहलाना, कपड़े बदलना आदि कार्य भी होते हैं।

चित्र 29.1 : **गृह परिचर्या**

अत: रोगी को घर पर ही दी जाने वाली हर प्रकार की सुविधा व देखभाल को गृह परिचर्या कहते हैं (चित्र 29.1)। प्रत्येक किशोर-किशोरी को गृह परिचर्या का साधारण ज्ञान होना नितांत आवश्यक है, जिससे रोग की रोकथाम प्रारंभिक अवस्था में ही हो जाती है। कभी-कभी देखा गया है कि रोगी की उचित देखभाल न होने से रोग ठीक होने की बजाय बढ़ जाता है। यह संभव नहीं है कि प्रत्येक रोगी का अस्पताल में ही उपचार हो, घर पर भी उसकी देखभाल की जा सकती है। घर पर रोगी की सेवा सन्तोषप्रद ढंग से की जा सकती है। पारिवारिक वातावरण में रोगी स्वयं को सुरक्षित एवं आरामदायक स्थिति में अनुभव करता है, भय नहीं रहता है रोगी की दशा सुधारने में घर के संतोषप्रद एवं आनन्ददायक वातावरण का बड़ा योगदान रहता है।

परिचारिका के गुण

1. उचित ज्ञान–उसे शरीर विज्ञान तथा विसंक्रामक पदार्थ आदि का ज्ञान होना चाहिए ताकि वह रोगी की देखभाल भली-भांति कर सके।

2. निर्णय लेने की क्षमता–यदि रोगी की हालत अचानक बिगड़ जाए तो घबराये नहीं तथा अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखते हुए उचित निर्णय ले सके।

3. प्राथमिक चिकित्सा का ज्ञान–उसे तापमान लेने, नाड़ी की गति देखना, पट्टी बांधना आदि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। रोगी का बिस्तर करना, स्पंज करना, चार्ट बनाना आदि कार्यों का ज्ञान होना आवश्यक है।

4. अवलोकन शक्ति–परिचारिका की अवलोकन शक्ति तीव्र होनी चाहिए ताकि वह रोग की दशा, दवाओं का प्रभाव आदि का ध्यानपूर्वक मनन कर डॉक्टर को रोगी के संबंध में पूर्ण जानकारी दे सके।

5. मनोवैज्ञानिक–परिचारिका को मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए ताकि वह रोगी के व्यवहार को समझ कर मनोवैज्ञानिक ढंग से सांत्वना एवं हिम्मत दे सके और बहलाकर दवा पिला सके।

6. विनम्र एवं हंसमुख–रोगी का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, अत: परिचारिका को चाहिए कि रोगी से हंसकर, विनम्रता से व्यवहार करे, जिससे रोगी को स्वस्थ होने में सहायता मिलती है।

7. अच्छा स्वास्थ्य–परिचारिका को स्वयं स्वस्थ होना चाहिए। स्वस्थ रहने पर ही रोगी की सेवा शुश्रूषा अच्छी तरह कर सकती है।

8. सेवा भावी–उसमें सेवा करने की प्रेरणा स्वत: जागृत होनी चाहिए ताकि वह धैर्य और लगन से रोगी की सेवा कर सके। प्राय: महिलाओं में उपर्युक्त गुण पाये जाते हैं। उनमें सेवा करने की भावना बचपन से ही होती है। घर तथा अस्पतालों में इसलिए प्राय: स्त्री ही परिचारिका होती है, हालांकि आजकल पुरुष भी परिचारक का कार्य करने लग गये हैं।

परिचारिका के कर्तव्य

रोगी को स्वास्थ्य लाभ कराने में परिचारिका का अधिक महत्त्व रहता है। क्योंकि वह चिकित्सक तथा रोगी के बीच कड़ी का कार्य करती है। उसे रोगी की देखभाल करने के संबंध में निम्न कार्य करने पड़ते हैं–

1. कमरे का प्रबंध–रोगी को रात-दिन कमरे में ही रहना पड़ता है। अत: उसके कमरे का वातावरण ठीक रखना परिचारिका का कर्तव्य

है। क्योंकि जितना शांतियुक्त, आरामदायक व सुविधाजनक रहेगा उतना ही जल्द रोगी स्वस्थ होगा। अत: रोगी का कमरा स्वच्छ, हवादार एवं प्रकाशयुक्त होना चाहिए।

2. रोगी की स्वच्छता–रोगी को समय-समय पर मल-मूत्र कराना, मुंह धुलाना, स्पंज करना, वस्त्र पहनाना, बाल संवारना आदि कार्य उसे ही करने पड़ते हैं।

3. रोगी का भोजन–परिचारिका पाक कला में भी दक्ष होनी चाहिए क्योंकि रोगी के भोजन व पथ्य की व्यवस्था भी उसे ही करनी होती है।

4. संक्रामक रोगों से सुरक्षा–यदि रोगी किसी संक्रामक रोग से पीड़ित है तो परिचारिका को चाहिए कि वह रोग को फैलाने से रोकने का प्रबंध करे। रोगी के बर्तन, वस्त्र आदि को विसंक्रामक घोल से धोएं।

5. रोगी का विवरण–उसे रोगी की प्रत्येक अवस्था का पूर्ण विवरण तैयार करना पड़ता है। जैसे–दवा देने का समय, दवा की मात्रा आदि।

6. आदेशों का पालन–परिचारिका को डॉक्टर द्वारा दिये गये निर्देशों का पूर्ण सत्यनिष्ठ एवं ईमानदारी से पालन करना चाहिये एवं डॉक्टर को पूर्ण रूप से रोगी के विषय में अवगत कराना चाहिये।

7. प्रेरणादायी–रोगी को हताश नहीं होने देना चाहिये तथा उसके दु:ख एवं घबराहट को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

उपर्युक्त कार्य करते हुए परिचारिका को अपने स्वास्थ्य पर भी ध्यान देना अति आवश्यक है। रोगी का कोई भी कार्य करने के उपरांत हाथ साबुन या डिटॉल से धोने चाहिए। परिचारिका को हल्के एवं आरामदायक वस्त्र पहनने चाहिए एवं प्रसन्न व चुस्त रहने के लिए पर्याप्त नींद लेनी चाहिए। इस प्रकार हमने देखा कि उचित गृह परिचर्या होने पर रोगी अतिशीघ्र स्वास्थ्य लाभ पाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. रोग दूर करने हेतु रोगी को घर पर ही दी जाने वाली हर प्रकार की सुविधा व देखभाल को गृह परिचर्या कहते हैं।
2. रोग-निदान हेतु जितना महत्त्व चिकित्सा का है, उतना ही अच्छी गृह परिचर्या का होता है।
3. परिचारिका स्वयं स्वस्थ, तीक्ष्ण बुद्धि, हंसमुख, सेवाभावी एवं ज्ञानयुक्त होनी चाहिए।
4. परिचारिका चिकित्सक तथा रोगी के बीच कड़ी के रूप में कार्य करती है।
5. परिचारिका को रोगी के कक्ष, वस्त्र, बर्तन आदि की स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें।

(i) गृह परिचारिका के कार्य हैं–

(अ) रोगी को स्नान कराना

(ब) रोगी को समय पर दवा देना

(स) रोगी की समस्त जानकारी चिकित्सक को देना

(द) उपरोक्त सभी

(ii) गृह परिचारिका का कार्य कुशलतापूर्वक कर सकते हैं–

(अ) स्त्री (ब) पुरुष

(स) बच्चे (द) कोई भी

(iii) गृह परिचारिका को नहीं होना चाहिए।

(अ) आज्ञाकारी (ब) मधुरभाषी

(स) सुस्त (द) हंसमुख

(iv) परिचारिका का कार्य नहीं है।

(अ) शारीरिक सफाई करना

(ब) खाने-पीने की व्यवस्था करना

(स) कमरे की व्यवस्था करना

(द) चिकित्सा करना

(v) परिचारिका को आदेश का पालन करना पड़ता है।

(अ) डॉक्टर के (ब) रोगी के

(स) गृह स्वामी के (द) सभी के

2. गृह परिचर्या का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
3. परिचारिका को मनोविज्ञान का ज्ञान होना क्यों आवश्यक है?
4. परिचारिका को रोगी व चिकित्सक के बीच की कड़ी क्यों कहा जाता है?
5. परिचारिका के कोई चार गुण बताइये।
6. एक कुशल परिचारिका के क्या-क्या कर्तव्य होते हैं? उल्लेख कीजिये।

उत्तरमाला :

(i) द (ii) द (iii) स (iv) द (v) अ

इकाई-VI : वर्तमान जीवनशैली एवं योग

अध्याय 30

योग का महत्त्व

योग भारत की प्राचीन संस्कृति का गौरवमयी हिस्सा है, जिसकी वजह से भारत सदियों तक विश्वगुरु रहा है। योग एक ऐसी सुलभ एवं प्राकृतिक पद्धति है, जिससे स्वस्थ मन एवं शरीर के साथ अनेकानेक आध्यात्मिक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

योग शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु से बना है जिसका अर्थ है जोड़ना; यानी शरीर, मन और आत्मा को एक सूत्र में जोड़ना। योग के मुख्य ग्रन्थ पतंजलि योग दर्शन में योग के बारे में कहा गया है–

'योगस्य चित्तवृत्ति निरोधः।'

यानी मन की वृत्तियों पर नियंत्रण करना ही योग है।

योग के बारे में गीता में कहा गया है–'योगः कर्मसु कौशलम्'। यानी कर्मों में कौशल या दक्षता ही योग है।

आज की तेज रफ्तार जिन्दगी में अनेक ऐसे क्षण आते हैं जो हमारी रफ्तार में ठहराव लाते हैं। हमारे आस-पास ऐसे अनेक कारण विद्यमान हैं जो तनाव, थकान तथा चिड़चिड़ेपन को जन्म देते हैं जिससे हमारी जिन्दगी अस्त-व्यस्त हो जाती है। ऐसे में जिंदगी को स्वस्थ तथा ऊर्जावान बनाये रखने के लिये योग एक ऐसी रामबाण दवा है जो, मस्तिष्क को ठंडा तथा शरीर को निरोग रखता है। योग से जीवन की गति को एक संगीतमय रफ्तार मिल जाती है।

योग द्वारा रक्त परिसंचरण सामान्य गति से होने लगता है और शरीर विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि शरीर के संकोचन व विमोचन होने से नई ऊर्जा का विकास होता है तथा विभिन्न रोगों से छुटकारा प्राप्त होता है। विभिन्न योगासनों से यह प्रक्रिया साध्य हो जाती है। आसन व प्राणायामों के द्वारा शरीर निरोग रहता है। योग द्वारा पाचनतंत्र स्वस्थ हो जाता है जिससे सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ व स्फूर्तिदायक बन जाता है। श्वसन क्रिया के दौरान फेफड़ों में स्वच्छ वायु का प्रवेश होता है जिससे फेफड़े स्वस्थ होते हैं। यौगिक क्रियाओं के माध्यम से शरीर स्वस्थ, सुन्दर व सुडौल बनता है। योगासनों के द्वारा वृक्क उत्सर्जन का काम सामान्यतः करने लगते हैं। जिससे अपशिष्ट पदार्थ शरीर से बाहर निकल जाते हैं और शरीर को कई बीमारियों से बचाते हैं।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ अनेक मनुष्य निर्मित समस्याएं उभर कर सामने आई हैं। मानसिक अस्वस्थता के मूल में मुख्यतः मनुष्य की अपनी अभिवृत्तियाँ तथा मूल्य हैं जो भौतिकता से ग्रस्त हैं। परिणामस्वरूप जीवन के हर क्षेत्र में स्पर्धा भाव, अधिकार शक्ति के प्रति आसक्ति तथा धन प्राप्ति के लिये अंधाधुंध दौड़ दिखाई पड़ रही है। मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति में यौगिक क्रियाओं का योगदान है। योगाभ्यास के कारण परानुकंपी नाड़ी मंडल का प्रचोदन होता है। फलस्वरूप आत्म परीक्षण की भावना, विरोध, आन्तरिक अनुभव, चित्त शान्ति, आत्म समाधान और आत्मवर्धन की भावना आदि का अनुभव होता है। योगाभ्यास से स्वयं शासित नाड़ी संस्थान, श्वसन प्रणाली, अंतःस्रावी ग्रंथियों, सुषुम्ना काण्ड और पाचन अवयवों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार प्राप्त हुए भावना सन्तुलन के कारण ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, भय इत्यादि विकारों पर अपने आप नियंत्रण होने लगता है।

अध्याय 31

योग का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

1.योग का प्रयोग शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक लाभों के लिये हमेशा से होता रहा है। आज की चिकित्सा शोधों ने ये साबित कर दिया है कि योग शारीरिक और मानसिक रूप से मानव के लिए वरदान है।

2. जहाँ जिम आदि से शरीर के किसी खास अंग का ही व्यायाम होता है वहीं योग से शरीर के समस्त अंग-प्रत्यंग ग्रंथियों का व्यायाम होता है, जिससे अंग-प्रत्यंग सुचारु रूप से कार्य करने लगते हैं।
3. योग से प्रतिरक्षा तंत्र प्रणाली की कार्यक्षमता बढ़ जाती है जिससे रोगों से लड़ने की शक्ति बढ़ती है। बुढ़ापे में भी जवान बने रह सकते हैं। त्वचा पर चमक आती है। शरीर स्वस्थ, निरोग और बलवान बनता है।
4. जहाँ एक तरफ योगासन मांसपेशियों को पुष्टता प्रदान करते हैं जिससे दुबला-पतला व्यक्ति भी ताकतवर और बलवान बन जाता है वहीं दूसरी ओर योग के नित्य अभ्यास से शरीर में जमा वसा कम हो जाती है। इस तरह योग कृष और स्थूल, दोनों के लिए फायदेमंद है।
5. योगासनों के नित्य अभ्यास से मांसपेशियों का अच्छा व्यायाम होता है जिससे तनाव दूर होकर अच्छी नींद आती है, भूख अच्छी लगती है, पाचन सही रहता है।
6. योग के अंग, प्राणायाम एवं ध्यान भी योगासनों की तरह शरीर के लिए बहुत फायदेमंद हैं। प्राणायाम के द्वारा श्वास-प्रश्वास की गति पर नियंत्रण होता है जिससे श्वसन संस्थान सम्बन्धित रोगों में बहुत फायदा मिलता है। दमा, एलर्जी, साइनोसाइटिस, पुराना नजला, जुकाम आदि रोगों में तो प्राणायाम बहुत फायदेमंद है ही साथ ही इससे फेफड़ों की ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है जिससे शरीर की कोशिकाओं को ज्यादा ऑक्सीजन मिलने लगती है जिसका पूरे शरीर पर सकारात्मक असर पड़ता है।
7. ध्यान भी योग का अति महत्त्वपूर्ण अंग है। आजकल ध्यान यानी मेडिटेशन का प्रचार हमारे देश से भी ज्यादा विदेशों में हो रहा है। आज की भौतिकतावादी संस्कृति में दिन-रात की भाग-दौड़, काम का दबाव, रिश्तों में अविश्वास आदि के कारण तनाव बहुत बढ़ गया है। ऐसी स्थिति में ध्यान लगाने से बेहतर और कुछ नहीं है। ध्यान से मानसिक तनाव दूर होकर गहन आत्मिक शान्ति महसूस होती है, कार्यशक्ति बढ़ती है, नींद अच्छी आती है। मन की एकाग्रता एवं धारणा शक्ति बढ़ती है।
8. योग से रक्तशर्करा का स्तर घटता है और ये एल.डी.एल. या बैड कोलेस्ट्रोल को भी कम करता है। डायबिटीज रोगियों के लिए योग बेहद फायदेमन्द है।
9. कुछ योगासनों और मेडिटेशन के द्वारा आर्थराइटिस, पीठ दर्द आदि में काफी सुधार होता है और दवा की जरूरत कम होती जाती है।
10. योग शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है और दवाओं पर आपकी निर्भरता को घटाता है। बहुत से अध्ययनों में साबित हो चुका है कि अस्थमा, हाई ब्लड प्रैशर, टाइप-2 डाइबिटीज के मरीज योग द्वारा पूर्ण रूप से स्वस्थ हो चुके हैं।
11. योग से व्यक्ति के अन्तर्मन के अवसाद खत्म होते हैं जिससे आपराधिक मानसिकता में कमी होने लगती है।

संक्षेप में कहें तो योग केवल शारीरिक व्यायाम करने या रोगों को दूर करने वाली क्रिया नहीं है बल्कि जीवन को बेहतर बनाने वाली एक जीवन पद्धति है। योग को विश्व में फैलाने के लिए 21 जून को अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है।

अध्याय 32

महत्त्वपूर्ण योगासन

योग एक प्राचीन भारतीय जीवन पद्धति है जिसमें शरीर, मन और आत्मा को एक साथ लाने (योग) का काम होता है। योगासनों का सबसे बड़ा गुण यह है कि वे सहज साध्य और सर्व सुलभ हैं। योगासन एक ऐसी व्यायाम पद्धति है जिसमें न तो कुछ विशेष व्यय होता है और न इतनी साधन-सामग्री की आवश्यकता होती है। योगासन अमीर-गरीब, बूढ़े, जवान, सबल-निर्बल, स्त्री-पुरुष कर सकते हैं। आसनों से जहाँ मांसपेशियों को तानने, सिकोड़ने और ऐंठने वाली क्रियाएँ करनी पड़ती हैं, वहीं दूसरी ओर साथ-साथ तनाव-खिंचाव दूर करने वाली क्रियाएँ भी होती रहती हैं, जिससे शरीर की थकान मिट जाती है और आसनों से व्यय शक्ति वापस मिल जाती है। शरीर और मन को तरोताजा करने, उनकी खोई हुई शक्ति की पूर्ति कर देने और आध्यात्मिक लाभ की दृष्टि से भी योगासनों का अपना अलग महत्त्व है। शरीर का बाह्य रूप से ही नहीं भीतरी रूप से भी ठोस होना मौजूदा जीवनशैली की जरूरत है, ऐसे में सिर्फ खान-पान पर आश्रित रहना सही नहीं है, वरन् कुछ महत्त्वपूर्ण योगासनों की मदद ले सकते हैं।

1. सूर्य नमस्कार

योगासनों में सबसे असरकारी और लाभदायक सूर्य नमस्कार है। योगासन एवं प्राणायाम के लिये सूर्य नमस्कार एक आरम्भिक कड़ी की तरह है। इसमें सभी आसनों का सार छिपा है।

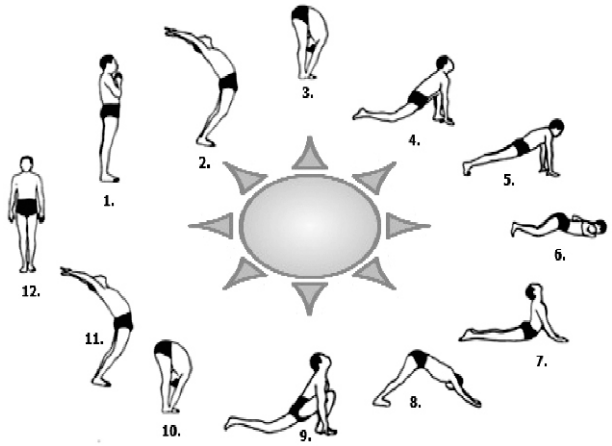

चित्र : 32.1 : **सूर्य नमस्कार के 12 चरण**

लाभ :

- सूर्य नमस्कार एक सम्पूर्ण व्यायाम है। इससे शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग बलिष्ठ एवं निरोग होते हैं।
- उदर, आंत्र, आमाशय, अग्न्याशय, हृदय एवं फेफड़ों को स्वस्थ व मजबूत करता है।
- मेरुदण्ड एवं कमर को लचीला बनाकर बीमारियों से छुटकारा मिलता है।
- सम्पूर्ण शरीर में रक्त सुचारु रूप से संचालित करता है। रक्तचाप नियंत्रण में होता है।
- मानसिक शक्ति प्रदान करता है।
- सूर्य नमस्कार से विटामिन 'डी' मिलता है, जिससे हड्डियाँ मजबूत बनती हैं।
- सूर्य नमस्कार करने से आँखों की रोशनी बढ़ती है।
- मोटापा कम करने में सहायक होता है।

सूर्य नमस्कार कैसे करें–

सूर्य नमस्कार के 12 चरण (चित्र 32.1) हैं।

1. सावधान की मुद्रा में खड़े होकर दोनों हाथों को कंधे के बराबर में उठाते हुए ऊपर की ओर ले जायें। हाथों के अग्र भाग को एक-दूसरे से चिपका लीजिये फिर हाथों को उसी स्थिति में सामने की ओर लाकर नीचे की ओर गोल घूमते हुए नमस्कार की मुद्रा में खड़े हो जायें।
2. सांस लेते हुए दोनों हाथों को कानों से सटाते हुए ऊपर की ओर खींचें तथा कमर से पीछे की ओर झुकते हुए भुजाओं और गर्दन को भी पीछे की ओर झुकाइये, यह अर्धचक्रासन की स्थिति मानी जाती है। यह पूरी प्रक्रिया श्वास लेते हुए सम्पन्न होती है।
3. सांस को धीरे-धीरे बाहर निकालते हुए आगे की ओर झुकिए। हाथ को गर्दन के साथ, कानों से सटे हुए नीचे जाकर घुटनों को सीधा रखते हुए पैर के दाएं-बाएं जमीन को छुएं। कुछ समय तक इसी स्थिति में रुकिए। इस स्थिति को पाद पश्चिमोत्तानासन या पाद हस्तासन भी कहते हैं।

4. इसी स्थिति में हाथों को जमीन पर टिकाकर सांस लेते हुए दाहिने पैर को पीछे की तरफ ले जायें। उसके बाद सीने को आगे खींचते हुए गर्दन को ऊपर उठाएँ। इस मुद्रा में पैर का पंजा खड़ा हुआ रहना चाहिए।
5. सांस को धीरे-धीरे बाहर निकालते हुए बाएँ पैर को भी पीछे की तरफ ले जाइए। अब दोनों पैरों की एड़ियाँ आपस में मिली हों। शरीर को पीछे की ओर खिंचाव दीजिए और एड़ियों को जमीन पर मिलाकर गर्दन को झुकाइए।
6. सांस लेते हुए हाथों एवं पैरों के पंजों को स्थिर रखते हुए, छाती एवं घुटनों को जमीन पर स्पर्श करें। इस प्रकार दो हाथ, दो पैर, दो घुटने, छाती एवं सिर इन आठों अंगों के जमीन पर टिकने से यह साष्टांगासन है। जाँघों को थोड़ा ऊपर उठाते हुए सांस को छोड़ें।
7. इस स्थिति में धीरे-धीरे सांस को भरते हुए सीने को आगे की ओर खींचते हुए हाथों को सीधा कीजिए। गर्दन को पीछे की ओर ले जाएँ। घुटने जमीन को छू रहे हों तथा पैरों के पंजे खड़े रहें। इसे भुजंगासन भी कहते हैं।
8. पाँचवीं स्थिति जैसी मुद्रा बनाएँ उसके बाद इसमें ठोड़ी को कण्ठ से टिकाते हुए पैरों के पंजे को देखते हैं।
9. इस स्थिति में चौथी स्थिति जैसी मुद्रा बनाएँ उसके बाद बाएँ पैर को पीछे ले जाएँ, दाहिने पैर को आगे ले आएँ।
10. तीसरी स्थिति जैसी मुद्रा बनाएँ उसके बाद बाएँ पैर को भी आगे लाते हुए पश्चिमोत्तानासन की स्थिति में आ जाएँ।
11. दूसरी मुद्रा में रहते हुए सांस भरते हुए दोनों हाथों को ऊपर ले जाएँ। उस स्थिति में हाथों को पीछे की ओर ले जाएँ साथ ही गर्दन तथा कमर को भी पीछे की ओर झुकाएँ।
12. यह स्थिति पहली मुद्रा की तरह है अर्थात् नमस्कार की मुद्रा।

2. त्रिकोणासन

त्रि का अर्थ तीन होता है। अर्थात् इस आसन के नाम का आशय तीन कोणों से है। इस आसन की मुख्य मुद्रा में शरीर एक त्रिकोण की तरह दिखता है। (चित्र 32.2)

लाभ

— त्रिकोणासन मांसपेशियों को मजबूती प्रदान करता है।
— त्रिकोणासन कब्ज के रोगियों के लिये लाभदायक है।
— त्रिकोणासन कमर और कूल्हे की चर्बी को कम करने में सहायक है।
— त्रिकोणासन पाचन शक्ति बढ़ाने में भी मददगार है।

त्रिकोणासन कैसे करें–

1. दोनों पैरों के बीच औसतन एक मीटर की दूरी रखते हुए सीधे खड़े हो जायें। दोनों हाथ पैरों के समानांतर फैलायें।

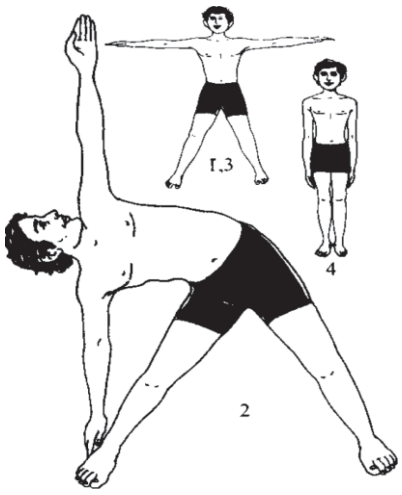

चित्र : 32.2 : **त्रिकोणासन की विधि**

2. अब दाएँ पैर के पंजे को दाएँ हाथ से छूने की कोशिश करें और बायाँ हाथ आसमान की ओर हो ताकि 90 डिग्री का कोण बने। यह मुद्रा इस आसन की मुख्य मुद्रा है।
3. 15 से 20 सेकण्ड बाद सीधे हो जाएं। यही विधि बाएँ हाथ और बाएँ पैर से पुनः करें।

मुख्य बिन्दु :

घुटने और कुहनियों को किसी भी अवस्था में न मोड़ें। झुकने के क्रम में आगे की ओर नहीं मुड़ा जाता है।

अपने दायीं या बायीं ओर मुड़ने के समय श्वास छोड़ें तथा वापस आने के साथ श्वास अन्दर लें। आसन की मुख्य मुद्रा में श्वास गति सामान्य होती है।

3. पद्मासन :

संस्कृत शब्द पद्म का अर्थ होता है कमल। इसलिये पद्मासन को कमलासन भी कहते हैं। ध्यानमुद्रा के लिये यह आसन महत्त्वपूर्ण है।

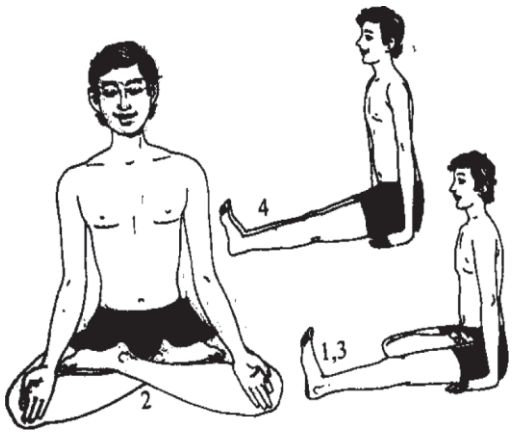

चित्र : 32.3 : **पद्मासन की विधि**

इससे चित्त एकाग्र होता है। चित्त की एकाग्रता से धारणा सिद्ध होती है। (चित्र 32.3)

लाभ :

— पद्मासन से पैरों का रक्तसंचार कम हो जाता है और रक्त अन्य अंगों की ओर संचालित होने लगता है, जिससे उनमें क्रियाशीलता बढ़ती है।

— तनाव हटाकर चित्त को एकाग्र कर सकारात्मक ऊर्जा को बढ़ाता है।

— छाती और पैर मजबूत बनते हैं।

— नियमित अभ्यास से पेट कभी बाहर नहीं निकलता।

पद्मासन कैसे करें–

1. दोनों पैरों को सीधा कर दंडासन की स्थिति में भूमि पर बैठ जायें।
2. दाहिने पैर के अंगूठे को बाएँ हाथ से पकड़कर घुटने मोड़ते हुए दाहिने पैर के पंजे को बाईं जांघ के मूल पर रखें।
3. बाएं पैर के अंगूठे को दाहिने हाथ से पकड़कर घुटने मोड़ते हुए बाएं पैर के पंजे को दाहिनी जांघ के मूल पर रखें।
4. दोनों घुटने भूमि पर टिके हों और पैर के तलवे आकाश की ओर हों। रीढ़, गला व सिर सीधी रेखा में रखें।
5. हथेलियों को घुटनों पर रखें या एक हथेली को दूसरी पर रखकर गोद में रखिए। आँखें बन्द कर सांसों को गहरा खींचते हुए सामान्य गति कर लें।
6. आसन से वापस लौटने के लिए पहले बाएं पैर के पंजे को दाहिने हाथ से पकड़कर लम्बा कर दें। फिर दाहिने पैर के पंजे को बाएं हाथ से पकड़कर लंबा कर दें और पुन: दंडासन की स्थिति में आ जाएं। यह एक ओर से किया गया आसन है जब आप पहले बाएं पैर को जंघा पर रखकर इन आसन को करें।

4. मकरासन

मकरासन की गिनती पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसनों में होती है। इस आसन की अंतिम अवस्था में शरीर की आकृति मगर की तरह प्रतीत होती है। इससे सांस की गति की रुकावट समाप्त होकर शान्ति महसूस होती है। (चित्र 32.4)

लाभ

— मकरासन से समस्त मांसपेशियों को आराम मिलता है।

— शरीर में रक्तप्रवाह सुचारु रूप से होने लगता है जिससे व्यक्ति स्वस्थ व निरोगी रहता है।

— इस आसन से आँतों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है जिससे कब्ज दूर होती है।

— मकरासन से फेफड़े फैलते हैं जिससे प्राणवायु अधिक मात्रा में अन्दर जाती है इसलिये इससे दमा रोग निवारण में भी सहायता मिलती है।

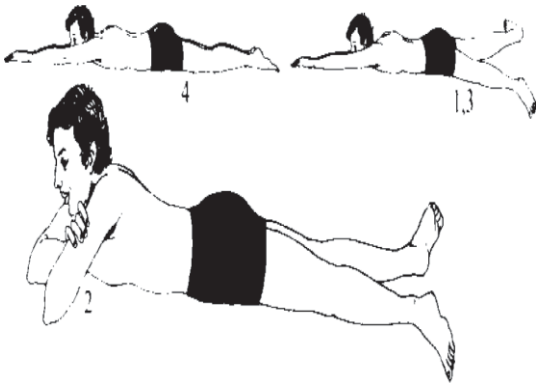

चित्र : 32.4 : **मकरासन की विधि**

मकरासन कैसे करें–

1. पेट के बल लेटकर दोनों पैरों को सुविधानुसार अच्छी तरह से फैला लें। पैरों के अंगूठे बाहर की ओर जमीन पर होते हैं तथा एडियाँ अंदर की तरफ होती हैं।
2. दायें हाथ को मोड़कर दायीं हथेली को बायें कंधे पर रखें तथा बायीं हथेली को दाहिने कंधे पर रखें। वक्ष को थोड़ा उठा लें ताकि श्वसन प्रक्रिया में असुविधा न हो। ठुड्डी वक्ष के सम्मुख बने दोनों हाथों के कटान पर टिक जाती है।
3. बायें हाथ की हथेली को दाहिने कंधे से हटाकर सीधा सिर के ऊपर आगे की ओर फैला दें फिर दाहिनी हथेली को बायें कंधे से हटाकर पहली मुद्रा में आ जायें।
4. दोनों पैरों को धीरे-धीरे समेट कर मूल स्थिति में आ जायें।

5. वक्रासन–

वक्रासन बैठकर करने वाले आसनों के अंतर्गत आता है। वक्र संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ होता है टेढ़ा, लेकिन इस आसन को करने से मेरुदण्ड सीधा होता है, लेकिन शरीर पूरा टेढ़ा ही हो जाता है। (चित्र 32.5)

लाभ

— इस आसन के अभ्यास से यकृत, वृक्क व अग्न्याशय प्रभावित होते हैं जिससे यह अंग निरोगी रहते हैं।

— स्पाइनल कॉर्ड मजबूत होती है।

— हर्निया के रोगी भी इस आसन से लाभान्वित होते हैं।

वक्रासन कैसे करें–

1. दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठ जाते हैं। दोनों हाथ बगल में रखते हैं। कमर सीधी व निगाहें सामने की ओर रखें। दाएँ पैर को घुटने से मोड़कर लाते हैं और ठीक बाएँ पैर के घुटने की सीध में रखते हैं।

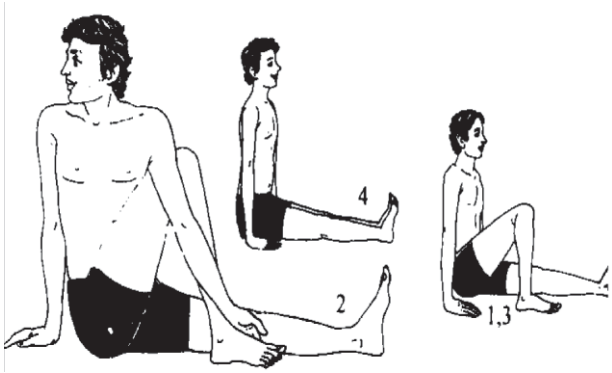

चित्र : 32.5 : **वक्रासन की विधि**

2. शरीर को थोड़ा दाहिनी ओर दबाते हुए बायें हाथ से उठाकर श्वास छोड़ते हुए दाहिने घुटने के बाहर से घुमाकर दाहिने पैर के अंगूठे के पास ले आयें तथा उसे बायीं अंगुली से पकड़ लें। इसके बाद दाहिने हाथ को पीठ के पीछे करके दाहिनी हथेली को धरती पर रखें और रीढ़ में आवश्यक घुमाव देकर दाहिने कंधे के ऊपर से पीछे की ओर देखें।
3. श्वास लेते हुए बायें हाथ को उठाकर फिर से बायीं जांघ के बगल में धरती पर रखें।
4. दाहिने पैर को सीधा करके बायें पैर के साथ रखें तथा वापस सामान्य स्थिति में आ जायें।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. योग एक सुलभ एवं प्राकृतिक पद्धति है, जिससे स्वस्थ मन एवं शरीर के साथ अनेकानेक आध्यात्मिक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।
2. योग शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु से बना है जिसका अर्थ है जोड़ना।
3. शरीर, मन और आत्मा को एक सूत्र में जोड़ना ही योग कहलाता है।
4. योग के मध्य ग्रन्थ पतंजलि योग दर्शन में योग के बारे में कहा गया है कि मन की वृत्तियों पर नियंत्रण करना ही योग है।
5. जिंदगी को स्वस्थ बनाये रखने के लिये योग एक ऐसी प्रवृत्ति है जो शरीर को निरोग रखती है।
6. यौगिक क्रियाओं के माध्यम से शरीर स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल बनता है।
7. योग से प्रतिरक्षा तंत्र प्रणाली की कार्यक्षमता बढ़ जाती है, जिससे रोगों से लड़ने की क्षमता बढ़ती है।
8. योग से मानसिक तनाव दूर होकर गहन आत्मिक शांति महसूस होती है।
9. योग को विश्व में फैलाने के लिये 21 जून को अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है।
10. योगासनों में सबसे असरकारी और लाभदायक सूर्य नमस्कार है। यह एक आरम्भिक कड़ी की तरह है इसमें सभी आसनों का सार दिया गया है।
11. सूर्य नमस्कार के 12 चरण हैं।
12. त्रिकोणासन की मुख्य मुद्रा में शरीर एक त्रिकोण की तरह दिखता है।
13. ध्यान मुद्रा के लिये पद्मासन महत्त्वपूर्ण है।
14. मकरासन पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसनों में आता है। इस आसन की अंतिम अवस्था में शरीर की आकृति मगर की तरह प्रतीत होती है।
15. वक्रासन करने से मेरुदण्ड सीधा होता है, लेकिन शरीर पूरा टेढ़ा हो जाता है।
16. योग केवल शारीरिक व्यायाम करने या रोगों को दूर करने वाली क्रिया नहीं है, बल्कि जीवन को बेहतर बनाने वाली एक जीवन पद्धति है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. योग शब्द से क्या मतलब है?
2. आज की वर्तमान जीवनशैली में योग का क्या महत्त्व है?
3. शारीरिक स्वास्थ्य पर योग के प्रभाव बताइये।
4. योग का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव बताइये।
5. सूर्य नमस्कार के लाभ बताइये।
6. त्रिकोणासन की विधि बताइये।
7. मकरासन के लाभ बताइये।
8. वक्रासन की उपयोगिता बताइये।
9. पद्मासन के लाभ बताइये।
10. पद्मासन की विधि बताइये।
11. सूर्य नमस्कार कितने चरणों में पूरा होता है।

प्रायोगिक

इकाई-II : मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध

अध्याय 1

टीकाकरण सूची

राष्ट्रीय प्रतिरक्षण सूची (National Immunization Schedule)

टीके का नाम	कब देना है (उम्र)
बी.सी.जी.	जन्म के समय/एक साल की उम्र के भीतर
हिपेटाइटिस-बी (Birth Dose)	जन्म के समय/जन्म से 24 घंटे के भीतर
पोलियो खुराक (O Dose) (OPV) (Oral Polio Vaccine)	जन्म के समय/जन्म से 15 दिन के भीतर
पोलियो खुराक-(OPV) क्रमश: I, II, III	$1\frac{1}{2}$ माह, $2\frac{1}{2}$ माह, $3\frac{1}{2}$ माह
डी.पी.टी.-(OPV) क्रमश: I, II, III	$1\frac{1}{2}$ माह, $2\frac{1}{2}$ माह, $3\frac{1}{2}$ माह
मीजल्स-I	9-12 माह की उम्र के मध्य
विटामिन-ए (I डोज)	9-12 माह की उम्र के मध्य
डी.पी.टी. बूस्टर-I	16-24 माह की उम्र के मध्य
पोलियो खुराक बूस्टर (OPV)	16-24 माह की उम्र के मध्य
मीजल्स-II	16-24 माह की उम्र के मध्य
विटामिन-ए (II से IX डोज)	प्रथम डोज के हर छ: माह की अवधि में एक डोज, पाँच वर्ष की आयु तक
डी.पी.टी. बूस्टर-II	5-6वर्ष की उम्र के मध्य
गर्भवती महिला (16-34 सप्ताह)	TT-I या बूस्टर इंजेक्शन
TT-I के एक माह बाद	TT-2 (गर्भवती को यदि पिछले 3 वर्षों में 2 टीके लगे हों, तो केवल एक बूस्टर टीका ही पर्याप्त है।)

नोट : 1. दो खुराकों के बीच कम से कम एक माह का अंतर होना चाहिए।

अध्याय 2

कामकाजी महिला के लिये साक्षात्कार तथा क्रेश, बालवाड़ी, आँगनवाड़ी व नर्सरी स्कूल का भ्रमण एवं रिपोर्ट प्रस्तुत करना

1. नाम : .....
2. आयु : .....
3. जाति : .....
4. शैक्षणिक योग्यता : .....
5. विवाहित : हाँ / नहीं

   यदि हाँ तो बच्चों की संख्या : .....
6. परिवार का प्रकार–

   — एकल परिवार — संयुक्त परिवार
7. रहने का क्षेत्र–

   — ग्रामीण क्षेत्र — शहरी क्षेत्र
8. व्यवसाय–

   — सरकारी — प्राइवेट — स्वरोजगार — अन्य
9. कार्य करने का क्षेत्र–

   — ग्रामीण — शहरी
10. घर से कार्यक्षेत्र की दूरी : .....
11. घर से कार्यक्षेत्र तक जाने का साधन : .....
12. कार्य करने की समयावधि : .....
13. कार्यक्षेत्र में कार्यरत होने का अनुभव कितने वर्ष का है?

    — दो वर्ष से कम — दो वर्ष — दो वर्ष से ज्यादा
14. मासिक वेतन : .....
15. अपनी मासिक आय को कहाँ खर्च करती हैं :

    — बचत — बच्चों की शिक्षा — अन्य
16. क्या आप अपनी नौकरी या कार्य से सन्तुष्ट हैं?

    हाँ / नहीं
17. नौकरी या कार्य करने के बाद बाकी बचे समय का कहाँ उपयोग करती हैं?

    — घर के कार्य में — अन्य कार्य
18. क्या आप किसी प्रशिक्षण या अन्य किसी कार्यक्रमों में भाग लेती है?

    हाँ / नहीं
19. क्या आपको अपने कार्यक्षेत्र में कभी पुरस्कार मिला है?

    हाँ / नहीं
20. क्या आपने अपने स्तर पर कभी कोई प्रशिक्षण कार्य करवाया है?

    हाँ / नहीं
21. पारिवारिक मामलों में आपकी राय ली जाती है?

    हाँ / नहीं

    यहि हाँ तो कौनसे निर्णयों में आपकी ज्यादा भागीदारी होती है?

उद्देश्य :

i. बालकों को प्रस्तावित सेवाओं का निर्देशन करवाकर छात्रों में उन सेवाओं की सीमा का विस्तार करना।

ii. छात्रों की सहायता करना ताकि वे बालकों की शिक्षा व सेवा का सैद्धान्तिक पक्ष जान सकें व उन्हें समझ सकें।

iii. छात्रों में कौशल उत्पन्न करना ताकि छात्र, बालकों को दी जाने वाली सेवाओं का मूल्यांकन कर सके।

प्रक्रिया :

छात्र, बालकों को कल्याणकारी सेवाएँ प्रदान करने वाले संस्थानों का निर्देशन कर सूचना हेतु प्रश्नावली भरें।

तालिका : 2.1

क्र.सं.	प्रश्न	उत्तर
1.	संस्था का नाम	
2.	संस्था का पता	
3.	भ्रमण की दिनांक	
4.	मुख्य का नाम	
5.	मुख्य की योग्यताएँ	
6.	अनुभव	
7.	प्रशिक्षण लिया गया	
8.	फोन नं.	
9.	सलाहकार	
10.	संस्था का समय	
11.	संस्था	
	(a) सरकारी	
	(b) अर्द्ध सरकारी	
	(c) निजी	
12.	कुल मुद्रा	
13.		
	(a) सरकार (b) संस्था	
	(c) संगठन (d) कर्मचारी	
	(e) अन्य	
14.	सेवाओं के प्रकार–	
	(a) शैक्षिक (b) प्रायोगिक	
	(c) निजी और सामाजिक	
	(d) अन्य (e) उपर्युक्त सभी	
15.	केन्द्र के उद्देश्य	
	बच्चों की उम्र सीमा	
	आयु के आधार पर बच्चों	
	की संख्या	
16.	फ्लो चार्ट	

17. कर्मचारी की योग्यताएँ

क्र.सं.	नाम	पद	योग्यता	उम्र	अनुभव	वेतन	स्थायी/अस्थायी

18. कर्मचारी के पद पर चयन हेतु तरीके
    (a) व्यक्तिगत साक्षात्कार
    (b) अनुभव
    (c) योग्यता
    (d) प्रशिक्षण
    (e) अन्य
19. क्या कर्मचारी अपने वेतन से सन्तुष्ट है? हाँ/ना
20. क्या कर्मचारियों का आपस में संयोजन है? हाँ/ना
21. नौकरी से कर्मचारी सन्तुष्ट है? हाँ/ना
22. फर्नीचर
    (a) पर्याप्त
    (b) अपर्याप्त
23. खुला स्थान है, यदि है तो कितना–
24. अलग-अलग कमरे–
    (1) सलाह के लिए हाँ/ना
    (2) कर्मचारी हाँ/ना
    (3) ग्राहक हाँ/ना
    (4) विश्राम कमरा हाँ/ना
    (5) अन्य उद्देश्य हाँ/ना
25. शौचालय व्यवस्था हाँ/ना
26. शुद्ध पानी सुविधा हाँ/ना
27. क्या कमरे, रोशनदान व प्रकाश युक्त हैं? हाँ/ना
28. क्या यहाँ पुस्तकालय सुविधा है? हाँ/ना
29. केन्द्र का स्थान–
    (i) आसान पहुँच
    (ii) ऊबड़-खाबड़ क्षेत्र
    (iii) अन्य

30. क्या यहाँ ग्राहक के लिए निजी प्रावधान है? हाँ/ना

31. आपके केन्द्र में सलाह प्रक्रिया के चरण क्या हैं? हाँ/ना

32. समस्या समाधान की विधि

33. आप किस तरह के दस्तावेज और रजिस्टर बनाते हैं?

34. बजट का प्रयोग किस तरह से करते हैं?

35. विभिन्न विकासात्मक कार्यक्षेत्र को बढ़ाने के लिए क्रियात्मक कार्यप्रणाली–

1. शारीरिक कार्यक्षेत्र, 2. गत्यात्मक कार्यक्षेत्र, 3. सामाजिक कार्यक्षेत्र, 4. संवेगात्मक कार्यक्षेत्र, 5. संज्ञानात्मक कार्यक्षेत्र, 6. भाषात्मक कार्यक्षेत्र, 7. सौन्दर्यात्मक कार्यक्षेत्र।

इस प्रश्नावली की सहायता से आप जिस कल्याणकारी संस्था का भ्रमण कर चुके हैं, उसके बारे में विवरण लिखिए और उसके सुधार के सुझाव दीजिए।

अध्याय 3

आस-पड़ोस के 1-5 व 6-10 वर्ष के बालकों का निरीक्षण करना तथा रिपोर्ट तैयार करना

भोजन, पोषण एवं स्वास्थ्य के मध्य गहरा अन्तर्सम्बन्ध है। आधुनिक जीवनशैली की तेज रफ्तार एवं भागदौड़ भरी जिन्दगी में सेहत का विषय बहुत पीछे रह गया है और नतीजा यह निकला कि आज हम युवावस्था में ही रक्तचाप, मधुमेह, हृदय रोग, मोटापा, गठिया, थॉयराइड जैसे रोगों से पीड़ित होने लगे हैं जो कि पहले प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था में होते थे। इसकी सबसे बड़ी वजह है खान-पान और रहन-सहन की गलत आदतें। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अच्छे स्वास्थ्य के लिए व्यक्ति का केवल बीमारी से मुक्त होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसका शारीरिक, मानसिक व सामाजिक स्वास्थ्य भी अच्छा होना जरूरी है।

स्वस्थ रहने सम्बन्धी नियमों का पालन करके जैसे सन्तुलित भोजन लेना, व्यायाम करना, पर्याप्त नींद लेना, तनाव मुक्त व नशे से दूर रहकर आप खुद भी स्वस्थ रह सकते हैं तथा परिवार को भी स्वस्थ रखते हुए अन्य लोगों को भी अच्छे स्वास्थ्य के लिये जागरूक कर सकते हैं। ताकि एक स्वस्थ एवं मजबूत समाज और देश का निर्माण हो सके।

इस प्रायोगिक अभ्यास में आप स्वास्थ्य के विभिन्न मानवमिति मापों का निरीक्षण करेंगे। सर्वप्रथम अध्यापक के मार्गदर्शन में लम्बाई व वजन नापना सीखें-

1. लम्बाई नापना :

सामान्यत: दो प्रकार से लम्बाई में नाप लिये जाते हैं जैसे पूरे शरीर की लम्बाई नापना व कुछ परिधियों की लम्बाई नापना जैसे सिर व छाती की। किसी भी व्यक्ति के शरीर की लम्बाई चार भागों से मिलकर बनती है, पैर, नितम्ब, धड़ व खोपड़ी। पोषणीय मानवमिति को जानने के लिए व्यक्ति की कुल लम्बाई नापना जरूरी है।

बालक व व्यस्क की लम्बाई नापना :

1. बालक या वयस्क जो आराम से सीधा खड़ा हो सकता है उसकी लम्बाई दीवार के सहारे खड़ा करके फाइबर ग्लास से बने फीते के द्वारा या स्थिर खड़े पैमाने द्वारा नापी जा सकती है। (चित्र नं. 3.1)
2. बालक या वयस्क जिसकी लम्बाई लेनी है उसके जूते व चप्पल उतरवाकर नंगे पैर समतल जमीन पर समतल दीवार पर या स्थिर पैमाने के सहारे सीधा खड़ा करें।
3. बालों की चोटी, जूड़ा, क्लिप या टोपी आदि लम्बाई लेने से पहले सिर पर से हटा देवें।

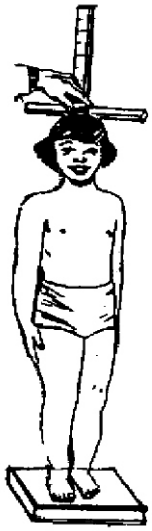

चित्र 3.1 : **स्थिर पैमाने द्वारा लम्बाई मापना**

4. लम्बाई लेते समय ध्यान रखें कि बालक या वयस्क कमर या सिर झुकाकर या एक पैर पर जोर देकर खड़ा नहीं हों।
5. व्यक्ति की एड़ियाँ, पीठ, कन्धे, कूल्हे व सिर दीवार या पैमाने को सीधे छूते हों।
6. एक हाथ की सहायता से सिर व चेहरे को सीधा रखें तथा दूसरे हाथ से स्थिर पैमाने का ऊपरी हिस्सा धीरे-धीरे नीचे लाकर सिर से छुआएँ व पैमाने पर अंकित लम्बाई से.मी. से पढ़कर लिख लें।
7. यदि दीवार के सहारे लम्बाई नाप रहे हों तो स्केल को सिर पर छुआते हुए स्केल की सीध में दीवार पर निशान बनायें। इसके पश्चात् लम्बाई को आँकने के लिए जमीन व निशान के बीच तक की दूरी से.मी. में नापें।

शिशु की लम्बाई नापना :

1. शिशु की लम्बाई जानने के लिए उसे समतल जमीन पर इस तरह लिटायें कि उसका सिर दीवार को छुए तथा पैर दूसरी तरफ हों। (चित्र 3.2)
2. धीरे से एक हाथ से सिर व मुँह को इस प्रकार स्थिर करें कि शिशु

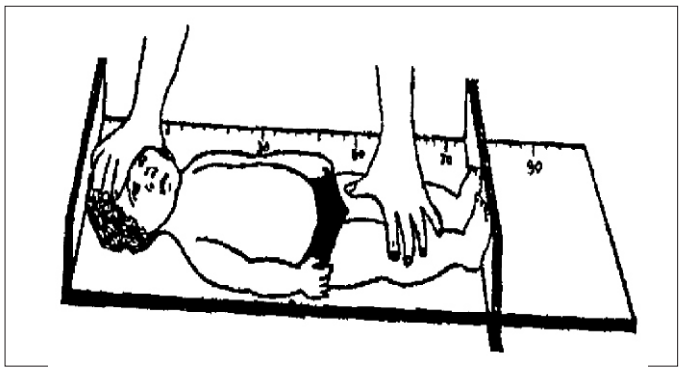

चित्र 3.2 : **शिशु की लम्बाई नापना**

की आँखें ऊपर छत की तरफ देखे।

3. एड़ी व तलुआ एक सीध में रखने के लिए एक हाथ से घुटनों को हल्का-सा दबा कर टाँगें सीधी कर पैरों को सीधा करें।
4. एक सख्त गत्ते को पैरों की एड़ी एवं तलुए से छुआएँ तथा इस स्थान पर अच्छे से निशान बनाएँ।
5. शिशु को हटाकर दीवार से निशान तक की दूरी फाइबर ग्लास से बने संकरे (चौड़ाई 1 सेमी. से कम हो, व लचीला न हो) फीते से सेमी. में नापकर एक कॉपी में लिख लें।

2. वजन नापना :

वजन सबसे अत्यधिक प्रयोग किया जाने वाला नाप है। इसके द्वारा आसानी से पोषण स्तर का पता लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वजन का घटना या बढ़ना न केवल डॉक्टर या स्वास्थ्य कर्मी समझ सकते हैं, परन्तु किसी भी नाप को लेकर उसकी व्याख्या करना, सभी के लिए आसान है।

वजन नापने के लिए प्रयोग किये जाने वाला उपकरण सटीक, आसानी से ले जाने वाला व मजबूत होना चाहिए। वह ज्यादा महंगा भी नहीं होना चाहिए। यदि समझा जाए तो वजन मांसपेशियों, वसा एवं शरीर की हड्डियों से बना है।

बालक एवं वयस्क का वजन लेना

1. डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक तुला द्वारा वजन लिया जा सकता है। वजन लेने से पूर्व मशीन को जीरो पर ले आएँ। मशीन सही वजन दे रही है या नहीं, इसकी जाँच मानक बाटों द्वारा कर सकते हैं। इस क्रिया को हम मशीन का मानकीकरण कहते हैं।
2. वजन लेने से पूर्व देखना जरूरी है कि शरीर पर कम से कम वस्त्र हों। वजन लेते समय किसी प्रकार के आभूषण भी धारण नहीं किए होने चाहिए।
3. वजन नापने के लिए बालक को जूते या चप्पल हटाकर, दोनों टांगों पर बराबर भार देते हुए, मशीन के बीचोबीच खड़ा करना चाहिए। व्यक्ति को सामने की ओर देखते हुए दोनों हाथ स्थिर रूप से शरीर

चित्र 3.3 : **बालक का डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक तुला द्वारा वजन लेना**

के दोनों और रखने चाहिए। (चित्र 3.3)

4. जैसे ही मशीन वजन को दर्शाए, उसे किलोग्राम में पढ़कर कॉपी में लिख लें। स्प्रिंग तुला में कम से कम 100 ग्राम व डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक मशीन में कम-से-कम 250 ग्राम तक का वजन नापा जा सकता है।

शिशु का वजन लेना :

1. बीम स्केल द्वारा शिशु का वजन नापा जा सकता है। इसके अतिरिक्त साल्टर स्केल द्वारा भी शिशु का वजन नापा जा सकता है। (चित्र 3.4 व 3.5)
2. शिशु का वजन लेते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके शरीर पर कम-से-कम वस्त्र हों।
3. यदि आवश्यकता हो तो शिशु का वजन माता की गोद में रखकर भी लिया जा सकता है।

चित्र 3.4 : **शिशु का डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक तुला से वजन लेना**

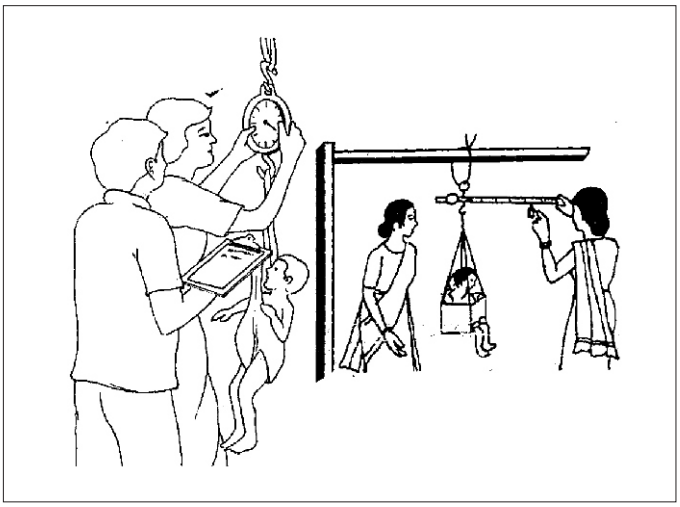

चित्र 3.5 : **बच्चों के वजन नापने के स्केल**

4. ऐसे में प्लेटफॉर्म बीम स्केल का प्रयोग कर सकते हैं।
5. सर्वप्रथम ऐसे में माता व शिशु दोनों का वजन एक साथ लें व उसे पढ़कर लिख लें। (भार-1)
6. इसके पश्चात् शिशु को गोद से उतारकर केवल माता का वजन अंकित कर लें। (भार-2)
7. शिशु का वजन नापने हेतु भार 1 में से भार 2 को घटा लें।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सांख्यिकी केन्द्र [National Center for Health Statistics (NCHS)] द्वारा शिशु, बालक एवं वयस्क की लम्बाई व वजन को सारिणी में अंकित विभिन्न लिंग व आयु के लिए दिए गए मापों से तुलना कर अच्छे स्वास्थ्य का निरीक्षण करें।

तालिका 3.1 : **(NCHS) के मुताबिक संदर्भित बच्चों एवं वयस्कों के वजन एवं लम्बाई के माप**

उम्र (वर्ष)	बालक		बालिका	
	लंबाई (से.मी.)	वजन (कि.ग्रा.)	लंबाई (से.मी.)	वजन (कि.ग्रा.)
0	50.5	3.3	49.9	3.2
1/4(3m)	61.1	6.0	59.5	5.4
1/2(6m)	67.8	7.8	65.9	7.2
3/4(9m)	72.3	9.2	70.4	8.6
1.0	76.1	10.2	74.3	9.5
1.5	82.4	11.5	80.9	10.8
2.0	85.6	12.3	84.5	11.8
3.0	94.9	14.6	93.9	14.1
4.0	102.9	16.7	101.6	16.0
5.0	109.9	18.7	108.4	17.7
6.0	116.1	20.7	114.6	19.5
7.0	121.7	22.9	120.6	21.8
8.0	127.0	25.3	126.4	24.8
9.0	132.2	28.1	132.2	28.5
10.0	137.5	31.4	138.3	32.5
11.0	143.3	35.3	144.8	37.0
12.0	149.7	39.8	151.5	41.5
13.0	156.5	45.0	157.1	46.1
14.0	163.1	50.8	160.4	50.3
15.0	169.0	56.7	161.8	53.7
16.0	173.5	62.1	162.4	55.9
17.0	176.2	66.3	163.1	56.7
18.0	176.8	68.9	163.7	56.6

सिर की परिधि (Head Circumference) :

1. कुछ बीमारियों के कारण सिर की परिधि बढ़ जाती है। ऐसे रोगों का हम सिर की परिधि नापकर पता लगा सकते हैं। इन्हें हम जलशीर्षता एवं लघुशीर्षता के नाम से जानते हैं। ये ज्यादातर जन्म से ही उपस्थित होते हैं और इनका कारण संक्रमण या आनुवंशिकी हो सकते हैं।
2. इसके अतिरिक्त सिर की परिधि पोषण स्तर एवं आयु नापने में भी सहायक होती है।
3. अत: सिर की परिधि का नाप 1 से 8साल के बच्चों के लिये ही लिया जाता है।
4. सिर की परिधि का नाप निम्न बातों पर आधारित है, मस्तिष्क के नाप पर एवं खोपड़ी की मोटाई पर।
5. द्वितीय वर्ष में खोपड़ी का आकार (मस्तिष्क का आकार) बढ़ने लगता है। परन्तु इन सभी का बढ़ना पोषण स्तर पर भी निर्भर करता है। अत: सिर की परिधि पोषण स्तर को बताती है और कुपोषण का पता लगाने में सहायता करती है। तालिका (3.2)

सिर की परिधि निम्न रूप से नापी जा सकती है –

नाप लेने के लिए एक संकड़े (1 से.मी. से कम व खिंचने वाला न हो) फीते का प्रयोग किया जाता है। यह स्टील या फाइबर ग्लास से निर्मित

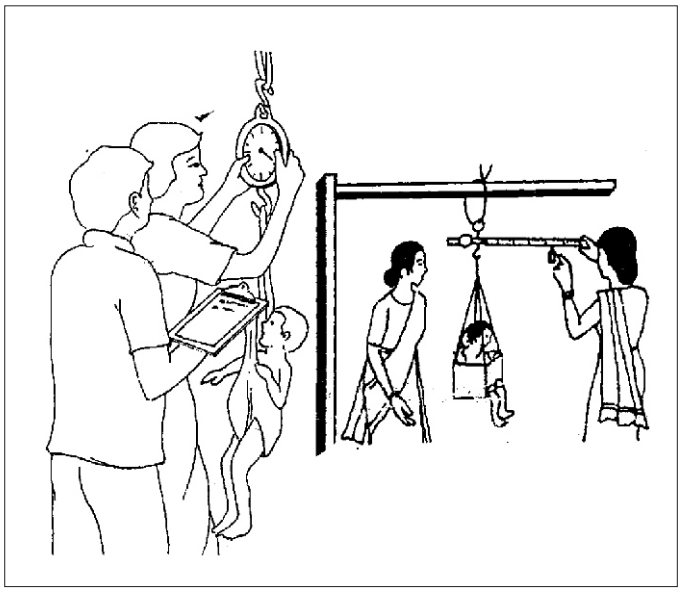

चित्र 3.5 : **बच्चों के वजन नापने के स्केल**

4. ऐसे में प्लेटफॉर्म बीम स्केल का प्रयोग कर सकते हैं।
5. सर्वप्रथम ऐसे में माता व शिशु दोनों का वजन एक साथ लें व उसे पढ़कर लिख लें। (भार-1)
6. इसके पश्चात् शिशु को गोद से उतारकर केवल माता का वजन अंकित कर लें। (भार-2)
7. शिशु का वजन नापने हेतु भार 1 में से भार 2 को घटा लें।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सांख्यिकी केन्द्र [National Center for Health Statistics (NCHS)] द्वारा शिशु, बालक एवं वयस्क की लम्बाई व वजन को सारिणी में अंकित विभिन्न लिंग व आयु के लिए दिए गए मापों से तुलना कर अच्छे स्वास्थ्य का निरीक्षण करें।

तालिका 3.1 : **(NCHS) के मुताबिक संदर्भित बच्चों एवं वयस्कों के वजन एवं लम्बाई के माप**

उम्र (वर्ष)	बालक		बालिका	
	लंबाई (से.मी.)	वजन (कि.ग्रा.)	लंबाई (से.मी.)	वजन (कि.ग्रा.)
0	50.5	3.3	49.9	3.2
1/4(3m)	61.1	6.0	59.5	5.4
1/2(6m)	67.8	7.8	65.9	7.2
3/4(9m)	72.3	9.2	70.4	8.6
1.0	76.1	10.2	74.3	9.5
1.5	82.4	11.5	80.9	10.8
2.0	85.6	12.3	84.5	11.8
3.0	94.9	14.6	93.9	14.1
4.0	102.9	16.7	101.6	16.0
5.0	109.9	18.7	108.4	17.7
6.0	116.1	20.7	114.6	19.5
7.0	121.7	22.9	120.6	21.8
8.0	127.0	25.3	126.4	24.8
9.0	132.2	28.1	132.2	28.5
10.0	137.5	31.4	138.3	32.5
11.0	143.3	35.3	144.8	37.0
12.0	149.7	39.8	151.5	41.5
13.0	156.5	45.0	157.1	46.1
14.0	163.1	50.8	160.4	50.3
15.0	169.0	56.7	161.8	53.7
16.0	173.5	62.1	162.4	55.9
17.0	176.2	66.3	163.1	56.7
18.0	176.8	68.9	163.7	56.6

सिर की परिधि (Head Circumference) :

1. कुछ बीमारियों के कारण सिर की परिधि बढ़ जाती है। ऐसे रोगों का हम सिर की परिधि नापकर पता लगा सकते हैं। इन्हें हम जलशीर्षता एवं लघुशीर्षता के नाम से जानते हैं। ये ज्यादातर जन्म से ही उपस्थित होते हैं और इनका कारण संक्रमण या आनुवंशिकी हो सकते हैं।
2. इसके अतिरिक्त सिर की परिधि पोषण स्तर एवं आयु नापने में भी सहायक होती है।
3. अत: सिर की परिधि का नाप 1 से 8साल के बच्चों के लिये ही लिया जाता है।
4. सिर की परिधि का नाप निम्न बातों पर आधारित है, मस्तिष्क के नाप पर एवं खोपड़ी की मोटाई पर।
5. द्वितीय वर्ष में खोपड़ी का आकार (मस्तिष्क का आकार) बढ़ने लगता है। परन्तु इन सभी का बढ़ना पोषण स्तर पर भी निर्भर करता है। अत: सिर की परिधि पोषण स्तर को बताती है और कुपोषण का पता लगाने में सहायता करती है। तालिका (3.2)

सिर की परिधि निम्न रूप से नापी जा सकती है –

नाप लेने के लिए एक संकड़े (1 से.मी. से कम व खिंचने वाला न हो) फीते का प्रयोग किया जाता है। यह स्टील या फाइबर ग्लास से निर्मित

होता है। नाप लेते समय शिशु या बालक का सिर स्थिर होना चाहिए। फीता भौंह के ऊपर रखना चाहिए और दोनों ओर समान स्तर पर होना चाहिए। (चित्र 3.6)

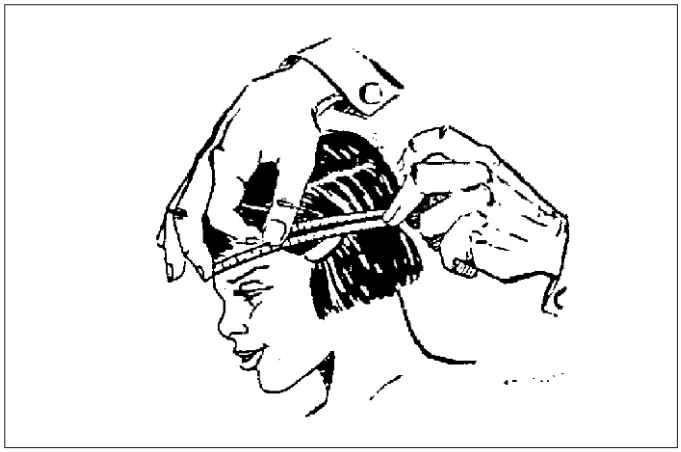

चित्र 3.6 : **सिर की परिधि का नाप लेना**

तालिका 3.2 : **आयु के अनुसार सन्दर्भ शिशु व बालक के सिर व छाती की परिधि का नाप**

आयु (महीनों में)	सिर (से.मी.)	छाती (से.मी.)
जन्म	35.0	35
3	40.4	40
6	43.4	44
12	46.0	47
18	47.4	48
24	49.0	50
36	50.0	52
48	50.5	53
60	50.8	55

छाती की परिधि (Chest Circumference)

1. छह महीने के उपरान्त खोपड़ी का विकास धीमा हो जाता है, और छाती का विकास बढ़ने लगता है।
2. अत: पोषण स्तर को जाँचने के लिये सिर/छाती को नापकर उसका अनुपात निकाला जाता है।

छाती की परिधि नापना :

नाप लेने के लिए एक संकड़े (1 से.मी. से कम व खिंचने वाला न हो) स्टील या फाइबर ग्लास से बने टेप का प्रयोग किया जाता है। नाप छाती पर स्तन को छूते हुए लिया जाता है। (चित्र 3.7)

सिर व छाती की परिधि का अनुपात 6महीने से ऊपर के बच्चों का पोषण स्तर देखने के लिये किया जाता है। यदि यह अनुपात एक से कम है (< 1) तो बच्चा सामान्य पोषित है। एक या एक से अधिक (≥ 1) अनुपात

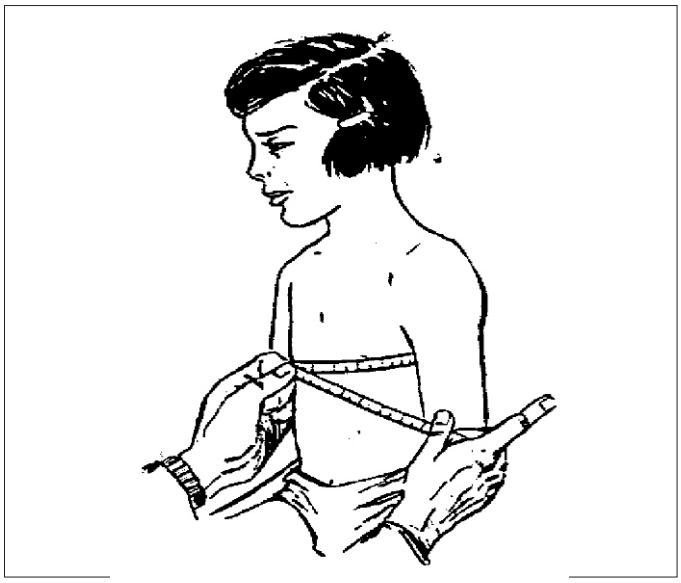

चित्र 3.7 : **छाती की परिधि का नाप लेना**

निकलने पर बच्चा कुपोषित की श्रेणी में आता है।

बॉडी मास इंडेक्स (Body Mass Index) BMI

वयस्क व्यक्ति का उचित वजन कितना होना चाहिये ये दो बातों पर निर्भर करता है।

1. लम्बाई
2. वजन।

आप का वजन किस श्रेणी में आता है यह बताने के लिये वैज्ञानिकों ने एक बहुत ही आसान तरीका बताया है, वह है बॉडी मास इंडेक्स (Body Mass Index-BMI)

बॉडी मास इंडेक्स वयस्क व्यक्ति के वजन और लम्बाई के हिसाब से उसके शरीर में कितनी वसा है बताता है। इसे गणना करने का एक बड़ा ही सरल सूत्र है–

BMI = भार (कि.ग्रा.)/लम्बाई (मीटर)^2

1. कि.ग्रा. = 2.5 पौंड

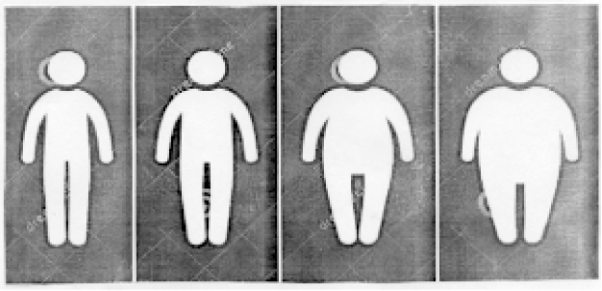

कम वजन सामान्य वजन अधिक वजन अत्यधिक वजन

चित्र 3.8 : **B.M.I. के अनुसार व्यक्ति की शारीरिक बनावट**

1 फीट = 30 से.मी.

1 मीटर = 100 से.मी.

1. इंच = 2.5 से.मी.

आप अपना BMI पता कर लें और देखें कि यह किस श्रेणी में आता है–

18.5 से कम – कम वजन

18.5 से 25 – सामान्य वजन

25 से 29.9 – अधिक वजन

30 से ज्यादा – अत्यधिक वजन (मोटापा)

BMI सही सीमा में होने के कई फायदे हैं–

— मधुमेह होने का खतरा

— रक्तचाप सामान्य रखने में सहायक

— हृदय सम्बन्धी बीमारी होने की कम सम्भावना

— जोड़ों के दर्द से बचाव

— लम्बा और स्वस्थ जीवन

— सही ऊर्जा का स्तर

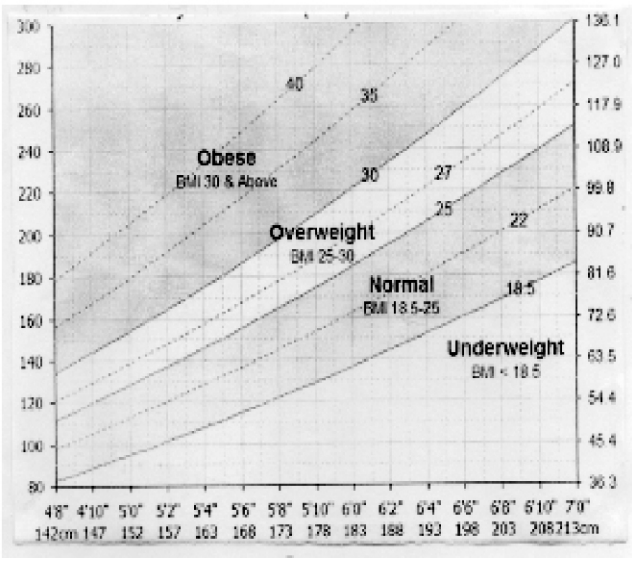

चित्र 3.9 : **बॉडी मास इन्डेक्स (B.M.I.) चार्ट**

प्रायोगिक गतिविधि

1. 0–1 साल तक के शिशुओं के सिर एवं छाती की परिधि का अनुपात लेकर पोषण स्तर का आकलन करिये–

क्रमांक	सिर की परिधि	छाती की परिधि	अनुपात	निष्कर्ष
1.				
2.				
3.				
4.				
5.				

2. 2 से 10 वर्ष तक के बच्चों की लम्बाई व वजन लेकर दिये गये सन्दर्भ वजन व लम्बाई से तुलना करके पोषण स्तर का आंकलन कीजिये।

क्रमांक	लम्बाई (से.मी.)	वजन (कि.ग्रा.)	निष्कर्ष	
1.				
2.				
3.				
4.				
5.				

3. बी.एम.आई. के आधार पर पोषण स्तर का आकलन करिये।

क्रमांक	वजन (कि.ग्रा.)	लम्बाई (मी.)	बी.एम.आई.	निष्कर्ष
1.				
2.				
3.				
4.				
5.				

इकाई-III : पारिवारिक पोषण

अध्याय 4

कम कीमत एवं अधिक पौष्टिकता वाले व्यंजन बनाना व प्रतियोगिता

घरेलू स्तर पर भोज्य पदार्थों की पौष्टिकता अंकुरीकरण, खमीरीकरण एवं विभिन्न भोज्य पदार्थों के मिश्रण से बढ़ाई जा सकती है। अंकुरण से अनाजों के पौष्टिक तत्त्व विशेषकर विटामिन 'बी$_1$', 'बी$_2$', नियासिन तथा विटामिन 'सी' की मात्रा में काफी वृद्धि हो जाती है। दालों के कुछ विषाक्त तत्त्वों की मात्रा में काफी कमी हो जाती है तथा कार्बोज की कुछ मात्रा शर्करा में परिवर्तित हो जाती है। खमीरीकरण की प्रक्रिया से दालों में फाइटेट की मात्रा में कमी हो जाती है। अत: दाल में उपस्थित लौह-लवण भी मुक्त हो जाता है, जिसके कारण इसका अवशोषण हो जाता है। खमीरीकरण से अनाजों की पाचनशीलता, स्वाद तथा पोषण मूल्य में वृद्धि हो जाती है। भोज्य पदार्थों के मिश्रण में दो या दो से अधिक भोज्य पदार्थों को मिलाकर व्यंजन बनाकर खाने से उनकी पौष्टिकता व पोषण तत्त्वों की गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है, जैसे-दाल-चावल, दाल-रोटी, खिचड़ी, इडली, भरवाँ पराँठे, पुलाव आदि। यहाँ इन तीनों विधियों से बनाए जा सकने वाले कुछ व्यंजनों की विधियाँ दी गई हैं-

1. अंकुरित मोठ-बाजरा चाट

सामग्री :

मोठ	:	20 ग्राम
बाजरा	:	10 ग्राम
प्याज	:	1 छोटा
हरी मिर्च	:	1/2
टमाटर	:	1 छोटा
नीबू रस	:	4-5 बूँदें
नमक	:	स्वादानुसार

विधि :

1. मोठ व बाजरा को धोकर रात भर भिगोएँ।
2. पतले कपड़े में भीगे हुए मोठ/बाजरा को बाँधकर हवा में लटकाएँ जिससे अंकुरण हो जाये।
3. एक प्लेट अंकुरित मोठ व बाजरा में प्याज, हरी मिर्च, टमाटर के टुकड़े, नींबू का रस व नमक मिलाकर परोसें।

2. मीठी मठरी

सामग्री :

बाजरा आटा	:	50 ग्राम
मोठ आटा	:	25 ग्राम
भुनी मूंगफली के टुकड़े	:	10 ग्राम
भुने तिल	:	5 ग्राम
तेल	:	तलने के लिए

विधि :

1. बाजरा व मोठ के आटे को मिला लें।
2. आटे में मूंगफली, तिल, थोड़ा तेल व गुड़ या चीनी डालकर कड़ा आटा गूंध लें।
3. छोटी व मोटी मठरियाँ बनाकर गुलाबी भूरा होने तक गरम तेल में धीमी आँच पर तलें।

3. कटोरी चाट

सामग्री :

मोठ आटा	:	20 ग्राम
बाजरा आटा	:	15 ग्राम
गेहूँ आटा	:	10 ग्राम
तेल	:	तलने के लिए
प्याज	:	10 ग्राम
हरी मिर्च	:	1/2 चम्मच कटी हुई
हरा धनिया	:	5 ग्राम
टमाटर	:	20 ग्राम
नीबू रस	:	1/2 चम्मच
नमक	:	स्वादानुसार

विधि :

1. आटे में नमक मिला कर गूँधें।
2. कटोरी के बाहर चारों तरफ पतली परत में लपेटें।
3. गर्म तेल में उन कटोरी को धीमे आंच पर तलें।
4. सुनहरा होने पर निकाल लें व कटोरी अलग कर दें।
5. उसमें अंकुरित की हुई मोठ, प्याज, नमक, मिर्च, हरा धनिया, टमाटर व नींबू के रस का मिश्रण बनाकर भर कर परोसें।

4. ढोकला

सामग्री :

बाजरे का आटा	:	50 ग्राम
मोठ का आटा	:	10 ग्राम
प्याज, अदरक	:	थोड़ी मात्रा में
हरा धनिया, हरी मिर्च	:	स्वादानुसार
जीरा	:	थोड़ा-सा
नमक	:	स्वादानुसार
दही	:	1/4 कप
तेल	:	1 बड़ा चम्मच

विधि :

1. आटे को छानकर नमक मिला लें।
2. उसमें बारीक कटा प्याज, हरी मिर्च, अदरक, धनिया, जीरा व दही डालकर कड़ा आटा गूध लें।
3. छोटे-छोटे गोले बनाकर उसे जाली के ऊपर रखकर 20 मिनट भाप में पकाएँ।
4. चम्मच या चाकू डालकर देखें कि चिपक नहीं रहा हो, तब आँच से उतार लें।
5. थोड़े से तेल में राई डालकर ढोकले में छौंक लगाएँ।
6. उड़द की दाल के साथ परोसें।

5. इडली

सामग्री :

चावल	:	30 ग्राम
उड़द दाल बिना छिलके वाली	:	10 ग्राम
नमक	:	स्वादानुसार
तेल	:	थोड़ा-सा

विधि :

1. दाल एवं चावल को बीन कर, धो कर 6-8घण्टे के लिए अलग-अलग भिगो लें।
2. भीगी हुई दाल को महीन व चावल को थोड़ा मोटा पीसें।
3. पीसे हुए दाल व चावल के पेस्ट को अच्छी तरह मिलाकर, नमक डालकर, धूप में या फिर रात भर ढककर रखें जिससे खमीर उठ जाये।
4. इडली बनाने के साँचे में तेल का चिकना हाथ लगाकर एक-एक कड़छी घोल डालें।
5. इसे इडली बनाने के बर्तन या प्रैशर कूकर के उबलते पानी में इस प्रकार रखें कि इडली के घोल वाला साँचा उबलते पानी से ऊपर रहे।
6. बर्तन को ढक दें। यदि कुकर हो तो उसके ढक्कन से सीटी हटा दें।
7. इडली को 10 से 15 मिनट तक भाप में पकाएँ।
8. अब ढक्कन हटा कर इडली वाले साँचे को बाहर निकाल कर ठंडा करें व इडली को निकाल लेवें। इडली के पकने की पहचान यह है कि गर्म इडली में चाकू डालने पर घोल उस पर चिपकेगा नहीं। यदि घोल चिपकता है तो इसे अभी और पकाने की जरूरत है।
9. इडली को नारियल की चटनी या सांभर के साथ परोसें।

अध्याय 5

विभिन्न पाक विधियों का प्रयोग कर व्यंजन तैयार करना

हमारे घरों में कई प्रकार के व्यंजन बनाये जाते हैं। इन व्यंजनों को बनाने के लिये पाक क्रिया की विभिन्न विधियाँ प्रयोग में ली जाती है। पाक क्रिया की विभिन्न विधियों से बनाये जाने वाले कुछ व्यंजन नमूने के रूप में नीचे दिये जा रहे हैं–

1. **उबालना**–इस विधि से हम दिन प्रतिदिन खाई जाने वाली कई सब्जियों व दालों को बनाते हैं। दाल व सब्जियों को उबालने के बाद उनमें छौंक लगाया जाता है ताकि वह स्वादिष्ट व आकर्षक बन जाये।

1. मूंग दाल

सामग्री :

मूँग दाल	:	25 ग्राम
घी	:	1/2 चाय का चम्मच
नमक	:	स्वादानुसार
अन्य मसाले	:	हल्दी, मिर्च, धनिया पाउडर व जीरा

विधि :

1. दाल को बीन कर, साफ-स्वच्छ पानी से दो बार धोयें।
2. दाल को 15-20 मिनट तक भीगने दें।
3. भगोने में 1 कटोरी पानी उबालें और उसमें भीगी हुई दाल पकने के लिए रखें।
4. पीसी हल्दी तथा नमक डाल दें तथा भगोना ढक कर रखें।
5. जब दाल पक जाये तब एक छोटे बर्तन में घी गर्म करके जीरा तड़काएँ एवं अन्य मसाले डालकर दाल में मिलाएँ।
6. दाल में हरी मिर्च, हरा धनिया व नीबू का रस इच्छानुसार डाला जा सकता है।
7. गर्म दाल चावल व चपाती आदि के साथ परोसें।

2. सूप

सामग्री :

भीगा हुआ बाजरा	:	20 ग्राम
मोठ	:	20 ग्राम
नमक	:	$^1/_2$ चम्मच
काली मिर्च	:	$^1/_2$ चम्मच
जीरा	:	चुटकी भर

विधि :

1. बाजरा व मोठ को पानी के साथ उबालें।
2. पूर्णतया गल जाने पर इसे मथनी घुमा छोटी व मोटी चलनी से छानें।
3. उसमें नमक, काली मिर्च व भूना पिसा जीरा डालें व गर्म-गर्म कप में भोजन से पहले परोसें।

2. **खदकाना**–इस विधि द्वारा भोजन धीमी आँच पर पकाया जाता है।

चावल की खीर

सामग्री :

दूध	:	250 मि.लि.
चावल	:	10 ग्राम
शक्कर	:	10 ग्राम
इलायची	:	1 छोटी (पीसी हुई)

विधि :

1. चावल बीनकर धो लें व 10-15 मिनट भिगोकर रखें।
2. भगोने में दूध उबालें एवं भीगे हुए चावल मिलाकर धीमी आंच पर पकाएँ।
3. बीच-बीच में दूध को चम्मच से हिलाते रहें।
4. जब चावल अच्छी तरह से गल जाये तब उसमें शक्कर मिलाकर अच्छी तरह पकाएँ।
5. खीर को कटोरी में निकाल कर पिसे इलायची पाउडर से सजाएँ एवं गर्म-गर्म परोसें।
6. खीर को स्वादिष्ट बनाने के लिए इसमें सूखे मेवे, केसर आदि भी डाल सकते हैं।

बाजरा राब

सामग्री :

बाजरे का आटा	:	20 ग्राम
छाछ	:	150 ग्राम

अंकुरित मोठ	:	5 ग्राम
नमक, जीरा	:	स्वादानुसार
पानी	:	200 ग्राम

विधि :

1. बाजरे के आटे को छाछ में घोल लेवें।
2. जीरे की छोंक लगाकर गाढ़ा होने तक पकाइये व बीच-बीच में हिलाते रहें।
3. अंकुरित मोठ मिलाकर 2 मिनट और पकाइए। गर्म-गर्म या ठण्डा होने पर परोसें।

3. दाब द्वारा पकाना (प्रैशर कूकर में)

छोले

सामग्री :

काबुली चने	:	30 ग्राम
टमाटर	:	25 ग्राम
प्याज	:	20 ग्राम
अदरक	:	5 ग्राम
हरी मिर्च	:	1 या 2
हरा धनिया	:	कुछ पत्ते
नमक	:	स्वादानुसार
तेल	:	1-1/2 चाय का चम्मच
अन्य मसाले	:	हल्दी, मिर्ची, धनिया व गरम मसाला पाउडर, जीरा आदि।
		नीबू/अमचूर/इमली स्वादानुसार।

विधि :

1. छोलों को बीनकर, धोकर, रात भर पानी में भिगोएँ।
2. रात भर भीगे छोले प्रैशर कुकर में आवश्यक मात्रा में पानी व नमक डालकर 3-4 सीटी आने तक पकाएँ।
3. प्याज, अदरक, हरी मिर्च, टमाटर व हरा धनिया धोकर काट लेवें।
4. कड़ाही में तेल गर्म करके जीरा चटकाएँ एवं अदरक व प्याज सुनहरा होने तक भूनें।
5. इसमें कटे टमाटर व अन्य मसाले डालकर 3-4 मिनट भूनें तथा प्रैशर कूकर में उबले छोले मिलाएँ, अच्छी तरह पकाएँ व स्वादानुसार खटाई डालें।
6. अब इन्हें कटोरी में निकालकर प्याज के गोल छल्ले, टमाटर के स्लाइस, कटी हरी मिर्च व हरे धनिये से सजाएँ एवं गर्मागर्म परोसें।

बाजरा-मोठ घुघरी

सामग्री :

भीगा हुआ बाजरा	:	20 ग्राम
भीगा हुआ मोठ	:	10 ग्राम
प्याज	:	25 ग्राम
हरी मिर्च	:	1
तेल	:	2 छोटे चम्मच
जीरा, नमक, पानी	:	आवश्यकतानुसार

विधि :

1. भीगे बाजरे व मोठ को धीमी आँच पर 20-25 मिनट तक पानी में पकाएँ।
2. प्याज, अदरक व हरी मिर्च को धोकर बारीक काटें।
3. तेल गर्म करके जीरा डालें व फिर प्याज डालकर भूनें।
4. मसाले, अदरक व हरी मिर्च पकाएँ व उबला हुआ बाजरा, मोठ का मिश्रण मिलाएँ। हरा धनिया डालकर गरम-गरम परोसें।

4. भाप द्वारा पकाना

मक्की के ढोकले :

सामग्री :

मक्की का आटा	:	50 ग्राम
प्याज	:	10-15 ग्राम
अदरक	:	2-5 ग्राम
हरा धनिया	:	5 ग्राम
नमक	:	स्वादानुसार
तेल	:	एक बड़ा चम्मच (10-15 ग्राम)
राई एवं जीरा	:	1/2 चाय का चम्मच
पापड़ खार	:	1/4 चाय का चम्मच

विधि :

1. मक्की के आटे को छान लें व नमक तथा पापड़ खार मिलाकर एक दो बार पुनः छान लें, जिससे नमक व खारा आटे में भली-भाँति मिल जाये।
2. प्याज, अदरक व हरा धनिया धोकर बारीक काट लें।
3. मक्की के आटे में कटा प्याज, हरी मिर्च, धनिया व अदरक मिलाकर आटा गूँधें।
4. कूकर या भगोने में थोड़ा पानी डालकर कूकर की जाली या स्टील की छलनी घेरे पर रखें।
5. मक्की के गुँधे आटे की लोइयाँ बनाकर जाली पर रखें।

6. भगोने पर ढक्कन रखकर या कूकर की सीटी हटाकर 15-20 मिनट तक भाप में पकाएँ।
7. तेल गर्म करके जीरा व राई तड़काएँ तथा भाप में पके ढोकलों पर डालकर, हरे धनिये की पत्ती से सजाकर गरमागरम परोसें।
8. बिना छौंके ढोकलों में तेल या घी मिलाकर गरमागरम दाल के साथ परोसें।

5. गहरी तलने की विधि

मठरी

सामग्री :

बाजरा आटा	:	20 ग्राम
मोठ आटा	:	20 ग्राम
मैदा	:	20 ग्राम
अजवायन	:	5 ग्राम
नमक	:	स्वादानुसार
तेल	:	तलने के लिए

विधि :

1. बाजरा आटा, मोठ आटा व मैदा को मिलाकर छानें।
2. थोड़ा तेल, नमक व अजवायन डालकर कड़ा आटा गूधें।
3. छोटी व मोटी मठरी बेलें।
4. चाकू या किसी नुकीली चीज से छेद कर लें।
5. गरम तेल में धीमी आँच पर हल्के भूरे होने तक तलें।

6. उथली तलने की विधि :

कटलेट

सामग्री :

बाजरा आटा	:	50 ग्राम
अंकुरित मोठ	:	5 ग्राम
आलू	:	100 ग्राम
मटर के दाने	:	30 ग्राम
प्याज	:	50 ग्राम
हरी मिर्च	:	आधी
हरा धनिया	:	5 ग्राम
सूजी	:	5 ग्राम
नमक	:	स्वादानुसार

विधि :

1. आलू उबालकर छीलें।
2. हरी मिर्च, प्याज को काटकर गर्म तेल में भूनें।
3. अब इसमें आलू मसलकर, मटर व अंकुरित मोठ कुचल कर व हरा धनिया साफ करके मिलाएँ। साथ में बाजरा आटा व नमक भी मिलाएँ।
4. इस मिश्रण से टिकिया तैयार कर सूजी में लपेटें।
5. तवे पर थोड़ा सा तेल लगाकर बनाई टिकियाओं को सेंकें व हरे धनिये की चटनी के साथ परोसें।

7. सेंकना (भूनना) :

रोटी/चपाती

सामग्री :

गेहूँ का आटा	:	50 ग्राम
नमक	:	स्वादानुसार
पानी	:	आटा गूधने के लिए

विधि :

1. आटे में नमक मिलाकर छानें।
2. थोड़ा-थोड़ा पानी मिलाकर हल्के हाथ से आटा गूधें व 5-10 मिनट के लिये ढक कर रख दें।
3. गूंधे हुए आटे से लोई बनाकर चकले पर प्लोथन (सूखा आटा) की सहायता से बेलें।
4. आँच पर तवा रखें एवं गर्म होने पर बेली हुई रोटी डालें।
5. रोटी को दोनों तरफ से तवे पर सेकें तथा तवे या आँच पर फुलाएँ।
6. गरमागरम रोटी पर घी लगाकर दाल-सब्जी आदि के साथ परोसें।

बाटी

सामग्री :

गेहूँ का आटा	:	75 ग्राम
नमक	:	स्वादानुसार
घी	:	एक बड़ा चम्मच (10-15 ग्राम)
पानी	:	आटा गूँधने के लिये

विधि :

1. आटे में नमक मिलाकर छान लें।
2. छाने हुए आटे में 1/2-1 चाय का चम्मच घी का मोयन डालकर अच्छी तरह मिला दें।
3. थोड़ा-थोड़ा पानी डालते हुए रोटी से सख्त आटा गूँधें।
4. गूधे हुए आटे की दो लोई बनाकर अंगीठी की गरम राख के अंदर या गैस-तन्दूर में सेकें।
5. सिकने पर बाटियों के मुँह खुल जाते हैं।
6. सिकी हुई बाटियों पर घी लगाकर दाल के साथ परोसें।

8. बेकिंग

बिस्कुट

सामग्री :

बाजरा आटा	:	50 ग्राम
मोठ आटा	:	10 ग्राम
बेकिंग पाउडर	:	1/4 छोटा चम्मच
नमक	:	1/4 छोटा चम्मच
घी	:	1 छोटा चम्मच
दूध	:	आटा गूधने के लिए

विधि :

1. आटा, बेकिंग पाउडर व नमक को एक साथ मिलाकर छान लें।
2. मक्खन मिलाकर दूध से कड़ा आटा गूध ले।
3. 1/4'' मोटी रोटी बेलकर छोटे-छोटे गोल बिस्कुट के आकार के टुकड़े काट लें।
4. घी लगी ट्रे में रखकर 200°C तापमान पर 15-20 मिनट तक ओवन में रखें।
5. ठंडा होने पर परोसें।

केक

सामग्री :

बाजरा आटा	:	50 ग्राम
मोठ आटा	:	20 ग्राम
मैदा	:	50 ग्राम
बेकिंग पाउडर	:	1 चम्मच
नमक	:	चुटकी भर
चीनी	:	100 ग्राम
अण्डे	:	2
घी	:	50 ग्राम
चेरी	:	आवश्यकतानुसार
बनिला एसेंस	:	1/2 चम्मच

विधि :

1. आटा, मैदा, नमक व बेकिंग पाउडर को मिलाकर 3-4 बार छलनी से छानें।
2. पिसी हुई चीनी व घी डालकर खूब फेंटें।
3. इसमें अण्डे व छाने आटे को बारी-बारी से डालकर मिलाएँ व आवश्यकतानुसार दूध मिलाएँ।
4. वनिला एसेंस व चेरी मिलाएँ।
5. ऐल्यूमीनियम के बर्तन में थोड़ा घी लगाएँ व सादा साफ कागज लगाकर केक मिश्रण को इस बर्तन में डालकर 200°F ताप पर एक घंटे तक ओवन में बेक करें।
6. ठंडा होने पर काटकर टुकड़े करें व परोसें।

अध्याय 6

भोजन परिरक्षण विधियों का प्रयोग कर खाद्य उत्पाद बनाना

भोजन परिरक्षण से तात्पर्य

भोज्य पदार्थों के मूल आकार एवं रूप को परिवर्तित करके या परिवर्तित किये बिना ही उनके पोषण मूल्य को यथासम्भव बनाये रखते हुए बिना विकृति के लम्बे समय तक सुरक्षित रखने की विधि एवं तकनीक को खाद्य परिरक्षण कहते हैं।

खाद्य पदार्थों को लम्बे समय तक संग्रह करके रखना आवश्यक होता है ताकि आवश्यकता पड़ने पर तथा भविष्य में इसका उपयोग किया जा सके।

परिरक्षण की घरेलू विधियों द्वारा खाद्य पदार्थों को छोटे पैमाने पर परिवार में प्रयोग के लिये परिरक्षित किया जा सकता है। गृह-विज्ञान के छात्र प्रयोगशाला में इन विधियों को सीख कर कई तरह के परिरक्षित खाद्य पदार्थ घर पर ही तैयार कर सकते हैं।

खाद्य परिरक्षण की विभिन्न विधियों के बारे में आपने परिरक्षण अध्याय में पढ़ा है।

खाद्य परिरक्षण की रासायनिक विधि का उपयोग करके घरेलू स्तर पर कई तरह के संरक्षित पदार्थ बनाये जा सकते हैं, जैसे मुरब्बा, जैम, जैली, शरबत, स्कवैश, टमाटर सॉस, अचार इत्यादि।

फल संरक्षण कार्य में प्रयुक्त रासायनिक पदार्थ

फल संरक्षण कार्य में खाद्य पदार्थों को संरक्षित करने हेतु निम्नलिखित रासायनिक पदार्थों का प्रयोग किया जाता है।

1. साइट्रिक ऐसिड– यह देखने में सफेद दानेदार तथा स्वाद में खट्टा होता है। इसे नीबू का सत भी कहते हैं। इसका प्रयोग खाद्य पदार्थों में खटास रखने के लिए किया जाता है तथा चीनी द्वारा संरक्षित खाद्य पदार्थों जैसे शर्बत, मुरब्बा, जैम, जैली आदि में चीनी के रवे (Crystal) बनने से रोकने के लिए किया जाता है। ध्यान रहे कि यह सुरक्षा कारक नहीं है।

2. ऐसीटिक ऐसिड– यह देखने में लगभग पानी जैसा तेज गन्ध वाला तरल पदार्थ है, इसे सिरके का सत भी कहते हैं। इसका प्रयोग मसालेदार खाने वाले खाद्य पदार्थों जैसे अचार, चटनी, सॉस आदि में उपयुक्त खटास तथा स्वाद के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा तैयार 4-5 प्रतिशत पानी के घोल को (5ml Acetic Acid+95 ml. Water = White Vinegar) सिरका कह सकते हैं। इसमें हरी मिर्च, अदरक, प्याज, लहसुन, ब्लॉन्च सब्जियों आदि को डुबोकर सिरके वाला अचार तैयार किया जाता है। सफेद सिरका स्वयं सुरक्षा कारक है।

3. सोडियम बैन्जोएट– यह सुरक्षा कारक रासायनिक पदार्थ है जो देखने में सफेद पाउडर जैसा होता है। छूने पर चाक की भाँति चिपक जाता है। इसका प्रयोग मुख्यरूप से गहरे रंग वाले फलों के रस अथवा रस से तैयार खाद्य पदार्थों जैसे अनार, जामुन, फालसा, स्क्वैश, टमाटर से निर्मित पदार्थों, सभी प्रकार की चटनी, सास, अचार आदि में सुरक्षाकारक के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह खाद्य पदार्थ में मिलाये जाने पर बैन्जोइक ऐसिड में परिवर्तित हो जाता है।

4. पोटेशियम मैटाबाई सल्फाइट– यह सुरक्षा कारक रासायनिक पदार्थ है जो देखने में हल्का सफेद तथा छूने पर रवेदार होता है। यह फलों की खटास अथवा तैयार खाद्य पदार्थों में प्रयोग करने पर सल्फर डाई ऑक्साइड (SO_2) गैस में परिवर्तित हो जाता है तथा यही गैस सुरक्षा कारक का कार्य करती है। इसका प्रयोग मुख्य रूप से हल्के रंग वाले फलों के रस अथवा तैयार स्क्वैश जैसे नीबू, सन्तरा, आम, अनन्नास, लीची, बेल आदि में सुरक्षाकारक के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस गैस का मुख्य गुण है कि गहरे रंग को उड़ा देती है अत: ध्यान रखें कि इसका प्रयोग हरे रंग वाले फलों के रस के स्क्वैश संरक्षण में नहीं किया जा सकता।

उपरोक्त रासायनिक पदार्थों के अतिरिक्त–

चीनी द्वारा संरक्षण– खाद्य पदार्थों में 68-70 प्रतिशत चीनी की मात्रा सुरक्षा कारक का कार्य करती है। जैम, जैली, मुरब्बा, शर्बत आदि चीनी द्वारा संरक्षित पदार्थ हैं।

नमक द्वारा संरक्षण– खाद्य पदार्थों में नमक की 18-20 प्रतिशत मात्रा सुरक्षाकारक का कार्य करती है अत: नीबू का अचार तथा आम का बिना तेल वाला अचार नमक से संरक्षित रहते हैं।

मुरब्बा संरक्षण

विभिन्न प्रकार के फलों को उनके आकार व स्वभाव के अनुसार साबुत अथवा छीलकर, काट कर तैयार करके चीनी द्वारा संरक्षित तैयार पदार्थ को मुरब्बा कहते हैं। तैयार सभी मुरब्बे 68प्रतिशत चीनी द्वारा सुरक्षित रहते हैं। निम्न फलों से तैयार मुरब्बे अधिक लोकप्रिय हैं। जैसे-सेब, आँवला, गाजर, कच्चा आम, कच्चा बेल इत्यादि।

उक्त के अतिरिक्त निम्न प्रकार के फलों से तैयार मुरब्बे अलग-

अलग नाम से लोकप्रिय हैं। जैसे–

— अदरक से तैयार सूखा मुरब्बा कैन्डी (Candy) के नाम से।
— कच्चे पपीते से हरे, लाल, पीले रंग में तैयार मुरब्बा टूटी-फ्रूटी के नाम से।
— सफेद करौंदे से तैयार किया गया लाल रंग का मुरब्बा चैरी के नाम से।

फलों के स्वाद व स्वभाव के अनुसार मुरब्बा बनाते समय निम्नलिखित घोल में रखकर मुरब्बा तैयार करते हैं–

(1) 2 प्रतिशत नमक का घोल–ऐसे फल जिन्हें छीलने के बाद उनके रंग में परिवर्तन हो जाता है, उन्हें छील कर 2 प्रतिशत नमक के घोल में रखते हैं जैसे–सेब, नाशपाती आदि। नमक के घोल में रखने से फल का रंग खराब नहीं होगा। (1 लि. पानी + 20 ग्राम नमक = 2 प्रतिशत नमक का घोल)।

(2) 1.5 प्रतिशत फिटकरी का घोल–ऐसे फल जिनका स्वाद कसैला अथवा कड़वा होता है। जैसे–आँवला उन्हें गोदने (Pricking) के बाद आँवले को 24 घण्टे तक घोल में रखते हैं ऐसा करने से फलों का कसैलापन या कड़वापन कम हो जाता है। 15 ग्राम फिटकरी तथा 1 लिटर पानी मिलाकर 1.5 प्रतिशत का घोल बनाया जा सकता है।

(3) 2 प्रतिशत चूने का घोल–ऐसे फल जो बहुत मुलायम होते हैं उन्हें गोदने के बाद लगभग 10–12 घण्टे चूने के घोल में रखते हैं जैसे–पेठा, बेल आदि।

सेब का मुरब्बा

आवश्यक सामग्री

सेब	:	1.0 कि.ग्रा.
चीनी	:	1.5 कि.ग्रा.
पानी	:	400 मिली.
साइट्रिक ऐसिड	:	7 ग्राम

विधि–व्यावसायिक स्तर पर मुरब्बा बनाने के लिए 'राइमर' तथा 'अम्बरी' जाति के फल उपयुक्त रहते हैं। इस प्रकार के फल न मिलने पर मध्यम छोटे आकार वाले खट्टे फलों से मुरब्बा बनाना चाहिये। फलों को छीलकर 2 प्रतिशत नमक के घोल में रखा जायें।

1. ब्लान्चिंग (Blanching)–नमक के घोल से फलों को निकालकर उबलते हुए पानी में 8–10 मिनट ब्लान्च करें। जब माचिस की तीली या स्टील का काँटा फलों में आसानी से जाने लगे तब ब्लान्चिंग समय पूर्ण मानते हैं।

2. फलों को गोदना (Pricking)–स्टेनलैस स्टील के काँटों (Fork) द्वारा चारों ओर से भली-भाँति गोद लें, अर्थात् काँटा चारों ओर से फलों के अन्दर बीज वाले भाग तक पहुँचना चाहिये।

3. चीनी की चाशनी बनाना–चीनी, पानी तथा साइट्रिक ऐसिड मिलाकर चीनी के घुलने तक पकाने के बाद उबाल आते ही चाशनी को छानकर तैयार गुदे हुए फलों के साथ मिला लें। दूसरे दिन मुरब्बे वाले बर्तन को गैस पर गर्म करने के लिए रखें। जब चाशनी उबलने लगे तब फलों को बाहर निकाल लें तथा चाशनी को पाँच मिनट उबालकर बर्तन को आँच से उतार कर फलों को चाशनी में मिला दें।

इसी प्रकार तीसरे तथा चौथे दिन चाशनी को 5–5 मिनट गर्म करें। ऐसा करने से चाशनी प्रतिदिन धीरे-धीरे गाढ़ी होती है तथा फलों में गुदे हुए छेदों के रास्ते अन्दर तक जाती है। यदि चाशनी को एक ही दिन 20 मिनट पकाकर गाढ़ा कर दिया जाये तो फलों के गुदे हुए छेद गाढ़ी चाशनी से बन्द हो जायेंगे तथा फलों में से पानी बाहर नहीं निकल पायेगा तथा फल सिकुड़ (Shrink) जायेंगे।

4. तैयार होने की पहचान

1. जब मुरब्बे की चाशनी शहद के समान गाढ़ी हो जाये।
2. प्रयोग की गई चीनी से तैयार मुरब्बा लगभग 1.5 गुना बनता है।
3. जब चाशनी में चीनी की मात्रा 68प्रतिशत हो जाये। चीनी की मात्रा रिफरैक्ट्रोमीटर द्वारा ज्ञात की जाती है।

तैयार मुरब्बे को साफ तथा सूखे पात्र में भर कर रखें।

सावधानियाँ :

1. तैयार मुरब्बा चाशनी में डूबा रहना चाहिये।
2. मुरब्बा तैयार होने के 8–10 दिन बाद चाशनी को चैक कर लें, कभी-कभी मुरब्बा बनाते समय फलों से पूरा पानी नहीं निकल पाता है जो बाद में निकलता है, जिसके कारण चाशनी पतली हो जाती है। यदि चाशनी पतली हो गई हो तो चाशनी को निकालकर गर्म करके गाढ़ा कर दें।
3. कभी-कभी मुरब्बे की चाशनी में चीनी जम जाती है। अत: थोड़ा साइट्रिक ऐसिड मिलाकर धीमी आँच पर गर्म करके चीनी के रवे दूर किये जा सकते हैं।

आँवला का मुरब्बा

आवश्यक सामग्री

आँवला	:	1.0 किग्रा.
चीनी	:	1.5 किग्रा.
पानी	:	400 मिली.
साइट्रिक ऐसिड	:	10 ग्राम

विधि–यथा सम्भव बड़े आकार के फल मुरब्बा बनाने के लिए उपयुक्त रहते हैं। सर्वप्रथम फलों को साफ पानी में डुबोकर 4–5 दिन रखें, प्रतिदिन पानी बदलते रहें ऐसा करने से फलों का हरा रंग कम हो जाता है। समयाभाव की स्थिति में 4–5 दिन पानी में रखना आवश्यक नहीं है।

1. गोदना–स्टेनलैस स्टील के काँटों द्वारा फलों को चारों ओर से भली भाँति गोद लेते हैं अर्थात् गुदे हुए फलों को दबाया जाय तो जूस गिरने

लगे।

2. फिटकरी घोल में रखना–1.5 प्रतिशत फिटकरी के घोल (पानी 1 लिटर तथा 15 ग्राम फिटकरी) में गुदे हुए फलों को चौबीस घण्टे रखने के बाद साफ पानी से कई बार धोयें।

3. ब्लान्चिंग–उबलते हुए पानी में 8-10 मिनट ब्लान्च करें।

4. चीनी की चाशनी बनाना–चीनी, पानी व साइट्रिक ऐसिड मिलाकर चाशनी बनायें तथा ब्लान्च किये गये फलों को मिला दें।

लगभग 3-4 दिन तक 5-5 मिनट सेब मुरब्बे की भाँति प्रतिदिन गर्म करके मुरब्बा तैयार कर लें।

अचार

हमारे देश में शायद ही कोई ऐसा परिवार होगा जहाँ अचार न बनाये जाते हों परन्तु देखा गया है कि कभी-कभी तैयार अचार अधिक गल जाते हैं अथवा खराब हो जाते हैं। अधिकांश अचार नमक की कमी के कारण खराब हो जाते हैं। अत: विभिन्न प्रकार के फल व सब्जियों से अचार बनाते समय नमक की मात्रा को निम्न तीन भागों में बाँटा गया है–

नमक 20 प्रतिशत–बीस प्रतिशत नमक की मात्रा खाद्य पदार्थों में सुरक्षाकारक के रूप में कार्य करती है अत: ऐसे अचार जिनका संरक्षण केवल नमक पर निर्भर करता है उनमें एक किलो तैयार फल के साथ 200 ग्राम नमक तथा आवश्यक मसाले प्रयोग करते हुए अचार तैयार करते हैं। जैसे नीबू का अचार तथा आम का बिना तेल वाला अचार जिसे कहीं-कहीं हींग वाला अचार भी कहते हैं।

नमक 15 प्रतिशत–ऐसे फल अथवा सब्जियाँ जिनका स्वाद कड़वा, तीखा, कसैला अथवा खट्टा होता है उसमें एक किलो तैयार फल या सब्जी के साथ नमक 150 ग्राम, सरसों का तेल 250 ग्राम, ऐसिटिक ऐसिड 5 मिग्रा, सोडियम बैन्जोइट 1 ग्राम तथा आवश्यक मात्रा में मसाले प्रयोग करते हुए अचार तैयार करते हैं जैसे–करेला, आँवला, मिर्च, आम टैटी, प्याज, करौंदा इत्यादि।

नमक 10 प्रतिशत–ऐसे फल अथवा सब्जियाँ जिनका स्वाद लगभग फीका होता है उनमें एक किलो तैयार सब्जी या फल के साथ नमक 100 ग्राम, ऐसिटिक ऐसिड 10 मिग्रा, सोडियम बैन्जोइट 1 ग्राम, तेल 250 ग्राम तथा आवश्यक मात्रा में अन्य मसाले प्रयोग करते हुए अचार तैयार करते हैं। जैसे–गाजर, गोभी, कटहल, मूली शलजम इत्यादि।

सब्जियों का मिश्रित आचार

आवश्यक सामग्री

फूल गोभी	:	1 किलो
हरे मटर	:	500 ग्राम
गाजर	:	500 ग्राम
हरी मिर्च	:	500 ग्राम
नीबू	:	250 ग्राम
मूली	:	500 ग्राम

(सब्जियों का कुल भार : 3.250 किग्रा.)

(तैयार सब्जियों का कुल भार : 2.00 किग्रा.)

नमक	:	200 ग्राम
पिसी हल्दी	:	50 ग्राम
पिसी लाल मिर्च	:	30 ग्राम
पिसा गर्म मसाला	:	20 ग्राम
सौंफ मोटी कुटी हुई	:	50 ग्राम
राई मोटी कुटी हुई	:	50 ग्राम
हींग	:	आवश्यकतानुसार
सरसों का तेल	:	500 ग्राम
अदरक	:	200 ग्राम
ऐसिटिक ऐसिड	:	10 मिलिग्राम
सोडियम बैन्जोइट	:	2 ग्राम

विधि–सभी सब्जियों को छीलकर खाने योग्य दशा में काटकर तैयार करके गाजर व गोभी को 6-7 मिनट तथा मटर के दानों को 4-5 मिनट ब्लान्च (Blanching) करके 10 मिनट के लिए कपड़े पर फैला दें। ताकि अतिरिक्त पानी निकल जाए। ब्लान्च की हुई सब्जियों को किसी टब या भगोने में रखें तथा कटी हुई हरी मिर्च, कटा हुआ अदरक, नीबू, नमक, पिसे मसाले, मोटी कुटी हुई (दरदरी) राई, सौंफ व हींग मिला दें। तेल को गर्म करके गर्म या ठण्डा होने पर मिलाने के बाद ऐसिटिक ऐसिड व सोडियम बैन्जोइट मिलाकर तैयार अचार को उपयुक्त बर्तन में भर कर रख दें। लगभग 2-3 दिन बाद अचार खाने में प्रयोग किया जा सकता है।

आम का अचार

आवश्यक सामग्री :

कच्चे आम की फाँकें	:	5 किलो
नमक	:	750 ग्राम
पिसी हल्दी	:	125 ग्राम
पिसी लाल मिर्च	:	75 ग्राम
पिसा गर्म मसाला	:	50 ग्राम
सौंफ मोटी कुटी हुई	:	125 ग्राम
मेथी (साबुत)	:	100 ग्राम
कलौंजी (साबुत)	:	75 ग्राम
हींग पिसी हुई	:	5 ग्राम
सरसों का तेल	:	1.5 लिटर
ऐसिटिक ऐसिड	:	20 मिलिग्राम
सोडियम बैन्जोइट	:	5 ग्राम

विधि–अचार के लिए देशी जाति के कच्चे आम उपयुक्त रहते हैं। आम को धोकर चार या आठ टुकड़ों में काट लें। तैयार कटे हुए टुकड़ों में

नमक व सभी मसाले मिलाकर कपड़े द्वारा ढककर 1-2 दिन धूप में रखने के बाद गर्म किया हुआ तेल ऐसिटिक ऐसिड व सोडियम बैन्जोइट मिलाकर उपयुक्त बर्तन में भर लें। लगभग 15 या 20 दिन बाद अचार खाने योग्य तैयार हो जाता है।

नीबू का अचार

आवश्यक सामग्री :

नीबू	:	1 किलो
काला नमक	:	50 ग्राम
नमक	:	150 ग्राम
अजवाइन	:	20 ग्राम
अदरक	:	50 ग्राम
गर्म मसाला पाउडर	:	25 ग्राम
काली मिर्च पाउडर	:	25 ग्राम

विधि–नीबू को धोकर पोंछ लें। नीबू को चार टुकड़ों में काट लें या इस प्रकार से काटें कि चारों टुकड़े आपस में जुड़े रहें। पिसा हुआ नमक, साबुत अजवाइन, मसाले तथा बारीक कटे हुए अदरक को अच्छी प्रकार मिला लें। कटे हुए नीबू को थोड़ा-थोड़ा दबाकर रस निकाल लें तथा तैयार मसाले को नीबू में भर कर किसी बर्तन में दबा-दबा कर रखते जाएँ। निकला हुआ रस ऊपर से मिला दें। लगभग एक माह बाद खाने योग्य तैयार हो जाता है। कभी-कभी अचार के बर्तन को हिलाते रहें।

नोट–यदि अचार को खट्टा-मीठा बनाना हो तो 500 ग्राम चीनी तैयार अचार में मिला दें अथवा किसी भी मुरब्बे की बची हुई चासनी इच्छानुसार मात्रा में मिला दें।

नमकीन नीबू के अचार में छोटी हरड़ 50 ग्राम, छोटी पीपल 25 ग्राम तथा लौंग 25 ग्राम मिलाने पर इसके गुण और भी बढ़ जाते हैं।

टमाटर सॉस अथवा कैचप

आवश्यक सामग्री

टमाटर	:	2 किग्रा.
अदरक	:	25 ग्राम
प्याज	:	50 ग्राम
लहसुन	:	05 ग्राम
ऐसिटिक ऐसिड	:	10 मिलिग्राम
चीनी	:	160 ग्राम
नमक	:	25 ग्राम
पिसी लालमिर्च	:	10 ग्राम
पिसा गर्म मसाला	:	10 ग्राम
सोडियम बैन्जोइट	:	01 ग्राम

विधि–पूर्ण रूप से पके हुए टमाटर, सॉस बनाने के लिए उपयुक्त रहते हैं। टमाटर को धोकर काट लेते हैं। अदरक, प्याज व लहसुन को छीलकर बारीक काटकर या कूटकर कटे हुए टमाटर के साथ मिलाकर प्रैशर कूकर में तीन-चार सीटी ले लें तथा स्टेनलैस स्टील की बारीक छलनी द्वारा छान लें। बीज व छिलका रहित टमाटर के रस को पकाने के लिए गैस पर रख दें।

चीनी व नमक मिलाना–रस के गाढ़े हो जाने पर चीनी तथा नमक मिला दें।

मसाले मिलाना–घरेलू स्तर पर निम्न किसी भी एक विधि के द्वारा मसाले मिलाये जा सकते हैं।

(1) मसाले का सत्व मिलाना–गर्म मसाला तथा पिसी लालमिर्च को 200 मि.लि. पानी के साथ 7-8मिनट उबालकर छान लें। इस प्रकार तैयार मसाले के सत्व को पकाते हुए सॉस में अपने स्वाद के अनुसार एक या दो बार में मिला दें।

(2) बैग मैथड–इस विधि के अन्तर्गत पिसी लालमिर्च व गर्म मसाले को छन्ने कपड़े में बाँधकर पकाते हुए टमाटर रस में डाल देते हैं। सॉस के तैयार हो जाने पर मसाले की थैली को बाहर निकाल लेते हैं। इस विधि के अन्तर्गत ध्यान रखते हैं कि थैली खुल न जाये तथा मसाले की थैली रस में डूबी रहनी चाहिये।

(3) मसाले सीधे मिलना–पिसे हुए मसाले को कपड़े द्वारा छानकर अपने स्वाद के अनुसार सीधे मिला देते हैं।

तैयार होने की पहचान–पकते हुए सॉस में से बहुत थोड़ा सॉस किसी प्लेट पर रखें और जब रखे हुए सॉस के किनारों से पानी बहना बन्द हो जाये, तब सॉस तैयार मानते हैं।

सोडियम बैन्जोएट तथा ऐसिटिक ऐसिड मिलाना–सॉस के तैयार हो जाने पर गैस को बन्द कर दें तथा सोडियम बैन्जोइट व ऐसिटिक ऐसिड मिलाकर उपयुक्त सॉस बोतल में गर्म-गर्म सॉस ऊपर तक भरें तथा ढक्कन लगा दें।

जैम

फल के गूदे के साथ निश्चित मात्रा में चीनी तथा खटास मिलाकर निश्चित समय तक पकाते हैं जो तैयार होने पर ठण्डी दशा में लगभग दही के समान जम जाता है। तैयार जैम में चीनी की मात्रा लगभग 68-70 प्रतिशत होने के कारण यह चीनी द्वारा संरक्षित रहता है। निम्न फलों से अलग-अलग अथवा मिलाकर जैम बना सकते हैं, जैसे–सेब, आम, नाशपाती, अनन्नास इत्यादि।

सेब का जैम

आवश्यक सामग्री–सेब 1 किग्रा., पानी 200 मि.लि., साइट्रिक ऐसिड 7-8ग्राम, चीनी 750 ग्राम, औरेन्ज-रेड कलर तथा एमरन्थ कलर आवश्यकता के अनुसार, सेब अथवा मिक्स फ्रूट एसेन्स (सुगन्ध) 20 बूँद।

विधि–जैम बनाने के लिये खट्टे सेब उपयुक्त रहते हैं। फलों को छिलके सहित काटकर प्रैशर कूकर में 200 ग्राम पानी मिलाकर 4-5 सीटी आने तक पकाने के बाद स्टील या ऐल्यूमीनियम की छलनी द्वारा

छान लें। छने हुए गूदे के साथ लगभग बराबर की मात्रा में चीनी, आवश्यक मात्रा में दोनों प्रकार के रंग मिला दें। तथा पकाते समय लगातार चलाते रहें। थोड़ा गाढ़ा होने पर साइट्रिक ऐसिड अथवा समान मात्रा में टाटरी मिला दें।

तैयार होने की पहचान–

1. प्लेट टेस्ट–यह पूर्णत: घरेलू पहचान है। इस विधि के अन्तर्गत पके हुए जैम में से बहुत थोड़ा जैम किसी प्लेट पर रखकर ठण्डा करके प्लेट को टेढ़ा करते हैं, जब प्लेट पर रखा हुआ जैम एक साथ एक ही दिशा में सरकने लगे तब जैम तैयार मानते हैं।

2. थर्मामीटर द्वारा–जब पकते हुए पदार्थ का तापक्रम 222° फारेनहाइट हो जाये।

3. रिफरैक्ट्रोमीटर द्वारा–जब पकते हुए पदार्थ में चीनी की मात्रा लगभग 68–70 प्रतिशत हो जाये।

4. भार द्वारा–सामान्यत: प्रयोग की गई चीनी से तैयार जैम, लगभग डेढ़ गुना बनता है।

किसी भी विधि द्वारा जैम के तैयार होने की पहचान होने के बाद गैस को बन्द कर दें, तथा आवश्यक मात्रा में एसेन्स मिलाने के बाद चौड़े मुँह के उपयुक्त जार में गर्म–गर्म भर दें।

जैली

यह पैक्टिन युक्त फलों से पैक्टिन द्रव प्राप्त करके निश्चित मात्रा में चीनी व खटास मिलाकर निश्चित समय तक पकाते हैं, जो तैयार होने पर ठण्डा होने के बाद पारदर्शक स्थिति में लगभग दही के समान जम जाती है। अमरूद, करौंदा, खट्टे सेब, आलू बुखारा इत्यादि फलों में पैक्टिन पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। अन्य फलों से जैली बनाते समय पैक्टिन के अभाव में अतिरिक्त पैक्टिन पाउडर मिलाकर जैली बनाई जा सकती है। तैयार जैली में चीनी की मात्रा लगभग 70 प्रतिशत रखी जाती है। अत: ये चीनी द्वारा संरक्षित पदार्थ हैं।

अमरूद जैली

आवश्यक सामग्री–अमरूद 750 ग्राम, पानी 1 लिटर, साइट्रिक ऐसिड 6–7 ग्राम, चीनी 500 ग्राम।

विधि–जैली बनाने के लिए पूर्ण विकसित तथा कम पके हुए फल उपयुक्त रहते हैं। फलों को धोकर पतले टुकड़े काटकर पानी के साथ मध्यम आँच पर लगभग 35 मिनट पकाने के बाद कपड़े द्वारा बिना दबाये छान लेते हैं। छने हुए द्रव को पैक्टिन द्रव कहते हैं। जैली के लिये यह द्रव ही उपयोग में लाया जाता है। कपड़े में बचा हुआ फल तथा गूदे का भाग प्रयोग में नहीं लाया जाता है। प्राप्त पैक्टिन द्रव के साथ लगभग बराबर की मात्रा में चीनी मिलाकर पकाते हैं। चीनी के घुल जाने पर छानकर किसी बड़े बर्तन में तेज आँच पर पकाते हैं। पकाते समय चलाना आवश्यक नहीं है। तैयार होने से पूर्व साइट्रिक ऐसिड मिला दें। यदि जैली में रंग मिलाना हो तो आवश्यक मात्रा में अनुकूल रंग जैली तैयार होने से पूर्व मिला सकते हैं। अन्यथा रंग व सुगन्ध मिलाना आवश्यक नहीं है।

तैयार होने की पहचान

1. पकते हुए पदार्थ में से बहुत थोड़ा पदार्थ किसी चम्मच में ठण्डा करके नीचे की ओर गिराते हैं, जब ठण्डा किया हुआ पदार्थ चम्मच के साथ शीट जैसे आकार में बनने लगे तब जैली तैयार मानते हैं।

2. थर्मामीटर द्वारा–जब पकते हुए पदार्थ का तापक्रम 222° फारेनहाइट हो जाये।

3. रिफरैक्ट्रोमीटर द्वारा–जब पकते हुए पदार्थ में चीनी की मात्रा लगभग 70 प्रतिशत हो जाये।

तैयार होने की पहचान करने के बाद गैस बन्द कर दें तथा जैली के ऊपर आये हुए झाग निकालकर चौड़े मुँह के जार में गर्म–गर्म भर दें तथा ठण्डा होने पर ढक्कन लगा दें।

शरबत

सभी प्रकार के शरबत चीनी द्वारा संरक्षित किये जाते हैं। अत: तैयार शरबत में चीनी की मात्रा लगभग 68–70 प्रतिशत होना अनिवार्य है। निम्नलिखित प्रकार के शरबत लोकप्रिय हैं–

1. फलों के शरबत जैसे–नीबू, अनार, सन्तरा, अनन्नास, इत्यादि।
2. फूलों तथा बूटियों के शरबत जैसे–गुलाब, खस, केवड़ा इत्यादि।
3. कृत्रिम शरबत जैसे–गुलाब, खस, सन्तरा, अनन्नास इत्यादि।

उपरोक्त विभिन्न प्रकार के शरबत बनाते समय फल, फूल अथवा बूटियों के रंग अथवा स्वाद के अनुसार निम्न तालिका के अनुसार शरबत तैयार किया जा सकता है।

आवश्यक सामग्री–चीनी 800 ग्राम, पानी 250 ग्राम, साइट्रिक ऐसिड 4 से 12 ग्राम, फल/फूल/बूटियों का रस अथवा अर्क 100 ग्राम, अनुकूल खाद्य रंग आधा ग्राम, सुगन्ध 2–3 ग्राम व एक खाली बोतल।

विधि–चीनी, पानी तथा साइट्रिक ऐसिड को मिलाकर पकाएँ तथा चलाते रहें, जब चीनी घुल जाये तब छानकर ठण्डा कर लें। ठण्डी चाशनी में फल का रस/फूल/बूटियों से तैयार अर्क, शरबत के अनुकूल रंग व एसेन्स मिलाकर शरबत तैयार करते हैं।

नीबू का शरबत

यह विधि बहुत प्राचीन है तथा बहुत आसान भी। एक बोतल में लगभग 800 ग्राम चीनी भर लें। 500 ग्राम नीबू से लगभग 225 ग्राम से 250 ग्राम रस निकालकर छानकर बोतल में मिला दें। इस बोतल को चीनी के घुलने तक धूप में रख दें। जब चीनी घुल जाय तब यदि आप चाहें तो 25 ग्राम अदरक का रस तथा आधा चम्मच पुदीने का रस मिला सकते हैं। इस प्रकार तैयार शरबत चीनी द्वारा संरक्षित रहता है।

स्क्वैश

सामान्यत: सभी प्रकार के स्क्वैश में रस 25 प्रतिशत, चीनी 45 से

50 प्रतिशत, खटास–1.2 से 1.5 प्रतिशत तथा शेष मात्रा पानी की पाई जाती है। इसका संरक्षण निम्नलिखित रासायनिक पदार्थों द्वारा किया जाता है–

1. पौटेशियम मैटा बाई सल्फाइट–इसके द्वारा हल्के रंग वाले फलों के रस तथा तैयार स्क्वैश सुरक्षित किये जाते हैं जैसे–नीबू, सन्तरा, आम, बेल, लीची, अनन्नास इत्यादि।

2. सोडियम बैन्जोइट–इसके द्वारा गहरे रंग वाले फलों के रस तथा तैयार स्क्वैश संरक्षित किये जाते हैं जैसे–फालसा, अनार, जामुन इत्यादि।

सन्तरा स्क्वैश

आवश्यक सामग्री–सन्तरा 500 ग्राम, चीनी 500 ग्राम, साइट्रिक ऐसिड 10 ग्राम, पानी 300 मि.लि., के.एम.एस. 1 ग्राम, ऑरैन्ज कलर $\frac{1}{2}$ ग्राम, ऑरैन्ज एसेन्स 2 ग्राम, खाली बोतल–1

विधि–सर्वप्रथम चीनी, पानी व साइट्रिक ऐसिड को मिलाकर चाशनी बनायें। छानकर ठण्डा कर लें। चाशनी के ठण्डे होने के बाद सन्तरे का रस जूस मशीन द्वारा अथवा काटकर, हाथ से दबाकर सीधे ठण्डी चासनी वाले बर्तन में निकाल लें। रस मिलाने के बाद आवश्यक मात्रा में रंग मिलाकर छान लें। एसेन्स मिलाने के बाद के.एम.एस. को थोड़े से पानी में घोलकर तैयार स्क्वैश में भली भाँति मिलाकर साफ बोतल में तुरन्त भर दें। बोतल का शीर्ष भाग लगभग 1 इंच खाली रखें।

उपरोक्त वर्णित मुरब्बा, अचार, सॉस, जैम, जैली, शरबत व स्क्वैश पाक प्रयोगशाला में बनाकर प्रायोगिक पुस्तिका में विधि लिखें और उनके स्वाद, रंग, खुशबू, प्रवृत्ति व दिखावट के बारे में सारिणी बनाकर पाँच बिन्दु स्वीकार्य पैमाने पर अंकित करें। बहुत अच्छा (5), अच्छा (4), ठीक (3), बुरा (2), बहुत बुरा (1)

परिरक्षित पदार्थ	स्वाद	रंग	खुशबू	प्रवृत्ति	दिखावट	अन्य टिप्पणी
1. सेव मुरब्बा						
2. आँवला मुरब्बा						
3. सब्जियों का मिश्रित अचार						
4. आम का अचार						
5. नीबू का अचार						
6. टमाटर सॉस						
7. सेब का जैम						
8. अमरूद जैली						
9. नीबू का शरबत						
10. सन्तरा स्क्वैश						

इकाई-IV : वस्त्र एवं परिधान

अध्याय 7

विभिन्न प्रकार के वस्त्रों को पहचानना

वस्त्र उद्योग की क्रांति ने अनुकरणीय रेशे एवं रेशों की नकल कर वस्त्र निर्माण का प्रादुर्भाव किया। रेशमी वस्त्र सूती की तरह और सूती रेशमी की तरह परिसज्जाओं द्वारा तैयार किये जाने लगे, जिससे उपभोक्ता को मूल रेशे के चयन में कठिनाई होने लगी। सही चयन हेतु रेशों का परीक्षण करना आवश्यक हो गया। परीक्षण के मुख्यत: 3 तरीके अपनाए जाते हैं–1. भौतिक, 2. सूक्ष्मदर्शी, 3. रासायनिक तालिका 7.1.

भौतिक (Physical test)

1. **बाह्याकृति परीक्षण**–वस्त्र की बाह्याकृति देख-छूकर रेशों की लम्बाई, चमक, कोमलता तन्यता लचीलापन आदि की जाँच वस्त्र में से एक धागा निकाल कर ऐंठन खोलकर की जाती है।
2. लम्बाई एवं व्यास को नापा जाता है।
3. **रेशे तोड़ परीक्षण**–इसमें धागा खींच कर तोड़ा जाता है, फिर उसके स्वरूप को पहचानते हैं।
4. **सिलवट परीक्षण**–वस्त्र को तह करके, दबाकर या मुट्ठी कस कर दबाया जाता है, फिर छोड़ने पर वस्त्र पर पड़ी सिलवटों का प्रभाव कितना व कितनी देर तक रहता है, जाँच की जाती है।
5. **दाहन परीक्षण**–एक ही वर्ग के रेशों से बने वस्त्र का दाहन परीक्षण आसानी से किया जाता है। धागों को जलाकर लौ का एक उसकी राख का सूक्ष्मता एवं गहनता से परीक्षण किया जाता है।
6. **वस्त्र विदीर्ण परीक्षण**–वस्त्र को कड़ा कर खींचकर फाड़ा जाता है और जाँच की जाती है, इसके अतिरिक्त स्याही परीक्षण, तेल परीक्षण, नमी परीक्षण, निष्पीड़न परीक्षण आदि भी वस्त्र को जाँचने के लिए करते हैं।

सूक्ष्मदर्शी परीक्षण :

इस परीक्षण में रेशे का आकार, प्रकार, बनावट, लचीलापन, खुरदरापन आदि का परीक्षण करते हैं, इस परीक्षण हेतु सर्वप्रथम–

तालिका : **वस्त्रों के रेशों का परीक्षण**

भौतिक	बाह्याकृति External Appearance	लम्बाई एवं व्यास Length and Diameter	सिलवट परीक्षण Crease Test	तेल परीक्षण Oil Test	वस्त्र विदीर्ण Fabric Tearing Test	सूक्ष्मदर्शी परीक्षण Microscopic Test	चित्र
कपास (सूती वस्त्र)	1. सख्त, खुरदरा, फुज्जीदार	$\frac{1}{2}$'' से $3\frac{1}{2}$'' लंबा	शीघ्रता से व अधिक समय तक	धब्बा अपारदर्शी गहरा धुँधला दिखता है	अधिक जोर लगाने पर चर की आवाज के साथ फटता है	अपरिपक्व अवस्था युक्त नलिका में तरल सैप भरा रहता है, परिपक्व रेशा चपटा, खुरदरा रिबन की तरह बल खाया हुआ।	
	2. चमक एवं प्रत्यास्थता की कमी	16-20 मी. व्यास					

भौतिक External	बाह्याकृति Length and Appearance	लम्बाई एवं व्यास Crease Test Diameter	सिलवट परीक्षण Oil Test	तेल परीक्षण Fabric Tearing Test	वस्त्र विदीर्ण Microscopic Test	सूक्ष्मदर्शी परीक्षण	चित्र
	3. ठंडा						
ऊनी वस्त्र	1. कोमल 2. प्रत्यास्थता एवं लचीलापन 3. गर्म	1''-3'' लम्बा	सिलवट नहीं पड़ती			खुरदरी, टेढ़ीमेढ़ी बल खाती हुई सतह, दोनों सिरे नुकीले	
रेशम वस्त्र	1. चिकना, मुलायम, चमकदार	1200-4000 फीट	सिलवट थोड़ी देर तक ही रहती है		फटते समय तीक्ष्ण एवं कर्कश आवाज निकलती है, कपड़ा खिंचता है	पारदर्शी छड़ जैसा गोलाकार, चिकना, चमकदार दिखता है धारियाँ दिखती हैं	
रेशमी वस्त्र	चमकदार, आकर्षक, मुलायम, रेशम से भारी, कड़ा कम लचकदार	लंबाई व व्यास इच्छानुसार	तजे नए आकर्षण मुक्त एवं सिकुड़न रहित दिखते हैं		अनुकरणीय वस्त्र होने से बुनाई के अनुसार गुण-धर्म	अर्द्धपारदर्शी चिकना, चमकदार, पतला, बारीक महीन, काच की छड़ की भाँति गोल	
नायलॉन वस्त्र	स्पर्श करने पर कभी नरम कड़ा गरमाहट युक्त कोमलता, बारिकी इच्छा-नुसार नियंत्रित	लम्बाई व व्यास इच्छानुसार	जल्दी एवं सरलता से सिलवट पड़ती है किन्तु टाँग कर रखने पर टूट भी जाती है।	आग शीघ्रता से पकड़ता है, लौ चमकदार, पीले नारंगी रंग की होती है, राख भूरापन लिए हुए	रेशम के समान कटना, तेज चीखती हुई आवाज, किनारे, लहरदार	पारदर्शी, छड़ के जैसा गोलाकार, चिकना, चमकदार, नाइट्रो-सेल्यूलोज, रेशों पर लम्बवत् धारियाँ	

1. वस्त्र की परिसज्जाओं को हटाया जाता है।
2. फिर वस्त्र से रेशा निकालकर 5 मिनट तक जल में डुबाकर रखा जाता है।
3. तत्पश्चात् साफ-सुथरी स्लाइड पर एक बूँद पानी की डालकर रेशे को लम्बवत् दिशा में रखते हैं।
4. 10 प्रतिशत ग्लिसरीन घोल की 1 बूँद डालते हैं। अब कवर स्लिप लगाकर सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से रेशों के ताने-बाने का अवलोकन करते हैं।

रासायनिक परीक्षण-आवश्यक साधन एवं उपकरण कुशल, प्रशिक्षित एवं अनुभवी निरीक्षणकर्ता द्वारा रेशों पर अम्ल-क्षार की प्रतिक्रिया कराई जाती है तथा इसके प्रभाव को जाँचा जाता है।

विभिन्न वस्त्रों के नमूने इकट्ठे करके निम्न परीक्षणों द्वारा वस्त्र की पहचान करें-

रेशे	भौतिक परीक्षण	सूक्ष्मदर्शी
कपास ऊनी रेशमी		

अवलोकन बिन्दु–भौतिक परीक्षण–

1. बाह्याकृति
2. लम्बाई
3. सिलवट
4. जलने की क्रिया
5. वस्त्र विदीर्ण

सूक्ष्मदर्शी परीक्षण

पक्के रंग का परीक्षण–पानी, साबुन, प्रकाश, पसीना, ताप आदि का प्रभाव वस्त्र के रंग पर पड़ना–

परीक्षण हेतु–वस्त्र का गीला टुकड़ा सफेद कपड़े के बीच रखकर इस्तिरी करना। कच्चा रंग होने पर सफेद कपड़े पर रंग चढ़ जाएगा।

अध्याय 8

विभिन्न प्रकार की बुनाई को बनाना और पहचानना

बुनाई कला

फँदे से फँदा निकालकर वस्त्र का निर्माण बुनाई (Knitting) कहलाता है। निटिंग हाथ से एवं मशीन दोनों से की जाती है, केवल एक ही धागे से सलाइयों पर फँदे डालकर उन्हीं फँदों में से फँदा फँसाकर अगली पंक्ति हेतु फँदे निकालते हैं, मशीन से बुनाई करते समय वस्त्र के नमूनों, विविधता आदि के आधार पर धागों की एक से अधिक संख्या से फँदे बनाए जाते हैं, इससे गर्म वस्त्र, स्वेटर, टोपा, मोजा एवं बनियान अण्डरवियर तथा अन्य होजरी के वस्त्र बनाए जाते हैं।

बुनाई के लिए आवश्यक सामग्री

1. **ऊन या निटिंग यार्न**–विभिन्न रंगों व मोटाई वाली ऊन या निटिंग यार्न का उपयोग बुनाई हेतु करते हैं।
2. **बुनाई की सलाइयां**–कई प्रकार की धातु एवं प्लास्टिक की सलाई का उपयोग किया जाता है।
1. **सामान्य सीधी सलाइयाँ**–ये जोड़ों में 0 से 16नम्बरों तक की उपलब्ध है, इसका एक सिरा नुकीला एवं दूसरे सिरे पर घुंडी लगी होती है। सलाइयों के नम्बर बढ़ने के साथ सलाइयों की मोटाई घटती जाती है।
2. **दोनों साइड से नुकीली**–दोनों साइड से नुकीली चार सलाइयों का सेट स्वेटर के गले, मोजे, दस्ताने आदि बुनने के लिए प्रयोग में लाते हैं।
3. **गोल सलाइयाँ**–सलाइयों की नोक एक-दूसरे के सामने होती है, इसमें परिधान को सिलने की आवश्यकता नहीं होती।
4. **सिलाई के लिए सूई**–मोटी सूई जिसकी नोक कम मोटी हो उपयोग में लाते हैं।

1. बुनाई की सलाइयों द्वारा फँदे डालकर उलटा एवं सीधा बनना, फँदे डालना एवं फँदे बन्द करते हुए 2 उपयोगी नमूने बनाना।

बुनाई की पहचान एवं निर्माण

वस्त्र का निर्माण ताने व बाने के धागों की भिन्न-भिन्न संख्या एवं क्रम से एक-दूसरे में फँसाकर विभिन्न प्रकार की बुनाई की जाती है, ये बुनाई वस्त्र को मजबूती एवं स्वरूप प्रदान करती है।

गुंथने की सरल विधि

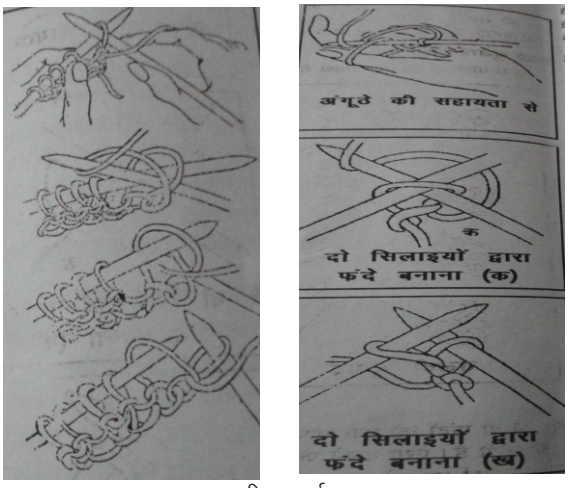

उल्टी बुनाई

चित्र 8.1 वस्त्रों की बुनाई

बुनाई कला

प्रश्न

1. निटिंग कला द्वारा 2 नमूने बनाकर प्रायोगिक पुस्तिका में लगाइये।
2. विभिन्न वस्त्रों की बुनाई के नमूने इकट्ठे करना बुनाई को पहचान कर नमूने प्रायोगिक पुस्तिका में लगाइये। (केवल तीन)
3. सादी बुनाई, ट्वील बुनाई, साटिन बुनाई आदि में से कोई दो के कागज या मोटी ऊन से नमूने बनाकर प्रायोगिक पुस्तिका में लगाइये।

अध्याय 9

बंधेज, ब्लॉक एवं प्रिंटिंग के नमूने तैयार करना

बंधेज

राजस्थान एवं गुजरात इस कला के लिए प्रसिद्ध हैं। हमारे देश में यह सुहाग व सौभाग्य का प्रतीक है। इसमें विशेषकर लाल, हरे, पीले रंग का प्रयोग किया जाता है। परन्तु आज के फैशन के दौर में सभी रंगों का प्रयोग किया जाता है।

सामग्री :

वस्त्र, रंग, धागा, साधारण नमक, लकड़ी का चम्मच, भगोना एवं गैस, पानी, डिजाइन देने के लिए सूई, नुकीली पेन्सिल या अन्य रंगने वाला पदार्थ।

वस्त्र–जॉर्जेट, मलमल, कैम्ब्रिक, सिल्क आदि।

बाँधने की विधियाँ :

1. **नोक द्वारा**–कील, पेन्सिल, तीखी लकड़ी की नोक पर कपड़ा रखकर गाँठ बाँधना।
2. **विभिन्न वस्तुएँ बाँधना**–चना, मटर, बीज, मोती आदि कपड़े पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बाँधना।
3. **गाँठे लगाना**–वस्त्र को पकड़कर गाँठे बाँधना।
4. **वस्त्र में तह लगाकर**–डिजाइन के अनुसार धागा बाँधना या क्लिप रबड़ बैण्ड लगाना।
5. **लहरिया**–वस्त्र को तिरछा एक कोने से दूसरे कोने तक मोड़कर डिजाइन के अनुसार धागा बाँधना।
6. **मार्बलिंग**–वस्त्र को क्रश करके गोला बनाकर उसे धागे से बाँध दिया जाता है।

रंगने की विधि :

वस्त्र से मॉड हटाकर वस्त्र को डिजाइन के अनुसार बाँध दिया जाता है। रंग को थोड़े पानी में अच्छी तरह घोल लें। फिर वस्त्रों के अनुसार पानी लेकर गर्म करें। साधारण नमक व घुला हुआ रंग डाल दें, फिर बँधे हुए कपड़े को उबलते पानी में डालकर कुछ देर रखें एवं कपड़े को लकड़ी के चम्मच से हिलाते रहें। कम-से-कम 15 मिनट तक रंग में वस्त्र को डालकर हिलाते रहें। तत्पश्चात् बाहर निकालकर बहते पानी के नीचे तब तक रखें जब तक रंग निकलना बन्द नहीं हो जाए। रंग पक्का करने हेतु कलर फिक्सनर या नमक युक्त ठंडे पानी में 3-4 घंटे छोड़ दीजिए। फिर बाहर निकालकर साफ पानी से धोकर, निचोड़कर, छायादार जगह पर सुखाएं।

वस्त्र को एक से अधिक रंगों में रंगने के लिए हल्के रंग से गहरे रंग में बिना नमूने खोले पुनः बाँधते हुए रंगने की क्रिया दोहराएं। सूखने पर धागे क्लिप आदि को खोलकर इस्तिरी करें।

बंधेज के तीन नमूने तैयार कर एवं प्रायोगिक पुस्तिका में लगाएं।

ब्लॉक प्रिंटिंग (ठप्पा छपाई) :

ठप्पे (लकड़ी या लिनोलियम के विभिन्न आकारों एवं डिजाइनों युक्त) का उपयोग कर वस्त्र पर रंग द्वारा छपाई करना।

सामग्री–वस्त्र, छपाई के रंग, यूरिया एक्राफिक्स, बाइंडर, लकड़ी के विभिन्न आकार एवं डिजाइन के साँचे, स्पंज, छपाई के टेबल।

विधि–रंग को चौड़े मुँह के बर्तन में छपाई के रंग यूरिया, एलाफिक्स बाइंडर डालकर पेस्ट के रूप में तैयार करते हैं।

रंगाई में अलग-अलग रंग का प्रयोग करना हो तो सबके लिए अलग-अलग ठप्पे को प्रयोग करते हैं।

छपाई की टेबल पर मुलायम गद्दा या कम्बल बिछाकर उस पर प्लास्टिक शीट लगा तत्पश्चात् छपाई करने वाला वस्त्र बिछाते हैं। अब रंग पेस्ट को स्पंज में डाल देते हैं। उस ठप्पा को रंग वाले स्पंज पर धीरे से दबाकर छपाई वाले वस्त्र पर डिजाइन के अनुसार लगाते हैं। एक रंग के सूखने पर दूसरे रंग का प्रयोग करते हैं। यह क्रिया सम्पूर्ण वस्त्र पर दोहराते हैं। रंग एक समान आए उसके लिए एक समान दबाव डालते हैं। छपाई के पश्चात् अच्छी तरह के सूखने पर कपड़ा पलटकर इस्तिरी करते हैं।

ब्लॉक प्रिंटिंग के 3 नमूने तैयार करके प्रायोगिक पुस्तिका में लगाएं।

इकाई-V : गृह प्रबन्धन

अध्याय 10

गृह सज्जा-पुष्प सज्जा व फर्श सज्जा करवाना तथा प्रतियोगिता आयोजित करना

गृह सज्जा का अर्थ–घर को सजाने-संवारने की कला को 'गृह सज्जा' या 'आन्तरिक सज्जा' कहते हैं।

Interior decoration is a creative art which can transform an ordinary house. It is the art of adjusting the space and equipment to suit the fundamental cultural needs of the dwellers and thus creating a pleasant atmosphere—Stella Sundararaj.

गृह सज्जा के उद्देश्य :

1. **सुन्दरता**–गृह सज्जा का पहला उद्देश्य है–घर को सुन्दर एवं आकर्षक रूप देना। सुन्दर चीजें चाहे वे सजीव हों अथवा निर्जीव सभी को लुभाती हैं। 'सुन्दरता गुणों का वह संयोजन है जो आँखों, कानों एवं मन को आनन्द एवं खुशी प्रदान करने वाला है।'

   गृह सज्जा के संयोजन से ही इसका स्वरूप बनता है। अत: गृह सज्जा एवं कला को एक-दूसरे का पूरक कहा जाता है। कला के तत्त्वों एवं सिद्धान्तों का अध्ययन करके किसी भी वस्तु की सुन्दरता को आँका जा सकता है। कला के मुख्य सिद्धान्त हैं–

   (i) अनुपात (Proportion)

   (ii) संतुलन (Balance)

   (iii) लय (Rhythm)

   (iv) दबाव (Emphasis)

2. **अभिव्यंजका**–सुसज्जित घर वही होता है जिसमें संगतपूर्णता हो, जिसकी सभी वस्तुएँ उचित अनुपात, बनावट एवं लय की हो। उनकी आकार-आकृति में अनुरूपता हों।

   अभिव्यंजका के निम्न गुण हैं–

   (1) औपचारिकता (Formality)

   (2) अनौपचारिकता (Informality)

   (3) स्वाभाविकता (Naturally)

   (4) आधुनिकता (Modernity)

3. **उपयोगिता/कार्यात्मकता**–गृह सज्जा इस तरह करनी चाहिए कि कम-से-कम समय, शक्ति धन एवं ऊर्जा का व्यय हो। सामग्रियों को क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित करके इस तरह से रखना चाहिए एवं सज्जा आरामदायक एवं सुविधापूर्ण होनी चाहिए।

4. **विविधता**–कार्यों की विविधता के अनुसार कक्षों की सजावट में भी परिवर्तन करना आवश्यक है। गृह सज्जा में विविधता लाकर परिवार के सदस्यों में उमंग, आनन्द, हर्ष, खुशी, उत्साह भरा जा सकता है। ऊर्जा का संचार किया जा सकता है जिससे व्यक्ति को कार्य करने में स्फूर्ति आती है।

5. **मौलिकता**–वस्तुत: सृजन कला का दूसरा नाम है। कक्षों की सजावट व्यवस्था एवं उसके प्रबन्ध से गृहिणी तथा उसमें रहने वाले लोगों की रुचि, स्वभाव, प्रकृति, रहन-सहन की आदतों, संस्कृति आदि का पता चलता है।

6. **मितव्ययीता**–सामान्य जन भी कम-से-कम साधन का उपयोग कर मनोहारी एवं आकर्षक गृह सज्जा कर सकते हैं। कम-से-कम उपकरण-फर्नीचर उपसाधनों आदि के प्रयोग से भी सज्जा का आकर्षक, मनोहारी एवं लुभावना प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। मितव्ययीता न केवल अर्थ के सम्बन्ध में हो बल्कि समय एवं शक्ति के सम्बन्ध में भी होनी अनिवार्य है।

पुष्प सज्जा

पुष्प विन्यास का अर्थ–पुष्प विन्यास एक कला है। इसका मुख्य उद्देश्य वातावरण को सजीव, आकर्षक, लुभावना, सुन्दर, मनोहारी एवं सुगन्धित बनाना है। पुष्प विन्यास से आशय है–'विभिन्न प्रकार के फूलों, पत्तियों, कलियों, टहनियों एवं फूलदानों का कला के तत्त्वों एवं सिद्धान्तों के आधार पर एक ऐसा सृजन करना जिससे कि अवसर, स्थान, वस्तु, घर आदि की सुन्दरता एवं आकर्षण में कई गुना वृद्धि हो सके तथा सम्पूर्ण वातावरण में प्रसन्नता एवं आनन्द छा जाए।

पुष्प सज्जा में उपयोग लायी जाने वाली सामग्री :

1. **फूलदान अथवा फूल लगाने के पात्र (Flower pot or container)**– विभिन्न आकार, रंग, रूप, आकृति, बनावट,

डिजाइन के फूलदान बाजार में उपलब्ध हैं जो कि विभिन्न प्रकार के धातु, चीनी मिट्टी, संगमरमर, पत्थर, लकड़ी, प्लास्टिक आदि के बने व सुन्दर चित्रकारी–नक्काशी लिए होते हैं।

फूलदान के चयन में ध्यान रखने योग्य बातें :

पुष्प सज्जा की शैली, स्थान, मात्रा, फूलों के रंग, रूप, आकार आदि को ध्यान में रखते हुए फूलदान का चयन करना चाहिए।

— हल्के रंग के फूलों के साथ गहरे रंग के फूलदान शोभा देते हैं।

— खाने की मेज पर उथला फूलदान लगाना चाहिए।

— औपचारिक पुष्प सज्जा करनी है तो काँच के चिकने धरातल वाले फूलदान का चुनाव करना चाहिए।

— पुष्प सज्जा को मजबूती प्रदान करने, टहनियों को बाँधे रखने एवं सहारा प्रदान करने के लिए टहनी होल्डर का उपयोग करना चाहिए।

पुष्प सज्जा हेतु आवश्यक पौध सामग्री :

— फूलों को सूर्यास्त व सूर्योदय से पूर्व काटना चाहिए।

— फूलों को काटने के तुरन्द बाद पानी में डाल देना चाहिए।

— फूलों की हरी पत्तियों को हटा देना चाहिए।

— कुछ फूलों की टहनियों जैसे पॉपी, रबर के तने को काटने से दूध जैसा श्वेत पदार्थ निकलता है, ऐसे में फूलों को गीले कपड़े से लपेटकर उनकी टहनियों को उबलते पानी में 1–2 मिनट छोड़ देना चाहिए।

— फूलों की टहनियों को सदैव तिरछा काटना चाहिए। तिरछे कटे हुए भाग को चुटकी भर नमक लेकर रगड़ देना चाहिए। इससे फूल अधिक समय तक जीवित रहते हैं।

पुष्प व्यवस्था के प्रकार

1. रेखीय डिजाइन में पुष्प व्यवस्था :

(1) रेखीय पुष्प व्यवस्था करने से पूर्व सज्जाकर्ता को रेखीय डिजाइन को मस्तिष्क में बना लेना चाहिए।

चित्र 10.1 : **समूह विन्यास**

चित्र 10.2 : **इकेबाना**

(2) किस तरह की रेखा बनाई जानी है जैसे C, F, E, S अक्षर या कोई अन्य आकृति स्पष्ट होनी चाहिए।

(3) उपयुक्त फूलदान का चयन करके फूलदान की ऊँचाई एवं चौड़ाई से पुष्प व्यवस्था में ऊँचाई एवं चौड़ाई डेढ़ गुनी ज्यादा रहती है।

(4) रेखा की आकृति के अनुरूप टहनियों से आधार तैयार किया जाना चाहिए। यह ध्यान रहे कि बाह्य रेखा की निरन्तरता बनी रहे क्योंकि ये रेखाएँ ही व्यवस्था को गति देती हैं तथा इनकी लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई को स्पष्ट करती है।

(5) पुष्प व्यवस्था में खाली स्थान को भी पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिए। उप साधनों यथा–सीप, शंख, स्टारफिश, पत्थर, कंकड़ आदि रखकर भी सज्जा को आकर्षक बनाया जा सकता है।

2. समूह शैली में पुष्प व्यवस्था :

— समूहीकृत सज्जा ऊँचे आकार के फूलदान में की जानी चाहिए तथा फूलदान में ऊपरी सिरे तक तार की जाली लगा देनी चाहिए।

चित्र 10.3 : **लाइन**

— फूलदान में इतना पानी भरना चाहिए ताकि टहनियों का अन्तिम सिरा पानी में डूबा रहे।

— फूलदान की लम्बाई एवं चौड़ाई को ध्यान में रखते हुए इससे करीब $1\frac{1}{2}$ गुना लम्बाई की टहनियों का चयन करना चाहिए। पात्र की चौड़ाई से सज्जा की चौड़ाई दुगुनी होनी चाहिए।

— फूलों की टहनियों को तार की जाली की सहायता से विभिन्न दिशा में छितराकर व्यवस्थित करें। आड़ी खड़ी विकिरण रेखाओं का उपयोग किया जा सकता है।

— पुष्प सज्जा को आकर्षक बनाने तथा रुचि केन्द्र पर दबाव उत्पन्न करने के लिए सबसे बड़े सुन्दर चटकीले खूबसूरत रंग के फूलों को केन्द्र में स्थापित करना चाहिए।

3. **लघु पुष्प व्यवस्था**–इसकी लम्बाई सामान्यत: 4.5'' से 5.5'' रखनी चाहिए। इस प्रकार की पुष्प सज्जा छोटी कटोरी, गिलास, प्लेट, चौड़े मुँह की छोटी शीशी आदि में करनी चाहिए।

4. **मिली-जुली/मिश्रित पुष्प व्यवस्था**–इस प्रकार की पुष्प सज्जा को 'अमेरिकन शैली' की पुष्प सज्जा भी कहा जाता है। इसमें रेखीय शैली तथा समूहीकृत शैली के सबसे अच्छे गुणों एवं विशेषताओं को चुनकर इनके उपयोग से एक नवीन सज्जा कर सकते हैं।

5. **जापानी पुष्प सज्जा**–जापानी पुष्प सज्जा में फूलों, पत्तियों, टहनियों को विशेष रूप से सजाते हैं, जिसकी ऊँचाई 10-15 फीट तक होती है।

— **इकेबाना**–इसे चौड़े आकार के फूलदानों/गमलों में सजाया जाता है।

— **मोरीबाना एवं नाजीरे**–मोरीबाना में चौड़े व उथले फूलदानों का उपयोग व नाजीरे में लम्बे आकार के फूलदानों का प्रयोग किया जाता है।

फर्श सज्जा

1. मांडना

मांडना राजस्थान की लोक कला है। इसे विशेष अवसरों पर महिलाएं जमीन अथवा दीवार पर बनाती हैं। मांडना, मंडन शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है सज्जा। मांडना की पारंपरिक आकृतियों में ज्यामितिय एवं पुष्प आकृतियों को लिया गया है। मुख्य रूप से मांडने कच्चे फर्श पर बनाये जाते हैं तथा गीले रंग जैसे-गेरू और खड़िया का उपयोग किया जाता है।

चित्र 10.4 : **माण्डणा**

2. रंगोली

रंगोली भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा और लोक कला हैं। इसे सामान्यत: त्योहार, व्रत, पूजा, उत्सव, विवाह आदि शुभ अवसरों पर सूखे और प्राकृतिक रंगों से बनाया जाता है। इसमें साधारण ज्यामितिक आकार हो सकते हैं या फिर देवी-देवताओं की आकृतियाँ।

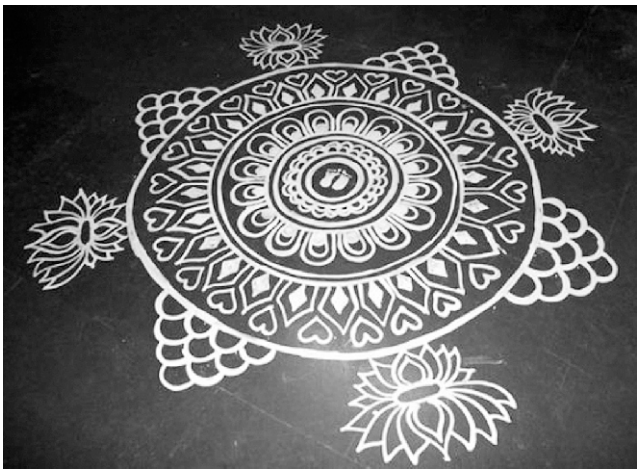

चित्र 10.5 : **रंगोली**

इसके लिए प्रयोग में लाए जाने वाले पारम्परिक रंगों में पिसा हुआ सूखा या गीला चावल, सिंदूर, रोली, हल्दी, सूखा आटा और अन्य प्राकृतिक रंगों का प्रयोग भी होने लगा है। कभी-कभी रंगोली फूलों, लकड़ी या किसी अन्य वस्तु के बुरादे या चावल आदि अन्न से भी बनाया जाता है। रंगोली का एक नाम अल्पना भी है।

रंगोली एक अलंकरण कला है जिसका भारत के अलग-अलग

प्रांतों में अलग-अलग नाम है। उत्तरप्रदेश में चौक पूरना, राजस्थान में माण्डणा, बिहार में अरिपन, बंगाल में अल्पना, महाराष्ट्र में रंगोली, केरल में कोलम नाम से जानी जाती है।

रंगोली के प्रमुख तत्त्व-

1. पिसे हुए चावल का घोल
2. सुखाए हुए पत्तों का पाउडर
3. चारकोल
4. जलाई हुई मिट्टी
5. लकड़ी का बुरादा

रंगोली की पृष्ठभूमि के लिए साफ या लिपी हुई जमीन या दीवार का प्रयोग किया जाता है। रंगोली आँगन के मध्य में, कोनों पर या बेल के रूप में चारों ओर बनाई जाती हैं।

रंगोली दो प्रकार से बनाई जाती है। सूखी और गीली दोनों में एक मुक्तहस्त से और दूसरी बिंदुओं को जोड़कर बनाई जाती है।

1. बिंदुओं को जोड़कर बनाई जाने वाली रंगोली के लिए पहले सफेद रंग से जमीन पर किसी विशेष आकार में निश्चित बिंदु बनाए जाते हैं।
2. फिर उन बिन्दुओं को मिलाने पर एक सुन्दर आकृति आकार ले लेती है।
3. आकृति बनाने के बाद उनमें मनचाहे रंग भरे जा सकते हैं।

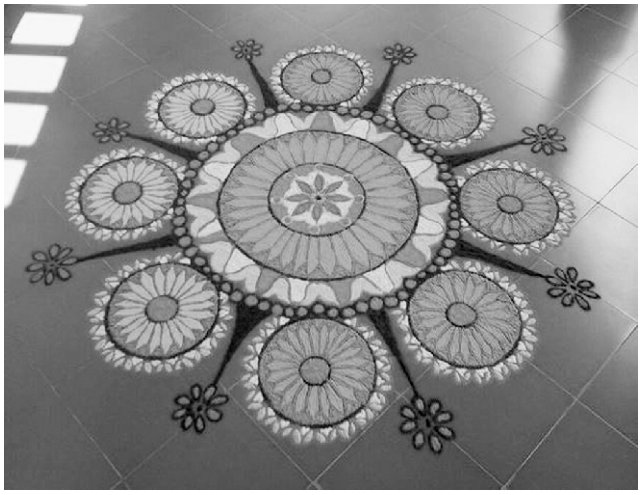

चित्र 10.6: **अल्पना**

4. पारम्परिक माण्डणा बनाने में गेरू और सफेद खड़ी का प्रयोग किया जाता है।
5. सांचे का प्रयोग करके भी रंगोली बनायी जाती है। इसमें नमूने के अनुसार छोटे छेद होते हैं। इन्हें जमीन से हल्का सा टकराते ही निश्चित स्थानों पर रंग झरता है और सुंदर नमूना प्रकट हो जाता है।
6. गीली रंगोली चावल को पीसकर उसमें पानी मिलाकर तैयार की जाती है। इस घोल को ऐपण, ऐपन या पिवर कहा जाता है। इसे रंगीन बनाने के लिए हल्दी का प्रयोग भी किया जाता है।

अध्याय 11

प्राथमिक चिकित्सा पेटी बनाना व दुर्घटनाओं के दौरान प्राथमिक चिकित्सा करना

प्रायोगिक चिकित्सा पेटी क्या है?

प्राथमिक उपचार की जरूरत सबसे ज्यादा उस समय पड़ती है जब कोई व्यक्ति किसी दुर्घटना आदि में घायल हो जाता है और उसे डॉक्टर की सहायता मिलने में या अस्पताल तक जाने में समय लगता है। ऐसी स्थिति में प्राथमिक उपचार दिया जाता है। प्राथमिक उपचार के लिए उपचारकर्ता के पास कुछ वस्तुओं का होना जरूरी होता है। प्राथमिक उपचार के दौरान उपयोग में आने वाले साधनों के संग्रह को प्राथमिक चिकित्सा पेटी या First Aid Kit कहा जाता है।

हड्डियों के टूटने/खिसकने पर, त्वचा के जलने पर, शरीर में जहरीला तत्त्व जाने पर, कटने या छिलने पर, किसी जीव-जन्तु के काटने पर प्रायोगिक चिकित्सा दी जाती है। ऐसी किसी भी अवस्था, दुर्घटना, बीमारी या आपातकालीन स्थिति से उबारने के लिये एक प्राथमिक चिकित्सा पेटी अत्यन्त आवश्यक है।

चित्र 11.1 : **प्राथमिक चिकित्सा पेटी**

प्राथमिक चिकित्सा पेटी बनाना :

प्रत्येक घर, स्कूल, फैक्ट्री व कार्यस्थल पर प्राथमिक चिकित्सा पेटी अवश्य होनी चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर इसका उपयोग किया जा सके। प्राथमिक चिकित्सा पेटी सुव्यवस्थित व सम्पूर्ण सामग्री युक्त होनी चाहिए। प्राथमिक चिकित्सा पेटी हल्की, टिकाऊ व खुलने में आसान होनी चाहिए जिससे कि सुविधानुसार इसे एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सके। (चित्र 11.1)

प्राथमिक चिकित्सा पेटी में क्या-क्या साधन रखने हैं यह चिकित्सा पेटी को उपयोग करने वाले के ज्ञान व अनुभव पर निर्भर करता है। सामान्यत: प्राथमिक चिकित्सा पेटी में निम्न सामग्री होनी चाहिए (चित्र 11.2)।

चित्र 11.2 : **प्राथमिक चिकित्सा पेटी (सामग्री युक्त)**

1. **प्राथमिक चिकित्सा (First Aid Kit Manual)**–प्राथमिक चिकित्सा कैसे करते हैं और प्राथमिक चिकित्सा पेटी में रखी हुई चीजों का उपयोग कैसे करते हैं इसकी जानकारी के लिए बाजार में उपलब्ध प्राथमिक चिकित्सा पुस्तिका रखना आवश्यक है।
2. **तिकोनी पट्टियां (Triangular Bandage)**–घायल व्यक्ति के जख्मी या टूटे हुए हिस्से को सहारा देने के लिए गलपट्टी (Sling) के रूप में उपयोग किया जाता है।
3. **बड़ी पट्टियाँ (Bandages)**–बड़ी पट्टियों का उपयोग घाव या मोच पर बाँधने के लिये किया जाता है।
4. **गोल पट्टियाँ (Round Bandages)**–घाव पर बाँधने के काम

में ली जाती हैं।

5. **कीटाणुरहित गॉज (Sterile Gauz)**–प्राथमिक चिकित्सक के पास साफ गॉज होना चाहिए। यह गॉज जख्म आदि पर बाँधने के लिए उपयोग में लिया जाता है।
6. **चिपकने वाली पट्टियाँ (Adhesive Tapes)**–प्राथमिक चिकित्सा पेटी में चिपकने वाली पट्टियाँ (टेप) होनी चाहिए। इसका प्रयोग छोटे घावों पर मरहम पट्टी चिपकाने के लिए किया जाता है।
7. **सेफ्टी पिन (Safety Pin)**–यह आसानी से बाजार में उपलब्ध है। इसका प्रयोग किसी प्रकार की पट्टी को घाव पर रोकने के लिये किया जाता है।
8. **कैंची (Scissor)**–प्राथमिक चिकित्सा पेटी में छोटी कैंची अवश्य होनी चाहिए, यह विभिन्न प्रकार की पट्टियों को काटने के काम आती है।
9. **छोटी चिमटी (Tweezer/Forceps)**–काँटा या काच आदि चुभ जाने पर उसे निकालने के लिये चिमटी का प्रयोग किया जाता है।
10. **साबुन (Soap)**–साबुन का प्रयोग घायल का उपचार करने से पूर्व व पश्चात् हाथों को धोकर विसंक्रमित करने के लिये किया जाता है।
11. **ताप मापक (Thermometer)**–पीड़ित के शरीर का ताप नापने के लिये थर्मामीटर आवश्यक है।
12. **एण्टीसेप्टिक घोल (Antiseptic Lotion)**–एण्टीसेप्टिक घोल जैसे डिटॉल, सैवलान आदि का प्रयोग गन्दे घाव को साफ कर, घाव को विसंक्रमित करने के लिये किया जाता है।
13. **सीटी (Whistle)**–किसी दूसरे आदमी की सहायता लेने के लिये सीटी का उपयोग किया जाता है।
14. **माचिस (Match Box)**–चिमटी, कैंची आदि को गर्म करके उन्हें जीवाणुरोधक बनाने के लिये माचिस का उपयोग किया जाता है।
15. **ड्रॉपर (Dropper)**–घायल व्यक्ति को बूँद-बूँद दवा व पानी पिलाने के लिये ड्रापर काम में लिया जाता है।
16. **वैसलीन (Vaslein)**–वैसलीन का उपयोग चिकनाई प्रदान करने के काम में लिया जाता है।
17. **विक्स (Vics)**–विक्स का उपयोग घायल की श्वसन क्रिया को सामान्य करने के लिये किया जाता है।
18. **बाम (Balm)**–दर्द कम करने के लिये बाम का उपयोग किया जाता है।
19. **चाकू/ब्लेड (Knife/Blade)**–प्राथमिक चिकित्सा पेटी में चाकू/ब्लेड घाव की सफाई के काम में आते हैं।
20. **दवा पिलाने का गिलास (Glass)**–घायल व्यक्ति को दवा पिलाने के काम में आता है।
21. **आँख धोने का कप (Eye Wash Cup)**–घायल व्यक्ति की आँखों को साफ करने के लिये कप काम में लिया जाता है।
22. **ग्लूकोज (Glucose)**–मरीज को तुरन्त ऊर्जा प्रदान करने के लिये ग्लूकोज पाउडर काम में लिया जाता है।
23. **टॉर्च (Torch)**–अंधेरे में देखने के लिये टॉर्च का होना आवश्यक है।
24. **खपच्चियाँ**–टूटी हड्डी को सहारा देने के लिये खपच्चियों का प्रयोग किया जाता है।
25. **खपच्चियों को स्थिर रखने के लिये फीते**–टूटी हुई हड्डियों पर लगाई गई खपच्चियों को स्थिर करने के लिये फीते काम में लिये जाते हैं।
26. **6'' नाप के गुर्दे के आकार की चिलमची (Kidney Tray)**–सामान रखने के कार्य में ली जाती है।
27. **बरनोल (Burnol)**–जलने पर बरनोल क्रीम का उपयोग किया जाता है।
28. **प्लास्टिक शीट (Plastic Sheet)**–घायल का उपचार शुरू करने से पहले लिटाने के काम आती है।
29. **ओ. आर. एस. (Oral Rehydæration Salt)**–घायल व्यक्ति के शरीर में पानी की कमी होने पर तुरन्त ओ. आर. एस. का घोल दिया जाता है।
30. **दवाइयाँ (Medicines)**–प्राथमिक चिकित्सा के लिए पेटी में कुछ दवाइयाँ अवश्य होनी चाहिए।

    दर्द निवारक दवाइयाँ–पेरासिटामोल (Paracetamol), डाइक्लोफिनेक (Diclofenace) इत्यादि।

    एंटिबायटिक दवाइयाँ–Neosprin, Providine Iodine

    दस्तरोधी दवाएँ–रिनिफोल (Rinifol), लोपेरामाइड (Loperamide), ORS घोल आदि।

    दमारोधी दवा–सेलबुटामोल (Salbutamol), एस्थेलिन इन्हेलर (Asthalin Inhaler)

    वमनरोधी दवा–सिक्विल (Siquil), स्टेमेटिल (Stemetil)

    हिस्टेमीनरोधी–ऐविल (Avil), बेनाड्रिल (Benadryl), फिनारगन (Phenergan)
31. **रिकॉर्ड बुक तथा पेन्सिल**–घायल से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएं लिखने तथा प्रेक्षण चार्ट (Observation Chart) बनाने के लिए प्राथमिक चिकित्सा पेटी में रिकॉर्ड बुक तथा पेन्सिल होनी चाहिए।
32. **दस्ताने (Disposable Gloves)**–प्राथमिक चिकित्सक की अपनी सुरक्षा तथा घायल व्यक्ति के घावों को संक्रमित होने से बचाने के लिए दस्ताने पहनना आवश्यक है।
33. **रुई (Cotton)**–उपचारकर्ता के पास साफ रुई होनी चाहिए। यह रुई घावों को साफ करने के काम आती है।
34. **जीवाणुरोधक मरहम (Antibiotic Ointment)**–खुले हुए घावों पर लगाने के लिए बीटाड़ीन (Bitadine) या

सोफरॉमाइसिन (Soframycin) मरहम।

35. **गर्म पानी की बोतल (Hot water Bag)**–इस बर्तन में गरम पानी डालकर पीड़ित के अंग पर सेक देने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

36. **बर्फ की टोपी (Cold Cap)**–अधिक तेज बुखार में सिर पर रखने के लिए बर्फ की टोपी का प्रयोग किया जाता है।

इन सभी सामग्रियों को एक साथ स्वच्छ, मजबूत और पानी रहित (Water Proof) डिब्बे में रखना चाहिए। प्राथमिक चिकित्सा पेटी पर लाल टेप या रंग से रेड क्रॉस का निशान बनायें ताकि आपकी पेटी को अन्य सामान/डिब्बों में से आसानी से पहचाना जा सके। चिकित्सा पेटी के ऊपर अपने पारिवारिक डॉक्टर व एम्बुलेंस के नाम और नम्बर अवश्य लिखें। हर छः महीने में दवाइयों और अन्य सामानों की समाप्त होने की दिनांक (Expiry Date) की जाँच करते रहें और आवश्यकतानुसार बदलते रहें।

3. प्राथमिक चिकित्सा पेटी का इस्तेमाल कैसे करें–

किसी भी चिकित्सीय आपातकालीन अवस्था में अपना होश नहीं खोयें और हालात को समझने की कोशिश करें और जब बेहद आवश्यक हो तभी प्राथमिक चिकित्सा पेटी का इस्तेमाल करने की सोचें और कुछ खास बातें ध्यान में रखें। नीचे दी गयी जानकारी के अनुसार प्राथमिक चिकित्सा पेटी का इस्तेमाल करें।

1. अगर किसी तरह की कोई आपातकालीन घटना हुई है तो सहायता के लिए चिल्लाएँ और लोगों का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश करें और यदि आप सुरक्षित हैं तो घायल व्यक्ति पर ध्यान दें और सम्भव हो तो मदद के लिए अस्पताल और पुलिस को फोन करें।
2. आपातकालीन अवस्था के समय काम आने वाले फोन नम्बर आपको मालूम होने चाहिए और आपके फोन में भी वो सभी नम्बर होने चाहिए और प्राथमिक चिकित्सा पेटी में भी जरूरी नम्बर होने चाहिए जैसे पुलिस, एम्बुलेंस, अस्पताल तथा अग्निशमन विभाग इत्यादि।
3. सहायता आने तक यदि कोई घायल है तो उसे अकेला नहीं छोड़ें क्योंकि आपका साथ होना घायल को भावनात्मक सहायता देता है और उसके लिए घातक चोट होने पर भी जीवित रहने की सम्भावना बढ़ जाती है उन्हें सांत्वना दें कि वो ठीक है और उन्हें कुछ नहीं होगा।
4. यदि चोट साधारण है तो आप प्राथमिक उपचार दे सकते हैं।
5. हड्डी टूटने या ऐसी कोई चोट होने पर हिलाए-डुलाए बिना चोटग्रस्त स्थान पर बर्फ लगायें।
6. अगर रक्तस्राव हो रहा है तो रक्त को बहने से रोकने का प्रयास करें और सावधानीपूर्वक मरहम पट्टी कर दें।
7. आग लगने की स्थिति में ध्यान रखने योग्य सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जले हुए स्थान से त्वचा या कपड़ा हटाने का प्रयास न करें और सिर्फ उस स्थान को साफ पानी से भली प्रकार धो लें और उस स्थान पर किसी भी प्रकार का कोई मरहम या क्रीम न लगायें।
8. प्राथमिक चिकित्सा के पश्चात् अपने हाथ अच्छे से साबुन से धो लें और घायल व्यक्ति के साथ-साथ अपनी सुरक्षा का भी पूरा ध्यान रखें।
9. घायल व्यक्ति को तुरन्त खाने-पीने के लिये कुछ न दें क्योंकि घबराहट से उल्टी हो सकती है जिससे घायल की स्थिति और खराब हो सकती है।
10. घायल व्यक्ति को पैरों के बीच में कुछ दूरी रखते हुए आरामदायक अवस्था से लेटा दें और ध्यान रखें कि श्वसन क्रिया सही से हो रही हो।
11. घायल के आस-पास के वातावरण का ध्यान रखें। उसके आस-पास भीड़ न इकट्ठा होने दें तथा घायल को हवादार स्थान पर लेटायें।

उपरोक्त वर्णित प्राथमिक चिकित्सा पेटी की सामग्री को ध्यान में रखते हुए पाक प्रयोगशाला में रखने हेतु प्राथमिक चिकित्सा पेटी व सफर में ले जाने हेतु प्राथमिक चिकित्सा पेटी के लिए छोटा किट बनाइये और प्रदर्शित कीजिए।

1. पाक प्रयोगशाला में रखने हेतु प्राथमिक चिकित्सा पेटी

क्र. सं.	सामग्री का नाम	उपयोग
1.		
2.		
3.		
4.		
5.		

2. सफर में प्राथमिक चिकित्सा के लिये छोटा किट बनाना

क्र. सं.	सामग्री का नाम	उपयोग
1.		
2.		
3.		
4.		
5.		

ग्रन्थ सूची (Bibliography)

हिन्दी :

1. मंजू पाटनी (1993-94), वस्त्र विज्ञान एवं परिधान व्यवस्था, स्टार पब्लिकेशन, आगरा
2. कमला त्रिपाठी (2006), वस्त्र विज्ञान एवं धुलाई कार्य, पोन्इटर पब्लिशर, जयपुर
3. विमला शर्मा (1977), वस्त्र शिल्प विज्ञान, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
4. जी.पी. शैरी (1991), वस्त्र विज्ञान के मूल सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
5. वृन्दासिंह (2011), मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, संस्करण चतुर्थ
6. भूपिन्दर कौर बक्शी (1995), पारिवारिक संसाधनों का प्रबंध, साहित्य प्रकाशन, आगरा
7. बेला भार्गव (2001), घरेलू बजट एवं क्रय शक्ति प्रबंध, जैना पब्लिशर्स, जयपुर
8. वृन्दासिंह (2011), गृह प्रबन्ध एवं आंतरिक सज्जा, सातवां संस्करण
9. लालवचन त्रिपाठी एवं सुषमा पाण्डेय (2009), मानव विकास का मनोविज्ञान, खण्ड-I
10. वृन्दासिंह (2002), जनस्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, तृतीय संस्करण, पंचशील प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
11. माया चौधरी (2011), गृह विज्ञान-I, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मण्डल, जयपुर
12. माया चौधरी (2009), गृह विज्ञान-I व II, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, हरिहर प्रिण्टर्स, जयपुर

English :

1. P. V. Vidhyasagar (1998), Hand Book of Textiles, Mittal Publication, New Delhi
2. Susheela Dantyagi (1983), Fundamentals of Textiles and their care, orient Longmen Limited, New Delhi
3. Elizabeth B. Hurlock (2007), Developmental Psychology A-life-Span Approach, 5th ed.
4. B. Srilakshmi (2002), Nutrition Science, New age international (P) Ltd., Publishers.
5. B. Srilakshmi (2007), Food science, 4th ed., New Age International (P) Ltd., Publishers.
6. Nickell, P and Dorsey, J.M. (1967), Management in Publishing John Willy and Sons, Inc.

शब्द कोष (Glossary)

1. अन्तर्ग्रहण – Ingestion
2. पाचन – Digestion
3. अवशोषण – Absorption
4. वहन – Transportation
5. उत्सर्जन – Excretion
6. मलबद्धता – Constipation
7. तंत्रिका ऊतक – Nervous Tissue
8. जैव उत्प्रेरक – Enzymes
9. कैशीमियर फंक – Casimir Funk
10. जल में घुलनशील – Water Soluble
11. वसा में घुलनशील – Fat Soluble
12. श्वेत रक्त कणिकाएं – WBC
13. अतिसार – Diarrhoea
14. त्वचा का रोग – Dermatitis
15. पागलपन – Dementia
16. बृहत् मात्रिक पोषक तत्त्व – Macro Nutrients
17. सूक्ष्म मात्रिक पोषक तत्त्व – Micro Nutrients
18. वसा – Lipids
19. व्युत्पन्न वसा – Derived Lipids
20. बन्ध – Bond
21. खमीर – Yeast
22. मधुमेह – Diabetes
23. बाह्य कोषीय तरल – Extra Cellular Fluid
24. अन्त:कोषीय तरल – Intra Cellular Fluid
25. ऊतक द्रव्य – Intestitial Fluid
26. घोलक के रूप में – As a Solvent
27. स्नेहक – Lubricants
28. जल संतुलन – Water Balance
29. धनात्मक – Positive
30. ऋणात्मक – Negative
31. प्रसारण दाब – Osmotic Pressure
32. सूजन – Oedema
33. सघन – Concentrated
34. रसाकर्षण – Osmosis
35. निर्जलीकरण – Dehydration
36. फटे दूध का पानी – Whey Water
37. मुँह द्वारा – Orally
38. शरीर की आधारशिला – Building Blocks of Body
39. उदासीन – Neutral
40. उच्च जैविक मूल्य – High Biological Value
41. पूर्ण – Complete
42. आंशिक पूर्ण – Partial Complete
43. अपूर्ण – Incomplete
44. वनस्पतिज – Vegetable
45. प्राणिज – Animal
46. साधारण – Simple
47. संयुग्मी – Conjugated
48. पूर्ववर्ती – Precursor
49. शंकु – Cones
50. दंड – Rods
51. वृद्धि में रुकावट – Growth Failure
52. सूखा रोग – Marasmus
53. व्यर्थ होना – To Waste
54. अग्रगामी – Progressive
55. आत्मानुभूति – Self Realization
56. आनुवंशिकी – Genetics
57. आनुवंशिकता – Heredity
58. उपलब्धि – Achievement
59. गर्भकालीन अवस्था – Prenatal Period
60. नवजात शिशु – Neonate
61. निकट–दूर – Proximao-distal
62. मस्तकाधोमुखी – Cephalocaudal
63. वय:सन्धि – Puberty
64. संकट – Hazard
65. परिपक्वता – Maturation

66. अनुदैर्ध्यात्मक – Longitudinal
67. आनुक्रमिक – Sequential
68. पोषण – Nurture
69. मानकीकरण – Standardization
70. विश्वसनीयता – Reliability
71. आत्मप्रत्यय – Self Concept
72. डी.एन.ए. – Deoxyribonucleic Acid-D.N.A.
73. डिम्ब – Ovum
74. निषेचन – Fertilization
75. जननेन्द्रिय – Genital
76. प्रतिरूप – Model
77. पारिस्थितिकीय – Ecology
78. संज्ञानात्मक विकास – Cognitive development
79. गर्भाधान – Conception
80. गर्भित डिम्ब – Zygote
81. भ्रूणावस्था – Embryo
82. अंगीकरण – Grasping
83. कालिक प्रवृत्ति – Secular Trend
84. रेंगना – Crawling
85. उबालना – Boiling
86. खदकाना – Simmering
87. दाब द्वारा पकाना – Pressure Cooking
88. अंकुरीकरण – Germination
89. खमीरीकरण – Fermentation
90. प्रत्यास्थता – Elasticity
91. लिनन – Linen
92. कड़कीले – Brittle
93. ऊन – Wool
94. प्रतिस्कंदता – Resiliency
95. कणन सामर्थ्य – Breaking Tenacity
96. आयोजन – Planning
97. मूल्य – Value
98. तीव्रता – Chroma
99. भण्डार कक्ष – Store Room
100. बरामदा – Varandah
101. विपरीत – Contrast
102. एक रंगीय – Monochromatic Color
103. समीपवर्ती रंग – Analogous Color
104. खंडित रंग – Split Complimentary
105. लू लगना – Sun Stroke
106. विद्युत आघात – Electric Shock